आई एस एस एन 0523-1418

अंक 320 वर्ष 64

भाषा

आषाढ़–श्रावण–भाद्रपद
विक्रम संवत् 2082

जुलाई–अगस्त 2025

भाषा जुलाई–अगस्त 2025

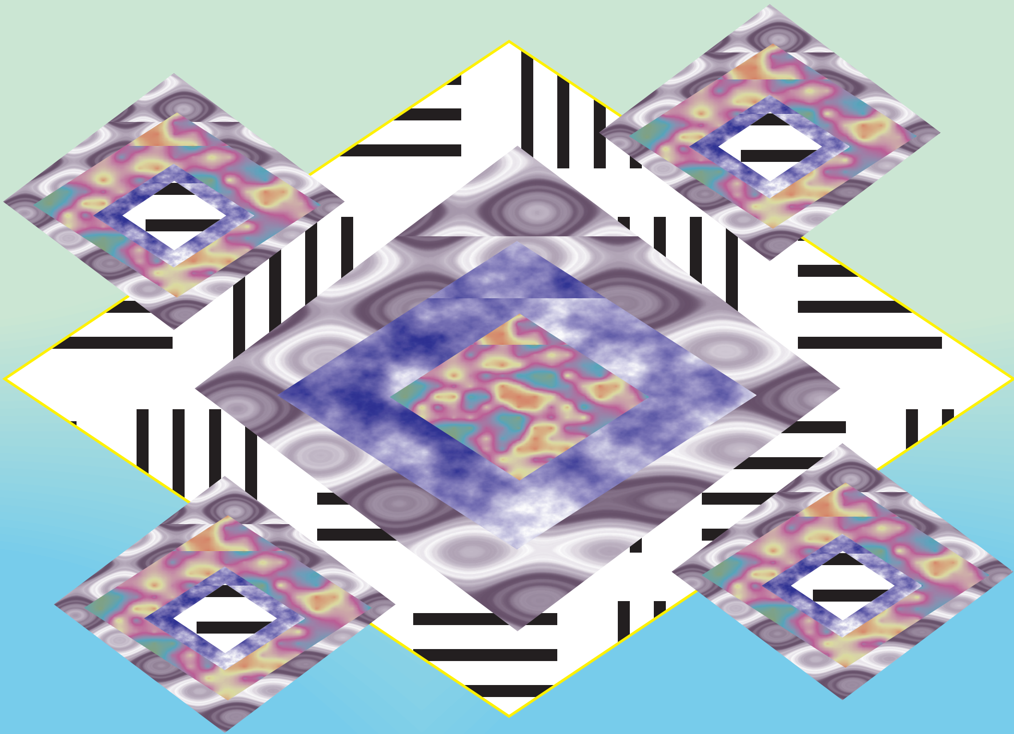

सत्यमेव जयते

केंद्रीय हिंदी निदेशालय
उच्चतर शिक्षा विभाग
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार

भाषा (द्वैमासिक)
लेखकों से अनुरोध

1. ***भाषा*** में छपने के लिए भेजी जाने वाली सामग्री यथासंभव सरल और सुबोध होनी चाहिए। रचनाएँ टंकित रूप में (यूनिकोड में) भेजी जाएँ। भेजी जानी वाली सामग्री के साथ रचनाकार कृपया अपनी पासपोर्ट आकार की फोटो, पूरा पता और अपना संक्षिप्त परिचय भी अवश्य भेजें।
2. लेख आदि सामान्यतः फुलस्केप आकार के दस टंकित पृष्ठों से अधिक नहीं होने चाहिए और हाशिया छोड़कर एक ओर ही टाइप किए जाने चाहिए। लेख इत्यादि रचनाएँ भेजते समय इस आशय का भी प्रमाण–पत्र भेजा जाय कि रचना अप्रकाशित है तथा किसी भी रूप में अन्यत्र प्रकाशित नहीं हुई है।
3. अनुवाद तथा लिप्यंतरण के साथ मूल लेखक की अनुमति भेजना अनिवार्य है। इससे रचना पर निर्णय लेने में हमें सुविधा होगी। मूल कविता का लिप्यंतरण टंकित होने पर उसकी वर्तनी संबंधी त्रुटियाँ प्रायः नहीं होंगी, अतः टंकित लिप्यंतरण ही अपेक्षित है। रचना में अपना नाम और पता हिंदी के साथ–साथ अंग्रेजी में भी देने का कष्ट करें।
4. सामग्री के प्रकाशन विषय में संपादक का निर्णय अंतिम माना जाएगा।
5. रचनाओं की अस्वीकृति के संबंध में अलग से कोई पत्राचार कर पाना हमारे लिए संभव नहीं है, अतः रचनाओं के साथ डाक टिकट लगा लिफाफा, पोस्टकार्ड आदि न भेंजे। इन पर कोई कार्रवाई नहीं की जाएगी।
6. अस्वीकृत रचनाएँ न लौटा पाने की विवशता/असमर्थता है। कृपया रचना प्रेषित करते समय इसकी प्रति अपने पास अवश्य रख लें।
7. भाषा में केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा स्वीकृत मानक हिंदी वर्तनी का प्रयोग किया जाता है। अतः रचनाएँ इसी वर्तनी के अनुसार टाइप करवाकर भेजी जाएँ।
8. समीक्षार्थ पुस्तकों की दो प्रतियाँ भेजी जानी चाहिए।
9. द्वैमासिक पत्रिका 'भाषा' का ई–संस्करण केंद्रीय हिंदी निदेशालय की वेबसाइट (www.chdpublication.education.gov.in) पर देखा जा सकता है।
10. 'भाषा' पत्रिका में प्रकाशित अंकों से संबंधित लेखकों/पाठकों की टिप्पणियों/सुझावों का स्वागत है। पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं पर पाठकों की टिप्पणियों को 'आपने लिखा' शीर्षक के अंतर्गत प्रकाशित किया जाएगा।

संपादकीय कार्यालय

संपादक, भाषा, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, पश्चिमी खंड–7, रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली–110066

सत्यमेव जयते

भाषा

जुलाई–अगस्त 2025

प्रधान संपादक
प्रो. सुनील बाबुराव कुळकर्णी 'देशगव्हाणकर'

परामर्श मंडल
प्रो. जी. गोपीनाथन
प्रो. चक्रधर त्रिपाठी
प्रो. श्रीराम परिहार
प्रो. नरेंद्र मिश्र
प्रो. किरण हजारिका
प्रो. विशाला शर्मा
श्री कुलदीप अग्निशेखर

संपादन मंडल
संपादक
डॉ. अनुपम माथुर
डॉ. नूतन पाण्डेय
सह-संपादक
श्री प्रदीप कुमार ठाकुर
कार्यालयीन व्यवस्था
श्री विक्रांत हुड्डा
श्री संजीव कुमार

केंद्रीय हिंदी निदेशालय, उच्चतर शिक्षा विभाग,
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार

ISSN 0523-1418
भाषा (द्वैमासिक)
वर्ष : **64** अंक : **4** **(320)**

जुलाई–अगस्त 2025

संपादकीय कार्यालय
केंद्रीय हिंदी निदेशालय
उच्चतर शिक्षा विभाग
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार
पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम
नई दिल्ली-110066
वेबसाइट : www.chdpublication.education.gov.in / www.chd.education.gov.in
ई–मेल : bhashaunit@gmail.com दूरभाषः 011-26105211/12

बिक्री केंद्र 1 :

केंद्रीय हिंदी निदेशालय, उच्चतर शिक्षा विभाग, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली-110066 दूरभाषः 011-26105211/12 (सदस्यता हेतु ड्राफ्ट निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली के पक्ष में भेजें।)

बिक्री केंद्र 2 :

नियंत्रक, प्रकाशन विभाग, सिविल लाइंस, दिल्ली - 110054, वेबसाइट : www.deptpub.gov.in, ई–मेल : acop-dep@nic.in दूरभाष : 011-23817823/ 9689 (सदस्यता हेतु ड्राफ्ट नियंत्रक, प्रकाशन विभाग, दिल्ली के पक्ष में भेजें।)

निर्देश :

1. शुल्क सीधे www.bharatkosh.gov.in → Quick Payment → Ministry (007 Higher Education) → Purpose (Education receipt) 211766 JR. ADMN. OFFICER CENTRAL HINDI DIRECTORATE में digital mode से जमा करवाई जा सकती है।
2. कृपया दिए गए बिंदुओं के आधार पर सूचनाएँ देते हुए संलग्न प्रोफॉर्मा भरकर भेजें।
3. 'भाषा' पत्रिका की सदस्यता हेतु आवेदन पत्र निदेशालय की वेबसाइट www.chdpublication.education.gov.in से डाउनलोड किया जा सकता है।

मूल्य :			
1. एक प्रति का मूल्य	=	रु. 50.00	(डाक खर्च सहित)
2. वार्षिक सदस्यता शुल्क	=	रु. 250.00	
3. पंचवर्षीय सदस्यता शुल्क	=	रु. 1250.00	
4. दस वर्षीय सदस्यता शुल्क	=	रु. 2500.00	

पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। इनसे भारत सरकार या संपादन मंडल का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

अनुक्रमणिका

प्रधान संपादक की कलम से

संपादकीय

आपने लिखा

स्मृति कलश

1. उधड़ी हुई कहानियाँ (कहानी)	अमृता प्रीतम	11
2. घूँघट (कहानी)	इस्मत चुग़ताई	17

आलेख

1. आलोचना का निर्मल पाठ: निर्मला जैन	डॉ. सुनीता	21
2. ऋग्वेद में हरियूपिया अर्थात् हड़प्पा	प्रमोद भार्गव	29
3. शांत रस की स्थिति एवं उसका वैशिष्ट्य	प्रो. अजय कुमार झा	39
4. हिंदी ग़ज़ल में दुष्यंत: महत्त्व और मूल्यांकन	डॉ. ज़ियाउर रहमान जाफरी	47
5. काव्य और चित्रकला का अंतर्संबंध: एक विवेचन	प्रोमिला	55
6. नागालैंड में हिंदी का विकास और चुनौतियाँ	छेवांगलुंग डॉ. मुन्नी चौधरी	64
7. लाइहराओबा और थाबल चोंबा: मणिपुरी संस्कृति के अनूठे पर्वों की सामाजिक, सांस्कृतिक व धार्मिक भूमिका	चांदम इङो सिंह	70
8. मणिपुर की कबुई जनजाति का मनमोहक और जीवंत त्योहार : गान–ङाई	डॉ. गाईगुईमेईलू कामेई	79
9. हिंदी साहित्य में किन्नर जीवन की समस्या: औपन्यासिक संदर्भ	डॉ. मनोहर गंगाधरराव चपळे	85
10. आधुनिक समय में हिंदी शिक्षा के उपलब्ध साधन और तकनीक	प्रो. हितेंद्र कुमार मिश्र	94
11. संत कबीर तथा समर्थ रामदास स्वामी के विचारों के माध्यम से तनाव प्रबंधन कौशल का विकास: तुलनात्मक अध्ययन	प्रो. सुनील बाबुराव कुळकर्णी 'देशगव्हाणकर' वंगीशा रोहिदास सरोदे	101
12. रामदरश मिश्र की कविताओं में प्रकृति–चित्रण	डॉ. आलोक रंजन पांडेय	107
13. भारत के संविधान–निर्माण में महिलाओं की भूमिका	प्रो. संध्या वात्स्यायन	115

संस्मरण

14. फादर डॉ. कामिल बुल्के को याद करते हुए	गिरीश पंकज	123

साक्षात्कार

15. स्त्री विमर्श की लड़ाई पुरुषों से नहीं, पुरुष तंत्र से हैः सुधा ओम ढींगरा	प्रो. विशाला शर्मा	129

यात्रा–वृत्तांत

16. मेरी लद्दाख की रोमांचक यात्रा	संजय गोस्वामी	139

कहानी

17. नर्ककुंड (ओड़िया)	संजय पण्डा अनुवादः कृष्ण कुमार अजनबी	143
18. सिलाई (मलयालम)	अजिजेष पच्चाट्ट अनुवादः डॉ. सुमित पी.वी.	152
19. हमज़मीन (हिंदी)	राजनारायण बोहरे	164
20. कर्मयोगी (हिंदी)	श्यामल बिहारी महतो	170

कविता

21. सभी कुछ न कुछ गँवाते हैं (असमिया–हिंदी)	लुत्फा हानूम सेलिमा बेगम अनुवादः दिनकर कुमार	176
22. भोर होने से पहले (हिंदी)	संदीप भटनागर	180
23. लौटता है जीवन (हिंदी)	देवेंद्रराज सुथार	182
24. पहले देश (हिंदी)	देवेंद्र कुमार मिश्रा	184

परख

25. यात्रा संस्मरण की अनूठी कृति (ओकुहेपा (यात्रा वृत्तांत) / डॉ. जितेंद्र कुमार सोनी)	दीपक गिरकर	187
26. पश्चिमी आकर्षण का सच और दरकते संबंध (प्रवासी श्रेष्ठ कहानियाँः सुधा ओम ढींगरा / संपादन– कमल किशोर गोयनका)	डॉ. अनुपमा तिवारी	195
27. 'मेरे आसान झूठ' में निपजे कविताओं के अक्स (मेरे आसान झूठ (कविता–संग्रह) / द्वारिका उनियाल)	रमेश खत्री	201
28. आशिक़ी के नये कारनामे (व्यंग्य–संग्रह / लालित्य ललित)	सूर्यकांत शर्मा	205

प्राप्ति स्वीकार 210

संपर्क सूत्र 211

सदस्यता फॉर्म 214

प्रधान संपादक की कलम से

'साहित्य जनसमूह के हृदय का विकास है' पं. बालकृष्ण भट्ट का एक महत्त्वपूर्ण निबंध है। उनके इस निबंध का शीर्षक गौर करने लायक है। साहित्य को यहाँ हृदय के उत्तरोत्तर विकास के क्रम में प्राप्त थाती के रूप में परिभाषित किया गया है। कहना न होगा कि हमारे देश में भी विकास की अवधारणा में ऐसे ही तत्त्वों का समावेश है जो इसे सार्वकालिक, सर्वसमावेशी और सर्वोत्कृष्ट बनाते हैं। इसकी झलक सरकारी नीतियों तथा बहूद्देशीय योजनाओं में सहज ही प्रतिबिंबित होती है। विकासकेंद्रित संकल्पनाओं में मुख्य जोर इस बात पर भी दिया जाता रहा है कि इसका लाभ सभी को समान रूप से मिले तथा सभी के लिए यह सहज रूप से उपलब्ध हो सके। कोशिश यह होती है कि व्यक्ति अपने व्यक्तिगत गुणों से लिए बेहतर प्रयास तो करे ही, साथ ही साथ अपने समाज और राष्ट्र की बेहतरी के लिए भी सचेष्ट हो। राष्ट्रहित के लिए जनसमूह की इस भागीदारी से ही राष्ट्र सबल तथा समर्थ बनता है। जब देशवासियों के हृदय में अपने समाज और राष्ट्र के लिए कुछ करने का भाव जागृत होता है तो सही अर्थों में देश स्वावलंबी तथा स्वाभिमानी राष्ट्र कहलाता है।

भारत जैसे आत्मनिर्भर तथा स्वाभिमानी देश ने अपनी इसी संप्रभु शक्ति और क्षमता का इस्तेमाल करते हुए 22 अप्रैल, 2025 को कश्मीर के पहलगाम में हुए आतंकी हमले का पुरजोर जवाब दिया तथा भारतवासियों के 'मन की बात' का आदर करते हुए 'ऑपरेशन सिंदूर' को अंजाम देकर कुछ दिनों बाद ही जवाबी कार्रवाई में आतंक के अड्डों को नेस्तनाबूद कर दिया। सत्तापक्ष, विपक्ष तथा भारत के हर देशभक्त नागरिक ने एक स्वर में भारतीय सेना के इस शौर्य और पराक्रम की भूरि–भूरि प्रशंसा की। साहित्य जिस तरह से एक साथ सभी सहृदय लोगों में श्रेष्ठ मानवीय मूल्यों का संचार करता है, उसी तरह भारतीय कुशल नेतृत्व ने सभी को साथ लेकर आम जनता के अंतर्मन में उठ रही उद्दीप्त भावनाओं का संज्ञान लेते हुए जवाबी कार्रवाई की। देश ने यह जता दिया कि सुहागिनों के सुहाग को उजाड़ने वाले तत्वों को किसी भी शर्त पर बर्दाश्त नहीं किया जाएगा। सिंदूर केवल हमारी माताओं एवं बहनों का ही गहना नहीं है बल्कि वह भारतीय स्त्री का अभिमान भी है। यही कारण है कि मीडिया को संबोधित करने का दायित्व हमारी सेना की जांबाज़ महिला अफसरों को दिया गया जिन्होंने

बताया कि किस तरह हमारी भारतीय सेना ने आतंकियों को मौत के घाट उतारा। उन्होंने बता दिया कि ऑपरेशन अभी जारी है और हमारी बहनों की मांग को सूना करने वालों को दर्दनाक मौत दी जाएगी। भारत ने यह जता दिया कि घाटी में हुई इस कायराना हरकत के लिए वह आतंकी गतिविधियों को बढ़ावा देनेवालों को मुँहतोड़ जवाब देगा। भारतीय जनमानस की यह एकजुटता आश्वस्त करती है कि भारत 'एक' है। एकत्व के इस एहसास को जागृत करना ही साहित्य का मूल धर्म है। कहना न होगा कि पहलगाम में हुई इस बर्बर हिंसा की सभी ने मुखर होकर भर्त्सना की। धर्म पूछकर किसी की हत्या करना निस्संदेह एक जघन्य और अमानवीय कृत्य था जिसका बदला लिया जाना अवश्यंभावी हो गया था। देश के प्रतिष्ठित साहित्यकारों ने भी इस क्रूरता को प्रमुखता से रेखांकित किया तथा इसे अक्षम्य करार दिया। साहित्य जगत ने अपनी विशिष्ट भूमिका का निर्वहन करते हुए लोगों के बीच बढ़ते तनाव को कम करते हुए उनके बीच की दूरी को पाटने का प्रयास किया तथा सभी को एकजुट रहने की बात कही। शायद यही कारण है कि कश्मीर की घाटी में घटी इस खूनी वारदात से उपजे तनाव के बीच हमारी बौद्धिक जनता ने बहुत धैर्य से काम लिया। साहित्य की यही महत्ता है। यह मानव हृदय को संकुचित भावभूमि से उठाकर उच्चतर भावभूमि पर प्रतिष्ठित करता है। केंद्रीय हिंदी निदेशालय की 'भाषा' पत्रिका के इस नवीनतम अंक की विविधमयी छटा भी इन्हीं मानवमूल्यों को पुष्पित और पल्लवित करने हेतु समर्पित है। पिछले दिनों प्रेमचंद के मर्मज्ञ तथा वरिष्ठ साहित्यकार कमल किशोर गोयनका तथा निर्मला जैन हमारे बीच नहीं रहे। मैं उनके साहित्यिक योगदान के प्रति श्रद्धावनत हूँ। उम्मीद करता हूँ कि भाषा का यह अंक आपको अच्छा लगेग। आपके सुझावों की प्रतीक्षा रहेगी।

(प्रो.सुनील बाबुराव कुळकर्णी 'देशगव्हाणकर')

 ISSN 0523-1418

संपादकीय

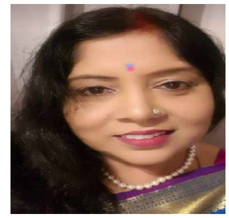

प्रत्येक समाज में समय के साथ परिवर्तन अवश्यंभावी है और इसी पर समाज की गतिशीलता आधारित होती है, उसकी संरचना और कार्यप्रणाली निर्धारित या नव–निर्मित होती है। समय के साथ होते अनेकमुखी विकासों को सभी समाज और राष्ट्र अपने भौगोलिक–सांस्कृतिक–सामाजिक–आर्थिक स्वरूपों के अनुरूप स्वीकार या अस्वीकार करते हैं। ये परिवर्तन कभी अपरिलक्षित–से स्वयं समाहित हो जाते हैं और ये कभी इतने आकस्मिक, असहज और कई बार भूचाल की भांति पूरे समाज को जड़ से हिला देने वाले होते हैं कि इनको सहज ही स्वीकारना या इनसे तालमेल बिठाना असंभव हो जाता है। ऐसे परिवर्तन हमारी इच्छा के विरुद्ध समाज का एक नया अपरम्परागत रूप निर्मित करते नजर आते हैं।

पिछले कुछ समय से हमारे समाज में ऐसे कुछ समाचार–प्रसंग सामने आ रहे हैं जिसमें भारतीय महिला का भयावह हिंसक रूप उभर रहा है जो अति चिंतनीय विषय है। अभी तक समाज में हाशिए पर खड़े इस वर्ग के प्रति सहानुभूति, समवेदना और चिंता की अभिव्यक्ति साहित्य में स्त्री–विमर्श के रूप में हो रही थी। किंतु ऐसे प्रसंगों के कारण लैंगिक भेद के इस परिप्रेक्ष्य में पुरुष–विमर्श अर्थात पुरुषों की समस्याओं, परिवार और समाज के संदर्भ में उनके आर्थिक और मानसिक द्वंद्वों की ओर गहन दृष्टिपात करना भी आज के समय की अनिवार्य आवश्यकता बन गया है। स्त्री के उत्थान और उसके संरक्षण हेतु बने कानूनों का लाभ जब अनुचित तरीके से पुरुषों को प्रताड़ित करने के इरादे से उठाया जा रहा हो, तो ऐसे कानूनों का पुनर्विश्लेषण करना अपरिहार्य हो जाता है। स्त्री और पुरुष दोनों के ही बीच बिना किसी लैंगिक भेद के समरसतापूर्ण सामाजिक एवं पारिवारिक व्यवहार ही ऐसी समस्याओं का समाधान है जिसके लिए मनोविज्ञानी विशेषज्ञों द्वारा सोशल मीडिया से और आभासी संसार के अनदेखे मित्रों से दूरी तथा अपने निकट परिजनों, विशेषतः बच्चों और किशोरों के प्रति निश्छल निस्वार्थ स्नेह–भाव और उनको पर्याप्त गुणवत्तायुक्त समय देने के सुझाव दिए जाते हैं। इसी संदर्भ में हम यह भी न भूलें कि भारतीय स्त्री जब कर्नल सोफिया कुरैशी और विंग कमांडर व्योमिका सिंह के रूप में हिंसक रूप लेकर ऑपरेशन सिंदूर का संचालन करती हैं, तो उसका यह सुहाना रूप हर भारतीय के मस्तक को गर्व से ऊँचा कर देता है।

स्त्री–पुरुष विमर्श के अतिरिक्त एक अन्य विमर्श जो साहित्य में प्रमुखता से स्थान ले रहा है, तृतीय लिंगी अथवा किन्नरों का विमर्श है जो समाज में अक्सर उपहास और उपेक्षा के शिकार होते हैं। हाशिए पर खड़ा यह वर्ग हर घर में शादी या बच्चा होने की खुशी मनाने पहुँचता है और हास–परिहास के साथ व्यंग्य–कटाक्षों को झेलता हुआ भी नाचता–गाता सबका मनोरंजन करता है। उपन्यासों के माध्यम से हिन्दी साहित्य में किन्नरों के जीवन की असहनीय स्थितियों को व्यक्त करता लेख पाठकों के हृदय को सोचने पर विवश करेगा।

अगस्त माह में सुविख्यात लेखिकाओं अमृता प्रीतम जी और इस्मत चुगताई जी के जन्मदिवस के उपलक्ष्य में उनकी स्मृतियों को इस अंक में पिरोते हुए स्मृति कलश कॉलम के अंतर्गत "उधड़ी हुई कहानियाँ" (अमृता प्रीतम) तथा "घूंघट" (इस्मत चुगताई) शीर्षक कहानियाँ संजोई गई हैं। पूर्वोत्तर प्रदेश के लोक–सांस्कृतिक रंगों और उनकी मूल्यवान जनजातीय विरासतों से शेष भारत अभी भी उतना परिचित नहीं है, इसलिए इस ओर प्रयास करते हुए इन प्रांतों के अनूठे पर्व–त्योहारों के सौंदर्यमय रूपों को उकेरते आलेख भी इस अंक में आपको मिलेंगे।

निदेशालय की भाषा टीम द्वारा पिछले दिनों निदेशालय की गतिविधियों पर आधारित त्रैमासिक ई–पत्रिका "निदेशालय वार्ता" का प्रकाशन प्रारंभ किया गया है जिससे निदेशालय की योजनाओं से जुड़े या जुड़ने के इच्छुक विद्वानों आदि को ताज़ा गतिविधियों और सूचनाओं की अद्यतन जानकारी मिलती रहेगी। यह पत्रिका निदेशालय की वेबसाइट पर उपलब्ध है। इच्छुक पाठक इसे पीडीएफ प्रारूप में भाषा एकक की ईमेल bhashaunit@gmail-com पर संपर्क करके मंगवा सकते हैं।

विषय और विधा–वैविध्य से संयुक्त यह अंक भी आप सुधी पाठकों को सुरुचिपूर्ण, पठनीय और संग्रहणीय लगेगा, इसी विश्वास के साथ,

(डॉ. अनुपम माथुर)
संपादक–भाषा

आपने लिखा

भाषा का मार्च–अप्रैल 2025 अंक सधन्यवाद प्राप्त हुआ।

प्रस्तुत अंक कई मायनों में महत्त्वपूर्ण है। जन्मशती और स्मृति शेष पर लेखन के क्रम से लेकर आलेख, ललित निबंध और यात्रा वृत्तांत से लेकर व्यंग्य, कहानी, कविता आदि सभी कालम अपने आप में नूतन संवेदन–अभिव्यक्ति से परिपूर्ण हैं। भारतीय ज्ञान परंपरा को भाषा के प्रकाशन से यूँ ही गति मिलती रहे।

वस्तुतः लेखकीय विचार के साथ ही पत्रिका की संपादकीय क्षमता इसके लिए विशेष महत्त्व रखती है। डॉ अनुपम माथुर जी और पूरा संपादन मंडल इसके लिए विशेष बधाई के पात्र हैं। पत्रिका के माध्यम से नवाचार निरंतर यूँ ही प्रवहमान रहे, इसके लिए मंगलकामनाएँ!

डॉ. अमित सिंह
हिंदी विभाग, श्यामलाल महाविद्यालय 'सांध्य',
दिल्ली विश्वविद्यालय

भाषा यूनिट का कार्य अत्यंत शीघ्रता से होता है जो अभिनंदनीय है। भाषा यूनिट की समस्त टोली को बहुत बधाई और शुभकामनाएँ।

डॉ. विकास शर्मा
संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय

❑❑❑

शुभकामनाएँ

हाल ही में वर्ष 2025 हेतु अंतर्राष्ट्रीय बुकर पुरस्कार दक्षिणी राज्य कर्नाटक से लेखिका, वकील एवं पत्रकार सुश्री बानू मुश्ताक जी को उनके लघु कथा–संग्रह (मूल कन्नड़ में लिखित) "हार्ट लैंप" (दीपा भास्थी द्वारा अनूदित) के लिए प्राप्त हुआ है।

सुश्री बानू मुश्ताक जी को इस गौरवमयी उलपब्धि के लिए निदेशालय एवं भाषा परिवार की ओर से अशेष शुभकामनाएँ।

श्रद्धांजलि

पिछले दिनों भारतीय साहित्य के दो आलोक–स्तंभ अपनी पार्थिव देह त्याग कर चिदाकाश में सदा के लिए विलीन हो गए। हिंदी आलोचना के प्रतिमानों की सुदृढ़ स्थापक डॉ. निर्मला जैन जी तथा अंग्रेजी और बांग्ला भाषा के सुप्रसिद्ध कवि–लेखक एवं आलोचक श्री आजु मुखोपाध्याय जी हमारे बीच नहीं रहे। साहित्य जगत के लिए यह क्षति निश्चय ही अपूरणीय है। भाषा परिवार इन दोनों दिवंगत आत्माओं को भावपूर्ण श्रद्धासुमन अर्पित करता है।

❑❑❑

स्मृति कलश

उधड़ी हुई कहानियाँ

अमृता प्रीतम

(अगस्त, 1919 – अक्तूबर, 2005)

मैं और केतकी अभी एक दूसरी की वाकिफ नहीं हुई थीं कि मेरी मुस्कराहट ने उसकी मुस्कराहट से दोस्ती गाँठ ली।

मेरे घर के सामने नीम के और कीकर के पेड़ों में घिरा हुआ एक बाँध है।

बाँध की दूसरी ओर सरसों और चने के खेत हैं।

इन खेतों की बाईं बगल में किसी सरकारी कॉलेज का एक बड़ा बगीचा है।

इस बगीचे की एक नुक्कड़ पर केतकी की झोंपड़ी है।

बगीचे को सींचने के लिए पानी की छोटी–छोटी खाइयाँ जगह–जगह बहती हैं।

पानी की एक खाई केतकी की झोंपड़ी के आगे से भी गुज़रती है।

इसी खाई के किनारे बैठी हुई केतकी को मैं रोज देखा करती थी।

कभी वह कोई हंडिया या परात साफ कर रही होती और कभी वह सिर्फ पानी की अंजुलियाँ भर–भरकर चाँदी के गजरों से लदी हुई अपनी बाँहें धो रही होती।

चाँदी के गजरों की तरह ही उसके बदन पर ढलती आयु ने मांस की मोटी–मोटी सिलवटें डाल दी थीं।

पर वह अपने गहरे साँवले रंग में भी इतनी सुंदर लगती थी कि मांस की मोटी–मोटी सिलवटें मुझे उसकी उमर की सिंगार–सी लगती थीं।

शायद इसीलिए कि उसके होंठों की मुस्कराहट में अजीब–सी भरपूरगी थी, एक अजीब तरह की संतुष्टि, जो आज के जमाने में सबके चेहरों से खो गई है। मैं रोज उसे देखती थी और सोचती थी कि उसने जाने कैसे यह भरपूरता अपने मोटे और साँवले होंठों में संभालकर रख ली थी। मैं उसे देखती थी और मुस्करा देती थी। वह मुझे देखती और मुस्करा देती। और इस तरह मुझे उसका चेहरा बगीचे के सैकड़ों फूलों में से एक फूल जैसा ही लगने लगा था। मुझे बहुत–से फूलों के नाम नहीं आते, पर उसका नाम, मुझे मालूम हो गया था– "मांस का फूल।"

एक बार मैं पूरे तीन दिन उसके बगीचे में न जा सकी। चौथे दिन जब गई तो उसकी आँखें मुझसे इस तरह मिलीं जैसे तीन दिनों से नहीं, तीन सालों से बिछुड़ी हुई हों।

"क्या हुआ बिटिया! इतने दिन आई नहीं?"

"सर्दी बहुत थी अम्माँ! बस बिस्तर में ही बैठी रही।"

"सचमुच बहुत जाड़ा पड़ता है तुम्हारे देश में"

"तुम्हारा कौन–सा गाँव है अम्माँ?"

"अब तो यहाँ झोंपड़ी डाल ली, यही मेरा गाँव है।"

"यह तो ठीक है, फिर भी अपना गाँव अपना गाँव होता है।"

"अब तो उस धरती से नाता टूट गया बिटिया! अब तो यही कार्तिक मेरे गाँव की धरती है और यही मेरे गाँव का आकाश है।"

"यही कार्तिक" कहते हुए उसने झुग्गी के पास बैठे हुए अपने मर्द की तरफ देखा। आयु के कुबड़ेपन से झुका हुआ एक आदमी ज़मीन पर तीले और रस्सियाँ बिछाकर एक चटाई बुन रहा था। दूर पड़े हुए कुछ गमलों में लगे हुए फूलों को सर्दी से बचाने के लिए शायद चटाइयों की आड़ देनी थी।

केतकी ने बहुत छोटे वाक्य में बहुत बड़ी बात कह दी थी। शायद बहुत बड़ी सच्चाइयों को अधिक विस्तार की जरूरत नहीं होती। मैं एक हैरानी से उस आदमी की तरफ देखने लगी जो एक औरत के लिए धरती भी बन सकता था और आकाश भी।

"क्या देखती हो बिटिया! यह तो मेरी "बिरंग चिट्ठी" है।"

"बैरंग चिट्ठी!"

"जब चिट्ठी पर टिक्कप नहीं लगाते तो वह बिरंग हो जाती है।"

"हाँ अम्माँ! जब चिट्ठी पर टिकट नहीं लगी होती तो वह बैरंग हो जाती है।"

"फिर उसको लेने वाला दुगुना दाम देता है।"

"हाँ अम्मा! उसको लेने के लिए दुगने पैसे देने पड़ते हैं।"

"बस यही समझ लो कि इसको लेने के लिए मैंने दुगने दाम दिए हैं। एक तो तन का दाम दिया और एक मन का।"

मैं केतकी के चेहरे की तरफ देखने लगी। केतकी का सादा और साँवला चेहरा जिंदगी की किसी बड़ी फिलासफी से सुलग उठा था।

"इस रिश्ते की चिट्ठी जब लिखते हैं तो गाँव के बड़े–बूढ़े इसके ऊपर अपनी मोहर लगाते हैं।"

"तो तुम्हारी इस चिट्ठी के ऊपर गाँव वालों ने अपनी मोहर नहीं लगाई थी ?"

"नहीं लगाई तो क्या हुआ! मेरी चिट्ठी थी, मैंने ले ली। यह कार्तिक की चिट्ठी तो सिर्फ केतकी के नाम लिखी गई थी।"

"तुम्हारा नाम केतकी है? कितना प्यारा नाम है। तुम बड़ी बहादुर औरत हो अम्माँ!

"मैं शेरों के कबीले में से हूँ।"

"वह कौन–सा कबीला है अम्माँ?"

"यही जो जंगल में शेर होते हैं, वे सब हमारे भाई–बंधु हैं। अब भी जब जंगल में कोई शेर मर जाए तो हम लोग तेरह दिन उसका मातम मनाते हैं। हमारे कबीले के मर्द लोग अपना सिर मुंड़ा लेते हैं, और मिट्‌टी की हंडिया फोड़कर मरनेवाले के नाम पर दाल–चावल बाँटते हैं।''

"सच अम्माँ?"

"मैं चकमक टोला की हूँ जिसके पैरों में कपिल धारा बहती है।'

"यह कपिल धारा क्या है अम्माँ!"

"तुमने गंगा का नाम सुना है?"

"गंगा नदी?"

"गंगा बहुत पवित्र नदी है, जानती हो न?"

"जानती हूँ।"

"पर कपिल धारा उससे भी पवित्र नदी है। कहते हैं कि गंगा मइया एक साल में एक बार काली गाय का रूप धारणकर कपिल धारा में स्नान करने के लिए जाती है।

"वह चकमक टोला किस जगह है अम्माँ?"

"करंजिया के पास"

"और यह करंजिया?"

"तुमने नर्मदा का नाम सुना है?"

"हाँ, सुना है।"

"नर्मदा और सोन नदी भी नज़दीक पड़ती हैं।"

"ये नदियाँ भी बहुत पवित्र हैं?"

"उतनी नहीं, जितनी कपिल धारा। यह तो एक बार जब धरती की खेतियाँ सूख गई थीं और लोग बचारे उजड़ गए थे तो उनका दु:ख देखकर ब्रह्मा जी रो पड़े थे। ब्रह्माजी के दो आँसू धरती पर गिर पड़े। बस जहाँ उनके आँसू गिरे वहाँ ये नर्मदा नदी और सोन नदी बहने लगीं। अब इनसे खेतों को पानी मिलता है।"

"और कपिल धारा से?"

"इससे तो मनुष्य की आत्मा को पानी मिलता है। मैंने कपिल धारा के जल में इशनान किया और कार्तिक को अपना पति मान लिया।"

"तब तुम्हारी उमर क्या होगी अम्माँ?"

"सोलह बरस की होगी ।"

"पर तुम्हारे माँ–बाप ने कार्तिक को तुम्हारा पति क्यों न माना?" "बात यह थी कि कार्तिक की पहले एक शादी हुई थी। इसकी औरत मेरी सखी थी।

बड़ी भली औरत थी। उसके घर चुंदरू–मुंदरू दो बेटे हुए। दोनों ही बेटे एक ही दिन जन्मे थे। हमारे गाँव का "गुनिया" कहने लगा कि यह औरत अच्छी नहीं है। इसने एक ही दिन अपने पति का संग भी किया था और अपने प्रेमी का भी। इसीलिए एक की जगह दो बेटे जन्मे हैं।

"उस बेचारी पर इतना बड़ा दोष लगा दिया?"

"पर गुनिया की बात को कौन टालेगा। गाँव का मुखिया कहने लगा कि रोपी को प्रायश्चित करना होगा। उसका नाम रोपी था। वह बेचारी रो–रोकर आधी रह गई।"

"फिर?"

"फिर ऐसा हुआ कि रोपी का एक बेटा मर गया। गाँव का गुनिया कहने लगा कि जो बेटा मर गया वह पाप का बेटा था इसीलिए मर गया है।

"फिर?"

"रोपी ने एक दिन दूसरे बेटे को पालने में डाल दिया और थोड़ी दूर जाकर महुए के फूल डलियाने लगी। पास की झाड़ी से भागता हुआ एक हिरन आया। हिरन के पीछे शिकारी कुत्ता लगा हुआ था। शिकारी कुत्ता जब पालने के पास आया तो उसने हिरन का पीछा छोड़ दिया और पालने में पड़े हुए बच्चे को खा लिया।"

"बेचारी रोपी।"

"अब गाँव का गुनिया कहने लगा कि जो पाप का बेटा था उसकी आत्मा हिरन की जून में चली गई। तभी तो हिरन भागता हुआ उस दूसरे बेटे को भी खाने के लिए पालने के पास आ गया।"

"पर बच्चे को हिरन ने तो कुछ नहीं कहा था। उसको तो शिकारी कुत्ते ने मार दिया था।

"गुनिए की बात को कोई नहीं समझ सकता बिटिया! वह कहने लगा कि पहले तो पाप की आत्मा हिरन में थी, फिर जल्दी से उस कुत्ते में चली गई। गुनिया लोग बात की बात में मरवा डालते हैं। बसाई का नंदा जब शिकार करने गया था तो उसका तीर किसी हिरन को नहीं लगा था। गुनिया ने कह दिया कि जरूर उसके पीछे उसकी औरत किसी गैर मरद के साथ सोई होगी, तभी तो उसका तीर निशाने पर नहीं लगा। नंदा ने घर आकर अपनी औरत को तीर से मार दिया।"

"गुनिया ने कार्तिक से कहा कि वह अपनी औरत को जान से मार डाले। नहीं मारेगा तो पाप की आत्मा उसके पेट से फिर जनम लेगी और उसका मुख देखकर गाँव की खेतियाँ सूख जाएँगी।"

"फिर?"

कार्तिक अपनी औरत को मारने के लिए सहमत न हुआ। इससे गुनिया भी भी नाराज हो गया और गाँव के लोग भी।"

"गाँव के लोग नाराज हो जाते हैं तो क्या करते हैं?" "लोग गुनिया से बहुत डरते हैं। सोचते हैं कि अगर गुनिया जादू कर देगा तो सारे गाँव के पशु मर जाएँगे। इसलिए उन्होंने कार्तिक का हुक्का–पानी बंद कर दिया।

"पर वे यह नहीं सोचते थे कि अगर कोई इस तरह अपनी औरत को मार देगा तो वह खुद जिंदा कैसे बचेगा?"

"क्यों, उसको क्या होगा?"

"उसको पुलिस नहीं पकड़ेगी?"

"पुलिस नहीं पकड़ सकती। पुलिस तो तब पकड़ती है जब गाँववाले गवाही देते हैं। पर जब गाँववाले किसी को मारना ठीक समझते हैं तो पुलिस को पता नहीं लगने देते।"

"फिर क्या हुआ"

"बेचारी रोपी ने तंग आकर महुए के पेड़ से रस्सी बाँध ली और अपने गले में डालकर मर गई।"

"बेचारी बेगुनाह रोपी!"

"गाँववालों ने तो समझा कि खतम हो गई। पर मुझे मालूम था कि बात खत्म नहीं हुई। क्योंकि कार्तिक ने अपने मन में ठान लिया था कि वह गुनिया को जान से मार डालेगा। यह तो मुझे मालूम था कि गुनिया जब मर जाएगा तो मरकर राखस बनेगा।"

"वह तो जीते जी भी राक्षस था!"

"जानती हो राक्षस क्या होता है?

"क्या होता है?"

"जो आदमी दुनिया में किसी को प्रेम नहीं करता, वह मरकर अपने गाँव के दरख़्तों पर रहता है। उसकी रूह काली हो जाती है, और रात को उसकी छाती से आग निकलती है। वह रात को गाँव की लड़कियों को डराता है।"

"फिर?"

"मुझे उसके मरने का तो गम नहीं था। पर मैं जानती थी कि कार्तिक ने अगर उसको मार दिया तो गाँव वाले कार्तिक को उसी दिन तीरों से मार देंगे।

"फिर?"

"मैंने कार्तिक को कपिल धारा में खड़े होकर वचन दिया कि मैं उसकी औरत बनूँगी। हम दोनों इस देश से भाग जाएँगे। मैं जानती थी कि कार्तिक उस देश में रहेगा तो किसी दिन गुनिया को जरूर मार देगा। अगर वह गुनिया को मार देगा तो गाँववाले उसको मार देंगे।""तो कार्तिक को बचाने के लिए तुमने अपना देश छोड़ दिया?"

"जानती हूँ, वह धरती नरक होती है जहाँ महुआ नहीं उगता। पर क्या करती?

अगर वह देश न छोड़ती तो कार्तिक जिंदा न बचता और जो कार्तिक मर जाता तो वह धरती मेरे लिए नरक बन जाती। देश–देश इसके साथ घूमती रही। फिर हमारी रोपी भी हमारे पास लौट आई।"

"रोपी कैसे लौट आई?"

"हमने अपनी बिटिया का नाप रोपी रख दिया था। यह भी मैंने कपिल धारा में खड़े होकर अपने मन से वचन लिया था कि मेरे पेट से जब कभी कोई बेटी होगी, मैं उसका नाम रोपी रखूँगी। मैं जानती थी कि रोपी का कोई कसूर नहीं था। जब मैंने बिटिया का नाम रोपी रखा तो मेरा कार्तिक बहुत खुश हुआ।"

"अब तो रोपी बहुत बड़ी होगी?" "अरी बिटिया! अब तो रोपी के बेटे भी जवान होने लगे। बड़ा बेटा आठ बरस का है और छोटा बेटा छह बरस का। मेरी रोपी यहाँ के बड़े माली से ब्याही है। हमने दोनों बच्चों के नाम चुंदरू–मुंदरू रखे हैं।"

"वही नाम जो रोपी के बच्चों के थे ?"

"हाँ, वही नाम रखे हैं। मैं जानती हूँ, उनमें से कोई भी पाप का बच्चा नहीं था।"

मैं कितनी देर केतकी के चेहरे की तरफ देखती रही।

कार्तिक की वह कहानी जो किसी गुनिए ने अपने निर्दयी हाथों से उधेड़ दी थी, केतकी अपने मन के सुच्चे रेशमी धागे से उस उधड़ी हुई कहानी को फिर से सी रही थी।

यह एक कहानी की बात है। और मुझे भी मालूम नहीं, आपको भी मालूम नहीं कि दुनिया के ये 'गुनिए' दुनिया की कितनी कहानियों को रोज उधेड़ते हैं।

❑❑❑

स्मृति कलश

घूँघट

इस्मत चुग़ताई
(अगस्त, 1911 – अक्तूबर, 1991)

सफेद चाँदनी बिछे तख़्त पर बगुले के परों से ज्यादा सफेद बालों वाली दादी बिलकुल संगमरमर का भद्दा–सा ढेर मालूम होती थीं। जैसे उनके जिस्म में खून की एक बूँद ना हो। उनकी हल्की सुरमई आँखों की पुतलियों तक पर सफेदी रींग आई थी और जब वो अपनी बेनूर आँखें खोलतीं तो ऐसा मालूम होता, सब रौजन बंद हैं। खिड़कियाँ दबीज़ पर्दों के पीछे सहमी छिपी बैठी हैं। उन्हें देखकर आँखें चौंधियाने लगती थीं जैसे इर्द–गिर्द पिसी हुई चाँदी का ग़ुबार मुअल्लक हो। सफेद चिनगारियाँ–सी फूट रही हों। उनके चेहरे पर पाकीज़गी और दोशीज़गी का नूर था। अस्सी बरस की इस कुँवारी को कभी किसी मर्द ने हाथ नहीं लगाया था।

जब वो तेरह–चौदह बरस की थी तो बिलकुल फूलों का गुच्छा लगती थीं। कमर से नीचे झूलते हुए सुनहरी बाल और मैदा शहाब रंगत। शबाब जमाने की गर्दिश ने चूस लिया, सिर्फ मैदा रह गया है। उनके हुस्न का ऐसा शोहरा था कि अम्माँ बावा की नींदें हराम हो गई थीं। डरते थे कहीं उन्हें जिन्नात ना उड़ा के लिए जाएँ क्योंकि वो इस धरती की मख़लूक़ नहीं लगती थीं।

फिर उनकी मँगनी हमारी अम्माँ के मामूँ से हो गई। जितनी दुल्हन गोरी थी, उतने ही दूल्हा मियाँ स्याह भट्‌ट थे। रंगत को छोड़कर हुस्न–ओ–मर्दानगी का नमूना थे– क्या डसी हुई फटारा आँखें, तलवार की धार जैसी खड़ी नाक और मोतियों को माँद करने वाले दाँत, मगर अपनी रंगत की स्याही से बेतरह चिढ़ते थे।

जब मँगनी हुई तो सबने खूब छेड़ा, "हाय दूल्हा हाथ लगाएगा तो दुल्हन मैली हो जाएगी।"

"चाँद को जानो गरहन लग जाएगा।"

काले मियाँ उस वक्त सत्रह बरस के ख़ुद सर बिगड़े दिल बिछड़े थे। उन पर दुल्हन के हुस्न की कुछ ऐसी हैबत तारी हुई कि रात ही रात जोधपुर अपने नाना के यहाँ भाग गए। दबी ज़बान से अपने हमउम्रों से कहा, "मैं शादी नहीं करूँगा।"

ये वो जमाना था जब चूँ चरा करने वालों को जूते से दुरुस्त कर लिया जाता था। एक दफ़ा मँगनी हो जाएगी तो फिर तोड़ने की मजाल नहीं थी। नाकें कट जाने का ख़दशा होता था। और फिर दुल्हन में ऐब क्या था? यही कि वो बेइंतेहा हसीन थी। दुनिया हुस्न की दीवानी है और आप हुस्न से नालाँ, बदमजाकी की हद।

"वो मगरूर है," दबी जबान से कहा।

"कैसे मालूम हुआ?"

जबकि कोई सबूत नहीं मगर हुस्न जाहिर है मगरूर होता है और काले मियाँ किसी का ग़ुरूर झेल जाएँ ये ना–मुमकिन। नाक पर मक्खी बिठाने के रवादार ना थे।

बहुत समझाया कि मियाँ, वो तुम्हारे निकाह में आने के बाद तुम्हारी मिल्कियत होगी। तुम्हारे हुक्म से दिन को रात और रात को दिन कहेगी। जिधर बिठाओगे बैठेगी, उठाओगे उठेगी।

कुछ जूते भी पड़े और आखिर–ए–कार काले मियाँ को पकड़ बुलाया गया और शादी कर दी गई।

डोमनियों ने कोई गीत गा दिया। कुछ गोरी दुल्हन और काले दूल्हा का। इस पर काले मियाँ फनफना उठे। ऊपर से किसी ने चुभता हुआ एक सहरा पढ़ दिया। फिर तो बिलकुल ही अलिफ़ हो गए। मगर किसी ने उनके तंतना को संजीदगी से न लिया। मज़ाक़ ही समझे रहे और छेड़ते रहे।

दूल्हा मियाँ शमशीर–ए–बरहना बने जब दुल्हन के कमरे में पहुँचे तो लाल–लाल चमकदार फूलों में उलझी–सुलझी दुल्हन देखकर पसीने छूट गए। उसके सफेद रेशमी हाथ देखकर खून सवार हो गया। जी चाहा अपनी स्याही इस सफेदी में ऐसी घोट डालें कि इम्तियाज़ ही खत्म हो जाए।

काँपते हाथों से घूँघट उठाने लगे तो वो दुल्हन बिलकुल औंधी हो गई।

"अच्छा तुम ख़ुद ही घूँघट उठा दो।"

दुल्हन और नीचे झुक गई।

"हम कहते हैं। घूँघट उठाओ!" डपटकर बोले।

दुल्हन बिलकुल गेंद बन गई।

"अच्छा जी इतना ग़रूर!" दूल्हे ने जूते उतारकर बग़ल में दबाए और पाइंबाग वाली खिड़की से कूदकर सीधे स्टेशन, फिर जोधपुर।

इस ज़माने में तलाक–वलाक का फ़ैशन नहीं चला था। शादी हो जाती थी तो बस हो ही जाती थी। काले मियाँ सात बरस घर से गायब रहे। दुल्हन ससुराल और मायके के दरमयान मुअल्लक़ रहीं। माँ को रुपया–पैसा भेजते रहे। घर की औरतों को पता था कि दुल्हन अनछुई रह गई। होते–होते मर्दों तक बात पहुँची। काले मियाँ से पूछगछ की गई।

"वो मग़रूर है।"

"कैसे मालूम?"

"हमने कहा घूँघट उठाओ, नहीं सुना।"

"अजब गाऊदी हो, अमां कहीं दुल्हन ख़ुद घूँघट उठाती है। तुमने उठाया होता।"

"हरगिज़ नहीं, मैंने कसम खाई है। वो ख़ुद घूँघट नहीं उठाएगी तो चूल्हे में जाए।"

"अमां अजब नामर्द हो। दुल्हन से घूँघट उठाने को कहते हो। फिर कहोगे वो आगे भी पेश—क़दमी करे, अजी लाहौल वलाक़ुव्वा।"

गोरी बी के माँ—बाप इकलौती बेटी के गम में घुनने लगे। बच्ची में क्या ऐब था कि दूल्हे ने हाथ ना लगाया। ऐसा अंधेर तो ना देखा, ना सुना।

काले मियाँ ने अपनी मर्दानगी के सबूत में रंडीबाज़ी, लौंडेबाज़ी, मुर्ग़बाज़ी, कबूतरबाज़ी ग़रज़ कोई बाज़ी ना छोड़ी और गोरी बी घूँघट में सुलगती रहीं।

नानी अम्माँ की हालत खराब हुई तो सात बरस बाद काले मियाँ घर लौटे। इस मौका को गनीमत समझकर फिर बीवी से उनका मिलाप कराने की कोशिश की गई। फिर से गोरी बी दुल्हन बनाई गईं। मगर काले मियाँ ने कह दिया, "अपनी माँ की कसम खा चुका हूँ, घूँघट मैं नहीं उठाऊँगा।"

सब ने गोरी बी को समझाया, "देखो बनू सारी उम्र का भुगतान है। शर्म—ओ—हया को रखो ताक में और जी कड़ा करके तुम आप ही घूँघट उठा देना। इसमें कुछ बे—शरमी नहीं, वो तुम्हारा शौहर है। ख़ुदा—ए—मजाज़ी है। उसकी फ़रमांबर्दारी तुम्हारा फ़र्ज़ है। तुम्हारी निजात उसका हुक्म मानने ही में है।"

फिर से दुल्हन सजी, सेज सजायी, पुलाव ज़र्दा पका और दूल्हा मियाँ दुल्हन के कमरे में धकेले गए। गोरी बी अब इक्कीस बरस की नौख़ेज़ हसीना थीं। अंग—अंग से जवानी फूट रही थी। आँखें बोझल थीं। साँसें भरी थीं। सात बरस उन्होंने इसी घड़ी के ख़ाब देखकर गुज़ारे थे। कमसिन लड़कियों ने बीसियों राज़ बताकर दिल को धड़कना सिखा दिया था। दुल्हन के हिना आलूदा हाथ पैर देखकर काले मियाँ के सर पर जिन मंडलाने लगे। उनके सामने उनकी दुल्हन रखी थी। चौदह बरस की कच्ची कली नहीं, एक मुकम्मल गुलदस्ता। राल टपकने लगी। आज जरूर दिन और रात को मिलकर सर्मगीं शाम का समाँ बंधेगा। उनका तजर्बेकार जिस्म शिकारी चीते की तरह मुँह—ज़ोर हो रहा था। उन्होंने अब तक दुल्हन की सूरत नहीं देखी थी। बदकारियों में भी इस रस—भरी दुल्हन का तसव्वुर दिल पर आरे चलाता रहा था।

"घूँघट उठाओ।" उन्होंने लरज़ती हुई आवाज़ में हुक्म दिया।

दुल्हन की छंगुली भी ना हिली।

"घूँघट उठाओ।" उन्होंने बड़ी लजाजत से रोनी आवाज़ में कहा।

सुकूत तारी है।

"अगर मेरा हुक्म नहीं मानोगी तो फिर मुँह नहीं दिखाऊँगा।"

दुल्हन टस से मस ना हुई।

काले मियाँ ने घूँसा मारकर खिड़की खोली और पाइंबाग़ में कूद गए।

इस रात के गए वो फिर वापिस ना लौटे।

अनछुई गोरी बी तीस साल तक उनका इंतेज़ार करती रहीं। सब मर–खप गए। एक बूढ़ी ख़ाला के साथ फ़तहपुर सीकरी में रहती थीं कि सुनावनी आयी–दूल्हा आए हैं।

दूल्हा मियाँ मोरियों में लोट–पीटकर अमराज़ का पुलंदा बने आख़िरी दम वतन लौटे। दम तूरने से पहले उन्होंने इल्तिजा की कि गोरी बी से कहो आ जाओ कि दम निकल जाए।

गोरी बी खम्भे से माथा टिकाए खड़ी रहीं। फिर उन्होंने संदूक़ खोलकर अपना तार–तार शहाना जोड़ा निकाला। आधे सफ़ेद सर में सुहाग का तेल डाला और घूँघट सम्भालती लब–ए–दम मरीज़ के सिरहाने पहुँचीं।

"घूँघट उठाओ।" काले मियाँ ने नज़अ के आलम में सिसकी भरी।

गोरी बी के लरज़ते हुए हाथ घूँघट तक उठे और नीचे गिर गए।

काले मियाँ दम तोड़ चुके थे।

उन्होंने वहीं उकड़ूँ बैठकर पलंग के पाए पर चूड़ियाँ तोड़ीं और घूँघट की बजाए सर पर रंडापे का सफ़ेद दुपट्टा खींच लिया।

❑❑❑

सबसे खतरनाक होता है
घर से निकलना काम पर
और काम से लौटकर घर आना

– पाश

आलेख

आलोचना का निर्मल पाठ: निर्मला जैन

डॉ. सुनीता

एक कविता–संग्रह और एक कहानी–संग्रह सहित तीन पुस्तकें प्रकाशित। अनेक पुरस्कारों से सम्मानित।

सुभोर में सूचना आई कि हिंदी साहित्य की समृद्ध दुनिया में स्त्री चेतना की प्रखर आलोचक निर्मला जैन का गुरुग्राम में देहावसान हो गया। स्त्री आलोचना की युग प्रवर्तक का खामोश हो जाना, जानकर स्तब्ध होना लाज़मी था।

निःशब्द... शून्य में 15 अप्रैल, 2025 की खबर कुछ ही देर में तेजी से फैली। चहुँ ओर शोक की लहर दौड़ गई। कागज़ को संवेदना से सींचने वाली निर्मला अनगिनत दिलों में निशान छोड़ चुपके से बहुत दूर निकल गईं, इतना कि वापसी नामुमकिन...। अब तो बस उनके जीवन में जो तेवर था, वही बचा रह गया। ख्यातिलब्ध जैन के त्वरा–तेवर, पीड़ा, प्रेम, संघर्ष और संवेदनापूर्ण सघनता की गूंज भीतर तक चुभी। कायदे से कहें तो उनके निधन से एक युग का युगांत सहज स्वीकारना असंभव लगा। जबकि हम सबके मध्य उनके विचार, लेखनी, मानवीय स्पर्शकेंद्रित बोध सदा के लिए चिपट हैं। कुल जमा इतनी सी बात है। यही काफी है? शायद नहीं, क्योंकि तीक्ष्ण मेधा की शख्सियत, स्पष्टवादी आलोचक और कद्दावर स्वभाव की निर्मला जैन का साहित्यिक अवदान अविस्मरणीय है। उनका व्यक्तित्व ऐसा कि नाम सुनते ही एक युग की स्मृति सजीव हो उठती है। उन्होंने अपनी बौद्धिक दृढ़ता व मानवीय संवेदना से पूरे एक कालखंड को सींचित किया। बहुविध सृजनात्मक आयामों से प्रत्येक कलमकार का ध्यान खींचती रहीं। एकदम से जाने की खबर से भीतर रिक्तता महसूस हुई। ओह.....

वह चली गईं तो उनकी आत्मकथा 'जमाने में हम' और संस्मरण 'दिल्ली: शहर दर शहर' के पृष्ठ फड़फड़ाए। कलम की रोशनाई में तत्कालीन दिल्ली का समय–समाज दृश्यमान हुआ। वह बेशोर अपनी सघन आभा से भविष्य की नींव में मजबूत पाया जोड़ती जिजीविषा की प्रतिमूर्ति बन उभरीं। दरअसल साहस, स्वतंत्रता और सत्य के प्रति अटूट निष्ठा ही उनकी निर्मिति थी। यह सच है कि उनका औचक जाना साहित्य जगत की अपूरणीय क्षति है किंतु देहगगन के पार जाने की क्रिया नियत है। नियति

के नियम कब बदले हैं जो अब बदल जाते...।

20 अक्तूबर 2020 तक उनका लेखकीय वेग क्रमशः जस का तस बरकरार रहा। यह तारीख जेहन में कैद है क्योंकि यही हमारी आखिरी भेंट साबित हुई। वे डीएलएफ फेज वन के अपने भव्य भवन में रहती थीं। अब वहाँ सन्नाटा उतर चुका है। ये उन दिनों की बात है जब वे सदेह थीं। कोटर के भीतर खूबसूरत बैठक। सुरुचिपूर्ण साज–सज्जा के बीच दो खाली कुर्सी। सुबह का वक्त। पक्षियों का वृंदगान। प्रचंड गर्मी का कहीं नामोनिशान न था। हाँ! उमस अपने उरुज पर था। तनिक देर में ही मैडम जैन भीतर से बैठक में आईं। लाल बॉर्डर में झक्क सफेद कॉटन साड़ी। कैमरा–लाइट की सेटिंग देख। फिर वो उल्टे कदम वापस लौटीं। थोड़ी देर बाद लश्कारे मारती एक कलरफुल साड़ी में दूर से ही नवोढ़ा युवती–सी मुस्कुराईं। बैठक में स्फीत मुस्कान के मोती बिखर गए। समवेत स्वर गूँजे। 'शुरू करें...। आरामदायक सोफा छोड़कर बड़े अदब से बैठक में रखी दो खाली कुर्सी पर दोनों जन बारी–बारी बैठे। प्रश्नोत्तर संवाद का सिलसिला चल पड़ा। कई घंटे तक औपचारिक–अनौपचारिक बातें होती रहीं। देश–दुनिया, समाज के वैविध्यपूर्ण पहलुओं पर चिंतन–मंथन के मध्य समयोचित हमारे ठहाके गूँजते रहे। क्षणिक खान–पान भी हुआ। अब वो दिन रहे नहीं क्योंकि वे हमेशा के लिए खामोश हो चुकी हैं। कमोबेश इस वक्त मेरे शब्द अनाथ हैं। फिर भी उनके आदर के प्रतिसंसार में कुछ भाव उभरे हैं जिसे ज्यों का त्यों दर्ज कर रही हूँ। उस दिन के दृश्य स्मृति–कोटर में कैद हो चुके हैं। थाती सँजोए रखने के प्रयास में हृदय, मुफीद गिरह तलाश में भटकन का शिकार है। शायद, वे ऊपर से निहार रही होंगी या फिर नहीं भी। अबूझ पहेली जिंदगी जीते–जी नहीं सुलझी तो मरने के बाद क्या ही पल्ले पड़ेगी... अंतिम जैसा कुछ होता है तो एक आखिरी प्रणाम निवेदित है।

यथार्थ को झुठलाया जा सकता है, उसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। उनकी स्मृति में भावपूर्ण आलेख उनके स्नेह को सँजोने का एक विनम्र प्रयास भर है। सच तो ये है कि उनके औरा के अनुकूल शब्द संभवतः शब्दकोश में भी अनुपलब्ध है। बेशक रचनाएँ जीवंत उपस्थिति का पुनार्जन हैं। अपने बातचीत में वे कहती हैं– "नए दौर की स्त्रियाँ समझदार और ऊर्जावान हैं। मुश्किल सफर को आसान बनाने का हुनर रखती हैं। दरअसल अपनी क्षमताओं का पूरा इस्तेमाल करके ही आगे बढ़ा जा सकता है।" स्पष्टवादिता ही उनकी ताकत थी।

पूरे एक युग की साक्षी निर्मला जैन का जन्म 28 अक्टूबर, 1932 को दिल्ली के एक व्यापारी परिवार में हुआ था। दिल्ली विश्वविद्यालय से बी.ए., एम.ए., पीएच.डी. और डी.लिट् की उपाधियाँ हासिल कीं। निर्मला जैन ने समय–समाज की पारंपरिक, सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक सीमाओं को लांघकर अपनी अलग पहचान बनाई।

उनकी जीवट जीवन–शैली प्रेरणा का स्रोत है।

शैक्षणिक यात्रा लेडी श्रीराम कॉलेज (1956–70), तत्पश्चात् दिल्ली विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग (1970–1996) में अध्यापन किया। बतौर स्त्री विभागाध्यक्ष कीर्तिमान रचा। अपनी गहरी साहित्यिक अभिरुचि से विद्यार्थियों को निरंतर समृद्ध किया। उनके स्वयं के व्यक्तित्व में अनोखा संतुलन था। एक ओर तर्कशील और संवेदनशील थीं तो दूसरी ओर परंपरागत भारतीय संस्कारों से भी जुड़ी रहीं। यह और बात है कि वे स्वतंत्र चेतना की प्रबल वाहक थीं। एक स्त्री के तौर पर समय प्रवाह को अपने अनुकूल बनाने उनमें गजब का हुनर था। हालांकि सकारात्मक परिवेश संरचना में उनका तेवर ही उनका सच्चा साथी था। वे आजीवन श्रमपूर्ण परिश्रम की क़द्रदान रहीं। उनके पठन–पाठन की ललक ही उन्हें बहादुर, कद्दावर, बोल्ड, स्पष्टवादी, बौद्धिक जागरूक मनुष्य बनने की सहयोगी रही। बिला शक ऐसा कह सकते हैं कि पुरुषप्रधान साहित्यिक और शैक्षणिक क्षेत्र में अपनी अलहदा स्थान रखने वाली निर्मला प्रथम योद्धा स्त्री बनी। उनके ख्याति के परिप्रेक्ष्य में गढ़े कथन अतिरेक कम उनवान अधिक हैं। अपनी सूझ–बूझ से साहित्य में अमिट छाप छोड़ी। कमोबेश हर विपरीत धारा को अपनी ओर मोड़ा। निर्विकार और साहसी होना दुर्लभ है, यह दुर्लभता उनमें व्यापक मात्रा में थी।

अपने एक साक्षात्कार में उनका यह कथन "स्त्री के हितों को ध्यान में रखकर, स्त्री के साथ जेंडर के आधार पर होने वाले भेदभाव को खत्म करने के इरादे से किया गया विमर्श ही स्त्री विमर्श है। यह साहित्य में भी हो सकता है और साहित्य से इतर भी। बल्कि मैं कहूँगी कि साहित्य से इतर का जो स्त्री विमर्श है, जो आम स्त्री के जीवन में घट रहा है वह ज्यादा पावरफुल है। भारत में स्त्री विमर्श की काफी कमी है। यहाँ अब तक ओरिजनल विचार नहीं पनप पाए हैं।"- उनकी दुर्लभ दृष्टि की बानगी है। लीक से हटकर चलना चुना इसलिए अवरोधों को धता बताती चलती रहीं।

हिंदी साहित्य की कद्दावर हस्ती निर्मला जैन का आलोचनात्मक मूल्यांकन हिंदी आलोचना के परिदृश्य में अनूठा है। समाज के सूक्ष्म से सूक्ष्म पक्षों पर बेबाक राय रखने में उनका कोई सानी नहीं था। उनकी प्रमुख रचनाओं में 'आधुनिक हिंदी काव्य में रूप–विधाएँ', 'आधुनिक साहित्यः मूल्य और मूल्यांकन', 'हिंदी आलोचना का दूसरा पाठ', 'कथा–समय में तीन हमसफ़र', 'दिल्लीः शहर–दर–शहर', 'कविता का प्रति–संसार', और 'महादेवी साहित्य' (4 खंड) शामिल हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने 'एडविना और नेहरू', 'सच, प्यार', 'उद्दात के विषय में' और 'थोड़ी–सी शरारत' जैसे अनुवाद कार्य भी किए। वह वास्तविक बहुमुखी प्रतिभा की धनी थीं।

आत्मकथा 'ज़माने में हम' के पृ. सं. 77 (प्रथम संस्करण) में लिखती हैं कि– "ग्रामीण परिवेश से जुड़े ऐसे कई अनुभव हैं जो मेरी यादों में हैं। इतना ही नहीं, मेरे

आचरण पर भी कहीं–न–कहीं जातीय अंशों की झलक है जिसे मैंने सम्मिलित रूप से आत्मसात कर लिया था।" यह आत्मस्वीकारोक्ति उनके साहस का द्योतक है।

निर्मला जैन की आलोचना दृष्टि साहित्यिक विश्लेषण तक सीमित न होकर वस्तुतः सामाजिक, सांस्कृतिक और वैचारिक चेतना तक विस्तार लिए है। आधुनिक हिंदी गद्य–पद्य साहित्य में 'रूप–विधाएँ', 'रस–सिद्धांत और सौंदर्यशास्त्र', 'हिंदी आलोचना का दूसरा पाठ' और 'कविता का प्रति–संसार' से हिंदी साहित्य में कई नए विमर्शों की शुरुआत करती हैं। उन्होंने महादेवी वर्मा और जैनेन्द्र कुमार के साहित्य को संकलित और विश्लेषित कर नई पीढ़ी को पाठ की नई दृष्टि दी है। ऐसे कहें कि उन्होंने पठनीयता शैली को अधिक सुगम बनाया तो अतिरेक न होगा।

हिंदी में अनुवाद की क़िल्लत बरकरार है। तथापि निर्मला जैन के कम अनुवाद भी अधिक मूल्यवान हैं जैसे 'बांग्ला साहित्य का इतिहास', 'एडविना और नेहरू' और 'उद्दात के विषय में' किताबों से उनके व्यापकता व साहित्य के प्रति प्रतिबद्धता का गहरा बोध होता है। निर्मला जैन की लेखनी की खास विशेषता गरिमापूर्ण असहमति और दृढ़तापूर्वक व्यक्त विचार थे। उनकी आलोचनात्मक चेतना को फौरी तौर पर रेखांकित करना कठिन है, बेशक नामुमकिन नहीं। वे साहित्य और समाज दोनों को बड़ी निर्भय होकर चुनौती देती रहीं। चुनौती देना और स्वीकारना जानती थीं। पलायन की प्रवृत्ति से कोसों दूर रहीं। अपने समकालीनों के प्रति स्पष्टवादी थीं। आलोचना में मिताई के प्रति क्लियर और सख्त थीं। वह लिखती हैं कि "मैंने व्यक्तिगत और व्यावसायिक संबंधों को कभी नहीं मिलाया अर्थात् मित्रता एक जगह और लेखक–आलोचक का संबंध एक जगह।"

विमर्श कोटर से परे स्त्री सशक्तीकरण की जिंदा मिसाल निर्मला जैन आधुनिक स्त्री आलोचना साहित्य की अग्रदूत कही जा सकती हैं। बेशक उनका योगदान आलोचना साहित्य तक सीमित न होकर वैश्विक, वैचारिक व सामाजिक–राजनीतिक समझ से संपन्न रहा। पुरुष वर्चस्व के हिंदी विभाग में अपनी दृढ़ता और सच्चाई के दम पर अपनी जगह सुनिश्चित करने वाली निर्मला जैन ने प्रमाणित किया कि बौद्धिकता और संवेदनशीलता लिंगविहीन है जिसकी झलक आत्मकथा 'ज़माने में हम' में बखूबी मिलती है। उनकी आत्मकथा कृति में निजी जीवन यात्रा संग सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि कुशलता से चिन्हित हुई हैं। समय–सापेक्ष का संपूर्ण परिवेशगत यथार्थ उजागर होता है। कुल जमा अपनी कलम की बुलंद आवाज से उन्होंने असाधारण साहस का परिचय दिया जिसकी पुख्ता शिनाख़्त संस्मरण 'दिल्ली : शहर दर शहर' में दर्ज है। उन्होंने शहरों के सांस्कृतिक और सामाजिक ताने–बाने को सघन संवेदनशीलता से चित्रित किया। वे ऐतिहासिक परिदृश्य वर्णन में सघन भावनात्मकता महसूस कराती हैं। यह किताब एक तरह से समाज–यात्रा का

दस्तावेज है। वास्तविकता तो यह है कि समय–समाज बहादुर स्त्री की जीवन–कहानी संग कदमताल करता है। उनसे विकट वक्त में जीवन जीने की शैली से जीवन–कला की सीख ली जा सकती है क्योंकि वे आत्मीयता की साक्षात् प्रतिकृति जो थीं। बौद्धिक व्यायाम को मानवीय संवेदना में गूँथने की समर्थक निर्मला जैन जिजीविषा से भरी प्रेरक हैं। "दिल्ली एक शहर नहीं, बल्कि समय की सैर है, जहाँ हर गली में इतिहास और संस्कृति की साँसें बसती हैं।" इसे इतने आत्मीय ढंग से चित्रित किया है कि पाठक दिल्ली शहर संग सांस लेने लगता है। एक लय में धड़कन चलने लगती है। धड़कन की धुन पर देश थिरकता है।

उनकी आंतरिक व बाह्य दृढ़ता से कमजोरियाँ दूर भागती थीं। उनकी आदतें अब विरासत हैं। बौद्धिक और साहित्यिक उपलब्धियों की फेहरिस्त लंबी है। ढेरों सम्मानों से नवाज़ी गईं प्रेरणापुंज निर्मला जैन का निर्मल पाठ अशेष है। 'सोवियत लैंड नेहरू', 'रामचंद्र शुक्ल', 'साहित्य अकादमी का अनुवाद पुरस्कार' और 'हिंदी अकादमी साहित्यकार सम्मान' प्रमाण हैं।

यह सच है कि निर्मला जैन ने दुनिया को अलविदा कह दिया। अंतिम विदाई के बाद अपने पीछे असली विरासत हजारों विद्यार्थियों, पाठकों और साहित्यकारों का बसा–बसाया कुनबा छोड़ गईं। उनकी जीवंत उपस्थिति की अनुपस्थिति से हिंदी साहित्य जगत में एक स्थान रिक्त हो गया है लेकिन प्रखर विचार–चेतना जीवित रहेगी। हिंदी आलोचना की विदुषी अपनी साहित्यिक रोशनी में युगों तक चमकती रहेगी। उनके सान्निध्य में तराशी गई पीढ़ियाँ साहित्य, समाज और मानवता के दर्पण स्वरूप कहे जा सकते हैं। दर्पण के वृत्त पर व्यवस्था की थिरकन अनुसंधान का विषय है।

उनके जीवन और साहित्यिक अनुभवों से उपजा संवेदनशील दृष्टिकोण ही आलोचनात्मक परिदृश्य में सशक्त सैद्धांतिक विमर्श का परिणाम है। वह स्त्री स्वर में पीड़ित–दमित की अपेक्षा सर्जनात्मक और आत्मचेतन शक्ति के विविध रूप को अहमियत देती रहीं। वह सामाजिक ढाँचे से प्रश्न, सांस्कृतिक मूल्यों का विश्लेषण और व्यक्तिगत स्वतंत्रता में परस्पर संबंध अन्वेषण की हामी थीं। पद्य और गद्य को विश्लेषित करने के क्रम में उन्होंने स्त्री के आध्यात्मिक, सामाजिक और भावनात्मक संघर्ष को सर्वोपरि माना। 'मैं नीर भरी दुख की बदली' का विश्लेषणात्मक व्यापकता जगजाहिर है– "यह कविता केवल व्यक्तिगत दुख का बयान नहीं बल्कि स्त्री के सामाजिक और आध्यात्मिक संघर्ष का प्रतीक है। यहाँ दुख केवल पीड़ा नहीं, बल्कि एक ऐसी सर्जनात्मक ऊर्जा है जो आत्मबोध की ओर ले जाती है।" (महादेवी साहित्य– खंड–4)

निर्मला जैन अपनी विश्लेषण शैली में स्त्री–दुख को नकारात्मक के स्थान पर

सृजन की आत्म–खोज मानकर एक सकारात्मक आयाम में देखती हैं। हाल–फिलहाल के स्त्री–विमर्श खांचे में यह दृष्टि अनफिट हो सकती है, तथापि उनके नजरिए का अपना विवेक अचूक है। सामाजिक संदर्भ और स्त्री–संवेदना निर्मला जैन की आलोचना में उस तरह से समाहित नहीं जिस तरह से 21वीं सदी की मांग है। यह जरूर है कि वह अपने समय की सामाजिक विसंगतियों जैसे पितृसत्तात्मक ढांचे, स्त्री–शिक्षा की कमी से लेकर लैंगिक असमानता को अपनी आलोचना के केंद्र में रखकर परखती जरूर हैं।

'कथा–समय में तीन हमसफ़र' पुस्तक प्रमाण है। इसमें कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी और उषा प्रियंवदा की कहानियों का सूक्ष्म विश्लेषण किया है। ये स्त्रियाँ नई कहानी आंदोलन की सशक्त कथाकार रही हैं जो लेखन के स्वतंत्र अस्तित्व को रेखांकित करती हैं जिन्होंने बगैर किसी आंदोलनात्मक समूह समर्थन के अपने विशिष्ट शैली–संवेदन के भरोसे पाठकों के बीच स्थान बनाया। समकालीन होने के कारण उनकी रचनाओं की बुनावट सामाजिक–सांस्कृतिक संदर्भों को सूक्ष्मता से उकेरती हैं। पुस्तक का उल्लेखनीय पहलू तीनों स्त्री रचनाकारों की रचनाओं का तुलनात्मक अध्ययन है।

निर्मला जी ने पुस्तक में कृष्णा सोबती की भाषायी जीवंतता व सांस्कृतिक गहराई, मन्नू भंडारी की मध्यवर्गीय संवेदनाओं का यथार्थवादी चित्रण और उषा प्रियंवदा की मनोवैज्ञानिक सूक्ष्मता पर सहानुभूतिपूर्ण किंतु संतुलित ढंग से विश्लेषण किया है। उन्होंने सामाजिक परिवर्तन को लैंगिक चेतना के परिप्रेक्ष्य में परखा है जो कि समकालीन आलोचना के लिए बेहद महत्त्वपूर्ण व प्रासंगिक है। कई बार ऐसा होता है कि अत्यधिक व्यक्तिपरक विश्लेषण से सामान्यीकरण का उपजना स्वाभाविक है। इसे सैद्धांतिक आधार पर कमजोर मान सकते हैं लेकिन इस बात से कतई इंकार नहीं किया जा सकता कि 'कथा समय में तीन हमसफर' विचारोत्तेजक आलोचना साहित्य में स्त्री लेखन की सशक्त उपस्थिति को संवेदनशीलता से दर्ज किया गया है।

सामाजिक व्यवस्था में स्वतंत्रता से वंचित स्त्री त्रासदी की कथा स्त्री इच्छा के विपरीत रची जाती है। यह सामाजिक विफलता है जिसे विफलता के तौर पर स्वीकारा नहीं गया। समाज और संस्कृति को नया अर्थ देती स्त्री व्यापक सामाजिक संदर्भ का हिस्सा है। रचना में निहित दार्शनिकता को स्त्री–मुक्ति के आह्वान तक ही सीमित किया गया है। पर बंधनों को तोड़ती स्त्री नए मूल्यों का सृजन करती है।

'हिंदी आलोचना का दूसरा पाठ' से छायावादी दौर में स्त्री कवि के अनुभव पाठक के समक्ष जीवंत हो उठते हैं। सार्वभौमिक संदर्भ से आत्मीयता जन्मती है। समन्वित दृष्टिकोण से पाश्चात्य स्त्री–दृष्टि प्रकट होती है जिसका वृहद् पक्ष पुस्तक 'पाश्चात्य साहित्य–चिंतन' में दिग्दर्शित है। पाश्चात्य स्त्रीवाद व्यक्तिगत स्वतंत्रता का

पक्षधर है जबकि भारतीय स्त्री केंद्रित विमर्शवाद सामुदायिक और सांस्कृतिक मूल्यों के संतुलन पर बल देता है। सैद्धांतिक के साथ–साथ अनुभवजन्य मानवीयता की पैरोकार 'नई समीक्षा के प्रतिमान' में दृष्टिगत है। अत्यंत समृद्ध आलोचना के बावजूद आलोचना में पितृसत्तात्मक ढांचे के शिकार उनकी तीखी आलोचना में कुछ कमी महसूस करते हैं मानो आलोचना विश्लेषण न होकर तलवार भाँजने का रणक्षेत्र हो। समावेशी शैली निर्मला जैन की अतिरिक्त विशेषता रही। वैचारिक स्त्री को साहित्य–समाज का सेतु बनने में दुश्वारियाँ बहुत आती हैं। गौरतलब है कि स्त्री का स्वर समस्त समाज संवेदना का प्रतिबिंब है जो कि प्रेरणाप्रद और प्रासंगिक है। यह अनवरत रहने वाला है।

'आलोचना का निर्मल पाठ' के अंतर्गत निर्मला जैन की लेखकीय निर्मल दुनिया को देखना, पढ़ना और परखना अपने–आप में अलहदा अनुभव है। चिंतनशील आलोचना कला–साहित्य क्षेत्र का अन्वेषण है जिससे विचारशील अवधारणा जन्म लेती है। शुद्धता, पारदर्शिता और निष्पक्षता से कृति को रेखांकित करना आलोचना का मूल दायित्व है। 'आलोचना का निर्मल पाठ' में रचना के गुण–दोष के अतिरिक्त भावनात्मक और बौद्धिक परिवेश का सूक्ष्म अवलोकन मूल बिंदु है। निर्मलता का अर्थ यह नहीं कि आलोचना में कठोरता या स्पष्टता का अभाव रखना है बल्कि इसका अर्थ व्यक्तिगत आक्षेप, पूर्वाग्रह से उत्पन्न अनावश्यक तीक्ष्णता से मुक्त रहकर रचना और रचनाकार के मजबूत पक्ष को उजागर करने से है। संवेदनशील आलोचना दायित्व में रचनाकार को तोड़ने के स्थान पर निखरने, सँवरने का स्पेस देना शामिल रहा है। यह भविष्य में भी बने रहने वाला है।

गहन दृष्टि, संवेदनशीलता और वैचारिक साहित्यिक विमर्श आलोचना समृद्धि की परिचायक है। निर्मला जी ने साहित्यिक रचनाओं के गुण–दोष का विश्लेषण सामाजिक, सांस्कृतिक और दार्शनिक संदर्भ में किया है जिसे आत्मसात् किया जाना चाहिए। वे पाठक को रचना के निकट लाने में सफल रहीं। वैचारिक स्पष्टता, शैली और हिंदी साहित्य में उनके योगदान का विस्तृत मूल्यांकन एक आलेख में कठिन है। यह तय है कि वह अपनी विद्वत्ता और आत्मीय शिक्षण शैली से पीढ़ियों को प्रभावित करती रहेंगी। वे साहित्य के साथ–साथ जीवन के गहरे प्रश्नों से जोड़ने वाली एक चैतन्य–द्रष्टा थीं।

निर्मला जैन साहित्य को रस, अलंकार और शिल्प तक सीमित रखने की अपेक्षा मानव जीवन, समाज और संस्कृति के व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयास करती हैं। उन्होंने रचनाकार की मनोदशा, रचना की सामाजिक प्रासंगिकता और पाठक की संवेदना को सदैव केंद्र में रखा तथा भारतीय काव्यशास्त्र की परंपरा को पाश्चात्य सौंदर्यशास्त्र में समन्वित किया।

उन्होंने आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हजारीप्रसाद द्विवेदी और नामवर सिंह जैसे आलोचकों की परंपरा को स्वीकार करते हुए भी आलोचना के नए प्रतिमानों का अन्वेषण किया। वे छायावादी दौर को भावुकता के स्थान पर सामाजिक और सांस्कृतिक आंदोलन के रूप में विश्लेषित कर एक मौलिक नजरिया देती हैं। उन्होंने आलोचना को सघन सामाजिक सुसंगतता प्रदान करते हुए आधुनिक हिंदी साहित्य के लिए नए दिशा–निर्देशक के तौर पर प्रेषित किया है। निस्संदेह निर्मला जैन की रचना शैली मार्क्सवादी और प्रगतिवादी आलोचना के समीप है। वैचारिक पक्ष के आधार पर उनके साहित्यिक अवदान को रेखांकित व विश्लेषित करना अधिक जिम्मेदारीपूर्ण है क्योंकि रचना समझ के संग–संग विचार पक्ष को केंद्र में रखे बगैर सम्यक् मूल्यांकन अधूरा माना जाएगा।

अंततः कह सकते हैं कि आलोचना–साहित्य और जीवन–समन्वय शैली ही उनकी आलोच्य दृष्टि को अनूठा बनाता है। साहित्य वह दर्पण है जिसमें सिर्फ समाज ही नहीं दिखता बल्कि स्वयं को समझने व समृद्ध करने का अवसर भी मिलता है। वह देह से विदा हो चुकी हैं। राख में बचे कण सरीखी रचनात्मकता उनकी अनुपस्थिति में मुखरता से उपस्थित हैं। यह सृष्टिकाल तक बरकरार रहने वाला है। हिंदी साहित्य में निर्मला जैन की आत्मपरक दृष्टि हमेशा प्रासंगिक थी और भविष्य में भी रहेगी।

❑❑❑

घृणा यूँ कोई बहुत अच्छी चीज
नहीं है लेकिन इतनी बुरी भी
नहीं कि जहाँ जरूरी हो
वहाँ भी न की जा सके।

– राजेश जोशी

ऋग्वेद में हरियूपिया अर्थात् हड़प्पा

प्रमोद भार्गव

वरिष्ठ साहित्यकार एवं पत्रकार। छह उपन्यास, पाँच कहानी–संग्रह तथा तेरह अन्य–विषयक पुस्तकें प्रकाशित। अनेक सम्मान/पुरस्कार प्राप्त। संप्रति संपादक– शब्दिता संवाद सेवा।

भारत की प्राचीनता के प्रमाणों को अस्वीकारने का काम बड़ी दृढ़ता से विदेशी विद्वानों ने तो किया ही, भारतीय पुरा–इतिहास, साहित्य तथा भाषाविज्ञानियों में से अधिकांश ने भी इसी लकीर का अनुकरण किया। लोकमान्य टिळक और रांगेय राघव जैसे विद्वान भी इन धारणाओं का खंडन मजबूती से नहीं कर पाए। यद्यपि ऋग्वेद में एक भी ऐसा प्रमाण उपलब्ध नहीं है, जिससे यह संकेत मिले कि आर्य भारत में बाहर से आए। ऋग्वेद के अनुसार आर्यों का आदि देश भारत का 'सप्त–सिंधु' क्षेत्र था। इसे ही आर्यावर्त या ब्रह्मावर्त कहा गया है। यहीं सिंधु–सारस्वत सभ्यता विकसित हुई। इसकी सीमा वितस्ता (कश्मीर), त्रिपिष्टम् (तिब्बत) और भारत–पाकिस्तान में स्थित वर्तमान पंजाब तक विस्तृत थी। यहीं रावी नदी के तट पर हरयूपिया (हड़प्पा) और मोहनजोदड़ो जैसी विकसित आर्य–अनार्य, सुर–असुर या सभ्यताएँ देव–दानव कही जाने वाली मानव सभ्यताएँ पनपी थीं। यद्यपि इनके वंशधर एक ही ऋषि कश्यप और उनकी दिति तथा अदिति नामक दो पत्नियाँ रही थीं। इनकी संततियों की पीढ़ियाँ बढ़ती चली गईं तो परस्पर इन्हीं में वर्चस्व स्थापना के लिए संघर्ष हुए और इनके बीच कालांतर में आर्य–अनार्य या देव–दानव की स्पष्ट विभाजित रेखा खिंच गई। अतएव स्पष्ट है कि देव व दानव एक ही कुल के थे। हरियूपिया और मोहनजोदड़ो पर अनार्य अर्थात् असुरों का आधिपत्य था जिन्हें इंद्र ने तीन हजार सैनिकों की सेना के साथ लेकर परास्त किया। यहीं प्राण बचाकर अनेक असुर बोलन द्वार से आर्याना (ईरान) की ओर भागे और इन्होंने ही ईरान समेत अनेक पश्चिम एशिया के देशों को बसाया। ऋग्वेद के छठे मंडल के सत्ताईसवें सूक्त में उल्लेखित दो मंत्रों में इंद्र द्वारा आक्रमण किए जाने का स्पष्ट उल्लेख है..,

एतत्त्यत इन्द्रियमचेति येनावधीर्व रशिरवस्य शेषः।
वज्रस्य यते निहतस्य शुष्मात्स्वनाच्चिदिन्द्र परमो ददार।।

वधिदिन्द्रो वरशिखस्य शेषोअभ्यार्तिने चायमानाय शिक्षण।
वृचीवतो यद्धरियूपीयायां हन्युर्वे अर्धे भियसापरो दर्तः।।
(ऋग्वेदः 6.27.4–5)

इन मंत्रों के अर्थ से स्पष्ट है कि आज के पाकिस्तान के पंजाब के सिंध प्रांत में स्थित हड़प्पा रावी नदी के तट पर मोंटगोमरी जिले में है जबकि मोहनजोदड़ो सिंध–प्रांत के लरकाना जिले में सिंधु नदी के तट पर बसा है। यहाँ हरियूपिया पर वरशिख का राज था। इसी का बलवान पुत्र वृत्तिवान था। इन दोनों के भी बलवान पुत्र थे। इंद्र ने चायमान और उसके पुत्र अभ्यावर्तिन के कहने पर हड़प्पा पर आक्रमण किया। इंद्र ने अपने वज्र से वरशिख, वृत्तिवान और उनके पुत्रों को मार डाला। इनको मारने के बाद हरियूपिया दुर्ग से जो धन–संपदा प्राप्त हुई, उन्हें जितना चाहा, उतना अभ्यावर्तिन को दे दिया। पाश्चात्य पुरातत्त्व एवं इतिहासवेत्ताओं ने कुटिल चतुराई से वरशिख तथा उसके वंशजों को सुनियोजित ढंग से द्रविड़ बताया है जिससे यह धारणा स्थापित की जा सके कि बाहर से जो आर्य आए, उनका सामना आर्यावर्त्त के द्रविड़ों से हुआ। इन द्रविड़ों को विदेशी आर्यों ने मारा और जो बचे, वे दक्षिण भारत की ओर खदेड़ दिए गए। इन्होंने यह धारणा इन स्थलों की खुदाई में मिले कुछ मिट्टी के बर्तनों के आधार पर बनाई जिससे उनकी सभ्यता की प्राचीनता बनी रहे।

सिंधु–सारस्वत सभ्यता के कालखंड में यह सभ्यता केवल हड़प्पा और मोहनजोदड़ो में ही नहीं अपितु इंद्रप्रस्थ (दिल्ली), हस्तिनापुर (मेरठ), धौलाबीरा, लोथल, कालीबंगा, कायथा, राखीगढ़ी, बनावली और आलमगीर में भी फैली पाई गई है। यह सभ्यता न्यूनतम सुविधाओं वाली नगरीय व्यवस्था थी। इन नगरों में प्रागैतिहासिक संस्कृतियों के भरपूर अवशेष बिखरे मिले हैं। इस पुरा–सामग्री के भंडार का बाहुल्य सिंधु नदी की हड़प्पा और मोहनजोदड़ो में देखने में आया है। मोहनजोदड़ो पाकिस्तान के लाहौर और मुल्तान के बीच रावी नदी की एक पुरातन अविरल जलधारा के तट पर बसा हुआ था। इसे ही वैदिक ऋचाओं के मंत्रों में हरियूपिया कहा गया है। मोहनजोदड़ो सिंधु नदी के तट पर लरकाना जिले में है। यह सिंधी भाषा में 'मोइनजोदारो' अर्थात् मरे हुए मनुष्यों का ढेर या टीला के रूप में प्रचलन में है। वस्तुतः इसे मुर्दों का टीला इसलिए कहा जाने लगा होगा क्योंकि इंद्र ने इन राज्यों के सम्राट वरशिख और वृत्तिवान से जो युद्ध लड़ा था, उसका प्रमुख स्थल मोहनजोदड़ो रहा होगा। यहाँ हजारों की संख्या में सैनिकों के प्राण गए जिनका अंतिम संस्कार भी प्रचलित विधि के अनुसार नहीं किया गया। परिणामतः मानव कंकाल सैकड़ों वर्षों तक यही पड़े रहे इसलिए लोग इस स्थल को 'मुर्दों का टीला' कहने लग गए। इन नगरों की महान नगरीय सभ्यता का विनाश इस युद्ध से तो हुआ ही, इसी इंद्र के कालखंड में आई महाप्रलय से भी हुआ। सरस्वती–दृशद्वती नदियों में बर्फ का एक बड़ा शिलाखंड गिर

जाने से यह जल–प्रलय इतना विस्तृत था कि आर्यावर्त की देव संस्कृति नष्टप्रायः हो गई थी। आर्यों तथा अनार्यों के जिस क्षेत्र को ऋग्वैदिक कालखंड आर्यावर्त, ब्रह्मावर्त या सप्तसिंधु कहा जाता था, नदियों के माध्यम से उसका इतना स्पष्ट भौगोलिक वर्णन मिलता है कि पुरावेत्ताओं ने मानचित्र भी बना लिए हैं। 'ऋग्वेद' में यह इस प्रकार है..,

इमं में गंगे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता परुशण्या।
असिकन्या मरुद्वृधे वितस्तयार्जीकीये श्रुणुह्य सुशोमया।।
(ऋग्वेदः10.75.5)

अर्थात् हे गंगा, यमुना, सरस्वती, सतलज (शुतुद्री) रावी या इरावती (परुशणी) चिनाब (असिकनी) के साथ मरुद्वृधा (चिनाब और झेलम के मध्य में या चिनाब की पश्चिम दिशा वाली मरुद्वर्दन नाम की सहायक नदी), झेलम (वितस्ता), सोहान (सुशोमा) और व्यास (आर्जीकीया) आदि नदियों, आप हमारे सूक्तों के मंत्रों की स्तुतियों को सुनें।

तृष्टामया प्रथमं यातवे सजूः सुसत्र्वा रसया श्वेत्या त्या।
त्वं सिंधो कुभया गोमती क्रमुं मेहत्न्वा सरथं याभिरीयसे।।

अर्थात्, हे सिंधु महानदी! आप पहले अपने आप में ही विलोपित हो जाने वाली तृष्टमा के साथ प्रवाहित हुईं। फिर आप मेहुल की जलधाराओं को अपनी जलधारा में विलय कर आगे बढ़ती गईं। आप इन सभी नदियों को एक साथ एक ही रथ पर सवार होकर बहती हैं।

इन नदियों के उपर्युक्त क्रमबद्ध वर्णन से सप्त–सिंधु क्षेत्र की सीमाएँ निर्धारित थीं। वैदिक आर्य–अनार्य इसी विस्तृत भू–प्रांतर में निवास करते थे। इस क्षेत्र में आर्यों ने स्वच्छंद उल्लास व आनंद में रहते हुए अपने सूक्त रचे और संस्कृति व रीति–रिवाज प्रचलन में लाए। वैदिक सूक्तों में नदियों से स्थापित परिधियों के साथ पृथ्वी, अंतरिक्ष, अग्नि, बादल, बारिश और सोम अर्थात् मूंजवत पर्वत पर पाई जाने वाली सोमलता के बहुतायत सूक्त मिलते हैं। इसी सोमलता से एक विशेष प्रकार की सुरा बनाई जाती थी जिसका पान देवगण करते थे।

उक्त वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि आर्य–अनार्य इसी भू–क्षेत्र में अपने राज्य में रहते थे। इसी भू–क्षेत्र में अनेक जन–समुदाय भी निवासरत थे। हरियूपिया और मोहनजोदड़ो के पतन और उन पर इंद्र की कृपा से अभ्यावर्तिन चायमान की सत्ता स्थापना के पश्चात् भी अनार्यों व उनके समर्थक आर्यों के बीच इंद्र से टकराने के मंतव्य से विभिन्न समूहों में राजनीतिक एकत्रीकरण की पृष्ठभूमि तैयार हो रही थी। इस भूमिका से ज्ञात होता है कि ऋग्वैदिक आर्यावर्त में राजनीतिक चेतना का अभ्युदय हो चुका था।

इसी का परिणाम रहा कि इस वैदिक कालखंड में राजनीतिक शक्ति के सांगठनिक रूप के साथ वशिष्ठ और विश्वामित्र के बीच उभरी मतभिन्नता के

परिणामस्वरूप दो राजनीतिक मत भी स्पष्ट रूप में परिलक्षित हुए। एक समय विश्वामित्र और वशिष्ठ दोनों ही दिवोदास और उनके पुत्र सुदास के पुरोहित थे। परंतु परस्पर अहंकार के टकराव के चलते इनमें अलगाव का बीजारोपण हो गया। वस्तुतः इस समय तक आठ वसु, ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य तथा इंद्र व प्रजापति ब्रह्मा को संयुक्त कर तैतीस देवताओं की प्रार्थना या स्तुति का प्रचलन ऋचाओं के माध्यम से आरंभ हो गया था। अनेक लोग ब्रह्मा के स्थान पर त्वष्ट्रा को प्रजापति मानते थे। इसी समय कुछ लोग इंद्र व प्रजापति को देवता न मानते हुए अश्विनीकुमार, नासत्य और दस्त्र को देवता के रूप में रखते थे क्योंकि यही अश्विनीद्वय ऋग्वेदकालीन समय में ऐसे उदार पुरुषार्थी थे जो निःस्वार्थ भावना से संकट में पड़े व्यक्ति या रोगी की मदद के लिए अपने प्राणों को भी संकट में डालकर उपस्थित हो जाते थे। देवताओं की संख्या–निर्धारण के इसी कालखंड में विश्वामित्र ने देवताओं की संख्या बढ़ाकर तैंतीस सौ उनतालीस कर दी थी।

इस संख्या को लेकर उर्वशी की कोख से उत्पन्न वशिष्ठ और गाधिपुत्र विश्वामित्र में दिवोदास व सुदास के समक्ष इतना गहरा विवाद छिड़ा कि परस्पर मल्लयुद्ध की स्थिति बन गई। दिवोदास के हस्तक्षेप से विवाद पर विराम लगा। इसी समय दिवोदास ने विश्वामित्र को अपने तृत्सु राज्य के पुरोहित पद के दायित्व से मुक्त कर दिया। वशिष्ठ को पुरोहिताई के सभी दायित्व सौंप दिए। विश्वामित्र ने पद से इस पृथकता को अपना अपमान माना और दिवोदास तथा वशिष्ठ से प्रतिशोध का संकल्प लिया। विश्वामित्र की गिनती ऐसे प्रखर तेजस्वी ऋषियों में होने लगी थी जिन्होंने वीरत्व के संज्ञा–सूचक क्षत्रियत्व भाव से मुक्त होकर ज्ञानी, तपस्वी, योगी और सृजनधर्मी होने के लक्ष्यों को प्राप्त कर ब्राह्मणत्व धारण किया। विश्वामित्र एकेश्वरवाद अर्थात् एक ही ईश्वर के रूप में 'ब्रह्म' के प्रवर्तक रहे जिससे व्यक्ति पूजा को बढ़ावा मिले। उन्होंने ही ब्रह्म से मनुष्य का आचरण निर्मल और पवित्र बनाए रखने के लिए प्रसिद्ध 'गायत्री–मंत्र' रचकर प्रार्थना की–

ऊं भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्।।
(ऋग्वेदः 3.62.10)

अर्थात्, जो मनुष्य सब मनुष्यों के साक्षी ब्रह्म अर्थात् परमपिता को मनुष्य मानकर न्यायी, उदार और निर्विकार होने की स्तुति करते हैं, वे दुष्ट आचरण से पृथक् होकर श्रेष्ठ आचरण में प्रवृत्त होकर पुरुषार्थी बन जाते हैं। परंतु विश्वामित्र प्रतिकार की भावना से इतने ग्रसित हुए कि दिवोदास की सत्ता और वशिष्ठ की पुरोहिताई नष्ट करने की दृढ़ प्रतिबद्धता दिखाते हुए अनार्य असुरराज शंबर की शरण में चले गए। शंबर प्रतापी अनार्य थे। विश्वामित्र के मार्गदर्शन में शंबर ने उत्तर–पश्चिम आर्यावर्त में बसे हुए जनपदों या राज्यों के प्रमुखों को ब्रह्मावर्त के उत्तरी क्षेत्र में रहने वाले आर्यों

की सत्ता को अपदस्थ कर अनार्यों की अधीनता में लेने के लिए प्रेरित किया। डॉ. राधाकुमुद मुखर्जी ने अपनी पुस्तक 'हिंदू सभ्यता' में इन जनपदों, उनके राजप्रमुखों तथा क्षेत्रों का उल्लेख इस प्रकार किया है, 'ऋग्वेद के समय की सभी जातियों ने जिनमें अनार्य भी थे, इस महान युद्ध में भाग लिया। सिंधु नदी के पश्चिम में पाँच जन मुख्य थे, अलिन (वर्तमान अफगानिस्तान), पक्थ (वर्तमान पख्तून), भलान (बोलन द्वार के निवासी), शिव (सिंधु के निकट) और विषाणिन। इनके अतिरिक्त पाँच दूसरे जन सिंधु के इस पार के भीतरी प्रदेश के थे, जैसे अनु, द्रुह, तुर्वश, यदु और पुरु। इस जमघट के तीन जमुना के तटवासी ही थे, जो अनार्य ज्ञात होते हैं। वे अज, शिबु और यश्रु थे। उनका नेता भेद था। इस समूह में शिंबु नाम का एक और अनार्य राजा भी था। दूसरे अनार्य राजाओं में कवश, शंबर और दो वैकरण थे जो अपने अनुयायी इक्कीस जनों को साथ लाए थे। राजाओं के पुरोहित ऋषि लोग इस युद्ध का नेतृत्व करते हैं। विश्वामित्र दासराज्ञ संगठन के नेता थे और उनके प्रतिपक्षी सुदास के नेता वशिष्ठ थे। अनुओं के नेता भृगु थे। इस युद्ध में विजयी सुदास ऋग्वेदकालीन भारत के सर्वोपरि सम्राट बन गए। दासराज्ञ युद्ध में भागीदार जनों का उल्लेख 'ऋग्वेद' के इन मंत्रों में उल्लेखित है..,

पुरोला इत्तुर्वशो यक्षुरासीद्राये मत्स्यासो निशिता अपीर।
श्राष्टिं चक्रु भृगवो द्रुहयवश्च सरवा सखायमतर द्विषूचोः।।
ऋग्वेद:7.18.6

आ पक्थासो भलानसो भन्नतालिनासो विषाणिनः शिवासः।
आ योनयत्ससधमा आर्यस्व गव्या तुत्सुभ्यो अजगन्युधा नृनः।।
('ऋग्वेद':7.18.7)

सुदास भरतों के नेता थे। इस कालखंड में भरतों के अतिरिक्त पुरु भी महत्त्वपूर्ण थे। ये दोनों जनसमूह कालांतर में कुरुओं से जुड़ गए। इन्हीं के सहयोगी क्रिनि और सृंजय थे। ऋग्वेद में अनार्यों को दास, दस्यु, दैत्य और असुर कहा गया है। इन अनार्य जन–समुदायों के प्रमुखों में वरशिख तथा वृचिवंत के अलावा धुनि, चुमुरि, इलिबिस, पिप्र, शिम्यु, कीकट, अज, यश्रु और शिग्रु भी रहे हैं। दस राजाओं के इस युद्ध से स्पष्ट होता है कि इस युद्ध में सांस्कृतिक सभ्यताओं की स्थापनाओं के साथ राजनीतिक कारण तो रहे ही हैं, पारिवारिक ईर्ष्या व विद्वेष भी रहा है। सुदास की पत्नी के सौतेले भाई अनु ने भी इस युद्ध में अनार्यों का साथ देने के पहले से ही विभिन्न समुदायों का एकीकरण सुदास के विरुद्ध करना आरंभ कर दिया था। इस युद्ध और ऋग्वेद के मंत्रों में उल्लेखित प्रमाणों से यह भी साफ होता है कि यह युद्ध यज्ञ के समर्थक इंद्रानुयायी सुदास और यज्ञ के विध्वंसक शंबर और उसके सहयोगियों के साथ हुआ था। इस युद्ध से यह भी संकेत मिलता है कि इस युद्ध में मित्र राष्ट्र

परस्पर संगठित होकर शत्रु राष्ट्र पर आक्रमण करते हैं। अतएव यह दासराज्ञ युद्ध इतना भयंकर हुआ था कि जन, पशु, धन और संपत्ति के साथ प्राकृतिक संपदा की भी युद्ध में बहुत हानि हुई। आर्यों की सेनाएँ दस अनार्य राजाओं के ठिकानों पर पहुँचकर आक्रमण करती हैं। युद्धारंभ के बाद ऋषि सैनिकों का उत्साहित करने के लिए वेद मंत्रों का उच्चारण करते हैं..,

वि तिष्ठध्वं मरुतो विश्विच्छत गृभायत रक्षसः सं पिनष्टन।
वयो ये भूत्वी पतयन्ति नक्तभिर्ये वा रिपो दधिरे देवे अध्वरे।।
(ऋग्वेदः 7.104.18)

अर्थात् हे वीरो! तुम प्रजाओं की रक्षा करने के लिए सदा तैयार रहो। जो राक्षस हों तथा जो यज्ञ आदि सत्कर्मों में विघ्न डालते हों, उनका विनाश करो। चहुँ ओर संहार करो।

इस मंत्र से ज्ञात होता है कि एक ही भू–क्षेत्र आर्यावर्त के रहने वाले आर्य–अनार्यों के बीच अत्यंत भीषण युद्ध हुआ। इस युद्ध में इंद्र ने जो अनार्य जन–समुदाय आर्यों से युद्धरत थे, उन्हें शंबर के निन्यानवे गढ़ों समेत एक–एक कर ध्वस्त कर दिया..,

शुष्णं पिप्रुं कुयवं वृत्रमिन्द्र यदावधीर्वि पुरः शंबरस्य।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिंधु पृथिवि उतद्यौः।।
(ऋग्वेदः 1.103.8)

ऋग्वेद के एक मंत्र से ज्ञात होता है कि आर्य और अनार्यों के बीच छापामार युद्ध करीब चालीस वर्ष तक चलता रहा है क्योंकि दासराज्ञ युद्ध के प्रमुख अनार्य नेता शंबर को इंद्र मारते हैं, तब कहा गया कि जो शंबर नाम का राक्षस चालीस वर्ष तक पर्वत पर स्थित दुर्ग में छिपा रहा, उसे इंद्र ने ढूँढ निकाला और मार दिया..,

यः शंबरं पर्वतेषु क्षियन्तं चत्वारिंश्यां शरद्यन्वविन्दत।
ओजायमानं यो अहिं जधान दानुं श्यानं स जनास इन्द्रः।।
(ऋग्वेदः 2.12.11)

इस युद्ध के अंत के एक मंत्र में जिस प्रकार से उल्लेख है, उससे स्पष्ट है कि आर्य–अनार्यों के बीच जो युद्ध हुआ, वह अंततोगत्वा एक ही कुल के परस्पर विरोधी लोगों के बीच हुआ था। आर्यों को बाहरी आक्रमणकारियों के रूप में जो कहानी या धारणा गढ़ दी गई है, वह नितांत भ्रामक, झूठी और मनगढ़ंत है

दश राजानः समिता अयज्यवः सुदासमिन्द्रावरुणा न युयुधः।
सत्या नृणामद्मसदा मुपस्तुतिर्देवा एषामभवन्देवहूतिषु।।
(ऋग्वेदः 7.83.7)

अर्थात् यज्ञ नहीं करने वाले अनार्य दस राजा भी सुदास के साथ युद्ध न कर

सके। अर्थात् यज्ञ न करने वाले अनार्य राजा अनेक होने पर भी एक सज्जन पुरुष की रक्षा देवगण करते हैं। अन्न का दान करने वालों के प्रत्येक मनोरथ पूर्ण होते हैं। वे कभी भी इस जगत में परास्त नहीं होते क्योंकि यज्ञों में देव स्वयं उपस्थित रहते हैं।

तत्पश्चात् भी यह धारणा पूरी तरह खंडित नहीं हो पाई कि आर्य और अनार्य जन्मजात भारतभूमि के ही रहने वाले थे। इसके मूलतः तीन कारण रहे; पहला जर्मन विद्वान मैक्समूलर का ऋग्वेद का अंग्रेजी में अनुवाद, वेदों की तिथि–निर्धारण और हरियूपिया अर्थात् हड़प्पा सभ्यता को अवैदिक घोषित करना। अनेक पुरास्थलों के उत्खनन कार्य और अनुसंधानों से आजीवन जुड़े रहे विश्व–प्रसिद्ध पुराशास्त्री प्रो. ब्रजवासी लाल ने इन तीनों ही धारणाओं का खंडन मजबूती से अपने पुरा–उत्खनन संबंधी शोध–ग्रंथों में किया है। इनकी प्रसिद्धि बी.बी. लाल के नाम से है। लाल अपनी पुस्तक 'आर्यों का आदि देश भारत' में लिखते हैं, ''भारत के प्राचीनतम इतिहास के आकलन में यदि किसी एकमात्र घटना ने क्षति पहुँचाई है तो वह है मैक्समूलर महोदय द्वारा वेदों का तिथि–निर्धारण। इस जर्मन विद्वान ने कहा कि वेद ईसा से केवल बारह सौ वर्ष पुराने हैं। उसका असर यह हुआ कि बीसवीं शताब्दी के आरंभ में जब हड़प्पा सभ्यता प्रकाश में आई तो उसे तुरंत अवैदिक घोषित कर दिया गया क्योंकि मैसोपोटामिया की सभ्यता के समकालीन होने के कारण हड़प्पा सभ्यता तो ईसा पूर्व तीसरी सहस्राब्दि की थी, जबकि मैक्समूलर के फतवे के अनुसार वेद केवल बारह सौ ईसा पूर्व के हैं?''

मैक्समूलर ने इस तिथि–निर्धारण की जो विधि अपनाई थी, उसपर मैक्समूलर के समकालीन सभी पाश्चात्य विद्वानों ने आपत्ति जताई थी। इनमें गोल्डस्टकर, व्हिस्टनी और विल्सन जैसे विद्वान शामिल रहे हैं। महान इतिहासकार अर्नाल्ड जे. टायनबी ने तो यहाँ तक कहा कि विश्व के इतिहास में यदि किसी देश के इतिहास के साथ सर्वाधिक छेड़छाड़ की गई है, तो वह भारत का इतिहास है। हिंदी के प्रसिद्ध मार्क्सवादी आलोचक डॉ. रामविलास शर्मा रामचंद्र शुक्ल के बाद एक ऐसे आलोचक के रूप में समालोचना का स्वरूप गढ़ते हैं जिसकी रचना–प्रक्रिया में भाषा, साहित्य, इतिहास और समाज की प्रधानता रहती है। शर्मा पश्चिमी एवं वामपंथी विद्वानों की इस धारणा का पूरी तरह निर्मूलन करते हुए कहते हैं कि 'आर्य भारत के ही मूल निवासी हैं।' जब उनके इस कथन का वामपंथियों ने पूरे देश में वैचारिक गोष्ठियाँ करके विरोध किया तो उन्होंने और दृढ़ता से अपने मत को 'पश्चिम एशिया और ऋग्वेद' पुस्तक में प्रस्तुत करते हुए कहा कि, "दूसरी सहस्राब्दि ईसा पूर्व बड़े–बड़े जन–अभियानों की सहस्राब्दि है। इसी दौरान भारतीय आर्यों के दल इराक से लेकर तुर्की तक फैल जाते हैं। वे अपनी भाषा और संस्कृति की छाप सर्वत्र छोड़ते जाते हैं। पूंजीवादी इतिहासकारों ने उल्टी गंगा बहाई है। जो युग आर्यों के बहिर्गमन का है, उसे वे भारत में उनके प्रवेश

का युग कहते हैं। इसके साथ ही वे यह प्रयास करते हैं कि पश्चिम एशिया के वर्तमान निवासियों की आँखों से उनकी प्राचीन संस्कृति का वह पक्ष ओझल रहे जिसका संबंध भारत से है। सबसे पहले स्वयं भारतवासियों को यह संबंध समझना है, फिर उसे अपने पड़ोसियों को समझाना है।'' याद रहे, डॉ. शर्मा मार्क्स के साथ ऋग्वेद के गंभीर अध्येता थे। अतएव जब उन्होंने ऋग्वेद और सिंधु–सारस्वत सभ्यता पर काम शुरू किया और अपनी स्थापनाएँ देने लग गए तो वामपंथियों के कान खड़े हो गए क्योंकि शर्मा उसी साम्रगी को प्रकाश में लाने लग गए जिसे पाश्चात्य विज्ञानी और वामपंथी ओझल बनाए रखना चाहते थे।

जो स्थापनाएँ रामविलास शर्मा भाषा, साहित्य, इतिहास और समाज का विवेकपूर्ण विश्लेषण करके दे रहे थे, लगभग वही स्थापनाएँ बी.बी. लाल सिंधु–सारस्वत सभ्यता के संदर्भ में हरियूपिया, मोहनजोदड़ो, लोथल, धौलाबीरा, कालीबंगा, हस्तिनापुर, इंद्रप्रस्थ, बनावली, राखीगढ़ी और आलमगीर के उत्खननों के प्रमाणों से दे रहे थे। ये दोनों विद्वान इन प्रमाणों का सत्यापन ऋग्वेद के मंत्रों में प्रकट नदियों से निर्धारित भूगोल और आर्य व अनार्यों के बीच चले युद्धों से कर रहे थे। बी.बी. लाल ने निष्कर्षतः पाया कि ऋग्वेद का समय बारह सौ ईसा पूर्व का नहीं है, जैसा कि मैक्समूलर कहते हैं, वह ईसा पूर्व तीसरी सहस्राब्दि का है। ऋग्वेद के लोगों का निवास क्षेत्र पूर्व में दिल्ली से लेकर पश्चिम में पाकिस्तान के पश्चिमी भाग तक था। इसी क्षेत्र में ईसा पूर्व तीसरी सहस्राब्दि में जो पुरातात्विक अवशेष मिले हैं, वे सरस्वती सिंधु सभ्यता के हैं। अतः यह सभ्यता और ऋग्वेद एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

जब मैक्समूलर की तिथि संबंधी स्थापनाओं को पाश्चात्य विद्वानों ने ही नकार दिया तब मैक्समूलर को कहना पड़ गया था कि 'पृथ्वी की कोई भी शक्ति निर्धारित नहीं कर सकती कि वैदिक ऋचाएँ एक हजार, दो हजार या तीन हजार वर्ष ईसा पूर्व की हैं'? भारत पर आर्यों के आक्रमण की कहानी पूरी तरह झूठी सिद्ध हो जाने के पश्चात् भी इतिहासज्ञ रोमिला थापर कहती हैं कि 'यदि आर्यों के आक्रमण की बात ठीक नहीं बैठती है तो आर्यों के धीरे–धीरे घुसपैठ करने की बात उभरकर सामने आती है। यह घुसपैठ (प्रवास) उन चरवाहों का रहा होगा जिनका जिक्र आवेस्ता और ऋग्वेद में आता है।' जो व्यक्ति इतिहासकार होते हुए भी उत्खनन से प्राप्त नवीन साक्ष्यों को नकारते हैं, इससे साफ होता है कि वे पूर्वग्रही तो हैं ही, सुनियोजित दूषित मानसिकता के चलते भारतीय इतिहास के साथ खिलवाड़ करते रहे हैं।

इसी तरह गलत जातिसूचक संज्ञाएँ थोपकर आर्य और द्रविड़ विवाद उत्पन्न किए गए जबकि जातिसूचक मान्यताओं के सिलसिले में पाश्चात्य विद्वानों की धारणा है कि अलपाइन, नार्डिक और भूमध्यसागरीय लोग एक ही कुल के हैं। परंतु विडंबना है कि यही विद्वान भारत में आर्य–अनार्य अथवा सुर व असुरों को पर्याप्त प्रमाणों के

पश्चात् भी एक ही कुल का नहीं मानते। बी एस गुहा ने अपनी 1936 में लिखी पुस्तक 'रेस अफीनिटीज ऑफ द पीपुल्स ऑफ इंडिया' की समीक्षा लिखते हुए कहा है कि भारत में प्रजातिगत जो भिन्नताएँ हैं, वे इस कारण हैं कि भारत के सभी लोग भारत में बाहर से आए हैं। यद्यपि यह देखने–परखने की कोशिश किसी ने नहीं की कि भारत की वे जातियाँ कौन–कौन सी हैं जिनका उद्भव और विकास भारत में ही हुआ है। 'संस्कृति के चार अध्याय' पुस्तक में रामधारी सिंह दिनकर लिखते हैं कि 'जब यूरोप का प्रजातिवाद से उत्पन्न कालकूट से पाला पड़ा तब 1939 में जूलियन हक्सले ने कहा था कि 'प्रजातिवाद का सिद्धांत झूठा भी है और खतरनाक भी।' आर्य शब्द का प्रयोग अंग्रेजी में पहले–पहल 1853 में मैक्समूलर ने किया था और 1939 में हिटलर ने प्रमाणित कर दिया कि आर्यों को प्रजाति मानने का सिद्धांत सचमुच खतरनाक है। भारत को भी यह नहीं मानना चाहिए कि आर्य और द्रविड़ दो प्रजातियों के नाम हैं। मैक्समूलर को जब अपनी गलती मालूम हुई तब उन्होंने स्वयं घोषणा करते हुए कहा था, 'जब मैं एरियन शब्द कहता हूँ, तब मेरा अभिप्राय न रक्त से होता है, न अस्थि, बाल और खप्पर से। मेरा तात्पर्य केवल उन लोगों से है जो आर्यभाषा बोलते हैं।' यानी मैक्समूलर तो नए तथ्य सामने आने के उपरांत अपनी धारणाएँ बदलने लग गए लेकिन वामपंथी दुराग्रहों से जुड़े जो तथाकथित बौद्धिक हैं, वे आज भी अपनी जड़ताओं को नहीं तोड़ पा रहे।

आर्य मूलतः भारत के ही थे, इसे स्वीकारने का मुख्य आधार 'ऋग्वेद', 'अथर्ववेद', 'यजुर्वेद' और 'सामवेद' हैं जो भारत के नदियों से चिन्हित भूगोल पर लिखे गए। ये आर्यों के ही नहीं, समस्त विश्व के प्राचीनतम ग्रंथ हैं। ब्रह्मांड और मानव मनोविज्ञान के साथ दर्शन, भौतिकी, रसायन, वनस्पति, प्राणी–विज्ञान और युद्ध व अस्त्र–शस्त्र के निर्माण का ज्ञान देने वाले यही ग्रंथ हैं। धर्म, अध्यात्म और परब्रह्म की स्तुतियों के पहले पाठ इन्हीं में हैं। इन वेदों के सूक्त यानी ऋचाएँ जिनमें मंत्र उल्लेखित हैं, वे किसी एक सीमित कालखंड की रचनाएँ नहीं हैं, अपितु हजारों वर्ष में रचा शब्द–सृजन है। प्रसिद्ध इतिहासज्ञ डॉ अविनाशचंद्र दत्त ऋग्वेद को पचास से पचहत्तर सौ साल पुराना मानते हैं। लोकमान्य तिलक मानते हैं कि 'सभी सूक्त या मंत्र एक समय में नहीं लिखे गए। इनमें कुछ ऋचाएँ दस हजार, कुछ साढ़े आठ हजार, तो कुछ साढ़े सात हजार वर्ष प्राचीन हैं। सभी प्राचीनतम ऋचाएँ ऋग्वेद की हैं।' पं. रामगोविंद त्रिवेदी का मत है कि ऋग्वेद का रचनाकाल अठारह हजार वर्ष से लेकर पचास हजार वर्ष के बीच का है किंतु जो पाश्चात्य विद्वान हैं, वे ऋग्वेद का रचनाकाल ईसा पूर्व सैंतालीस वर्ष से लेकर पैंसठ सौ वर्ष ही मानते हैं। बहरहाल ऋग्वेद को बहुत ज्यादा पुराना नहीं भी माना जाए तब भी इस मान्यता पर सभी में मतैक्य है कि ऋग्वेद दुनिया का सबसे प्राचीन ग्रंथ है। अब ऋग्वेद सबसे प्राचीन ग्रंथ है तो उसमें उल्लेखित

मान्यताएँ तथ्यात्मक मानी जाएंगी या आरोपित ?

यद्यपि अब बी.बी. लाल के अनुसंधानों के तदुपरांत भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग के पुरावेत्ता राखलदास बनर्जी द्वारा सिंधु नदी के किनारे पर स्थित मोहनजोदड़ो और रावी नदी के तट पर स्थित हरियूपिया अर्थात् हड़प्पा स्थलों पर किए नवीन पुरातात्विक उत्खननों से उन धारणाओं पर विराम लग गया है जो तमाम साक्ष्यों के बावजूद भारतीय सांस्कृतिक गौरव की सभ्यता को झुठला रही थीं। भारत और पाकिस्तान में हुए व्यापक उत्खनन के बाद नए तथ्यों और साक्ष्यों को अब सिंधु–सरस्वती सभ्यता का आधार बनाया गया है।

पाकिस्तानी पुरातत्वविद् रफीक मुगल द्वारा बहावलपुर क्षेत्र में इस सभ्यता को अपनी कोख में समेटे दो सौ तिरसठ पुरास्थल खोजे गए। इन स्थलों पर किए उत्खनन में मिले नमूनों से यह रहस्य खुला कि ये स्थल सरस्वती नदी घाटी में स्थित हैं। इसी प्रकार राजस्थान, हरियाणा व पश्चिमी उत्तर प्रदेश में खोजे गए लगभग दो सौ पचास पुरास्थल सरस्वती, दृशद्वती नदी व उनकी सहायक नदियों के तटों पर स्थित हैं। भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, गाँधीनगर के आचार्य मिशेल डिनेनो द्वारा संकलित आंकड़ों के अनुसार सिंधु–सरस्वती सभ्यता से संबंधित तिरसठ प्रतिशत से अधिक पुरास्थल सरस्वती व उसकी सहायक नदियों के तट पर एक समय आबाद थे परंतु कालांतर में सरस्वती की सहायक नदियों सतलज और यमुना की धाराओं के परिवर्तन से उनका जल सरस्वती से विमुख हो गया। परिणामतः सरस्वती सूख गई। सरस्वती नदी के सूखने के कारण सिंधु–सारस्वत सभ्यता का पतन व स्थानांतरण हुआ। इसके बाद प्रलय की आर्यावर्त क्षेत्र में घटी बड़ी घटना ने इस नगरीय सभ्यता और आर्यावर्त की उत्कृष्ट देव–संस्कृति को ध्वस्त कर भू–लुंठित कर दिया। जयशंकर प्रसाद की 'कामायनी' इसी प्रलय के बाद की इतिहास–कथा है। इसे भारतीय इतिहास के पुनर्लेखन का आरंभ–बिंदु कह सकते हैं। भारत सरकार ने अब राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (एनसीईआरटी) की पुस्तकों में सिंधु–सरस्वती सभ्यता कहते हुए नये पाठ को जोड़ा है परंतु अभी भी जड़बुद्धि बौद्धिकों का एक वर्ग इस सच्चाई को स्वीकार नहीं कर पा रहा है।

❑❑❑

शांत रस की स्थिति एवं उसका वैशिष्ट्य

प्रो. अजय कुमार झा
सात पुस्तकें प्रकाशित, महाविद्यालय व्याख्याता पुरस्कार से सम्मानित, संप्रति सत्यवती कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग में शिक्षणरत।

संस्कृत काव्यशास्त्र में काव्य को काव्यपुरुष माना गया है। काव्य को काव्यपुरुष के रूप में स्वीकार कर लेने के बाद उसके शरीर और आत्मा की खोज शुरू हो गई। सभी आचार्यों ने एकमत से शब्द और अर्थ को काव्य का शरीर स्वीकार किया। परंतु काव्य की आत्मा के विषय में आचार्यों में मतभिन्नता है। आचार्यों का एक बृहत् वर्ग और संप्रदाय है जो रस को काव्य की आत्मा स्वीकार करता है। यहीं से रस–विषयक गंभीर चिंतन प्रारंभ हुआ और इससे संबंधित अनेक प्रश्न उत्पन्न हुए और उनका समाधान हुआ। रस विषयक प्रथम गंभीर विवेचन भरतमुनि प्रणीत 'नाट्यशास्त्र' में हुआ है। इस ग्रंथ में रसों की संख्या, उसके स्वरूप, स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव, संचारी भाव आदि का विस्तृत विवेचन किया गया है। तदनंतर सभी आचार्यों ने काव्य में रस की महत्ता को समझा और इसका गंभीर विवेचन किया। रस–विवेचना क्रम में शांत रस विषयक विवेचन सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। संपूर्ण काव्यशास्त्र में जितना गंभीर विवेचन शांत रस का हुआ, उतना किसी अन्य रस का नहीं। एक तरफ जहाँ शांत रस की सत्ता पर ही प्रश्न खड़ा किया गया है, वहीं दूसरी ओर कुछ आचार्यों ने शांत रस को सभी रसों का मूल और रसों में सर्वश्रेष्ठ स्वीकार किया है। प्रस्तुत शोध–निबंध में शांत रस विषयक इस प्रकार के समस्त मत–मतांतरों को संक्षिप्त एवं सारगर्भित रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

'नाट्यशास्त्र' के छठे अध्याय में रस और सातवें अध्याय में भाव का अत्यंत विषद विवेचन किया गया है। यहाँ ध्यातव्य है कि नाट्यशास्त्र के दो संस्करण मिलते हैं– 1. निर्णय सागर प्रेस से प्रकाशित और 2. चौखम्भा प्रेस से प्रकाशित। रस के विषय में इन दोनों प्रतियों में एक भेद है। मुख्य भेद शांत रस को लेकर है। निर्णय सागर प्रेस से प्रकाशित संस्करण के छठे अध्याय में रस विवेचन क्रम में रसों की संख्या नौ बतलाई गई हैः श्रृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत और शांत। इसमें सभी रसों के साथ शांत रस का विवेचन किया गया है। परंतु चौखम्भा प्रेस से

प्रकाशित संस्करण में शांत रस का विवेचन नहीं है। वहाँ रसों की संख्या आठ बतलाई गई है। 'नाट्यशास्त्र' के दोनों संस्करणों में शांत रस विषयक मत–भिन्नता के कारण परवर्ती ग्रंथों में इस रस के विषय में अनेक मत–मतांतर दृष्टिगत होते हैं जिन्हें मुख्य रूप से चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता हैः– 1. परवर्ती आचार्यों का एक वर्ग काव्य और नाट्य दोनों में शांत रस की स्थिति को स्वीकार करता है। इनमें उद्भट, अभिनवगुप्त, भोजराज, मम्मट, अग्निपुराणकार, हेमचन्द्र, रामचन्द्र–गुणचन्द्र आदि आचार्य प्रमुख हैं। 2. कुछ आचार्य काव्य और नाट्य दोनों में शांत रस की स्थिति को स्वीकार नहीं करते हैं। इस मत के समर्थक आचार्यों में दण्डी, रुद्रभट, सागरनन्दी प्रमुख हैं। आचार्य दण्डी ने अपनी रचना 'काव्यादर्श' में रसवत् अलंकार के वर्णन के अवसर पर आठ रसों का वर्णन किया है और अष्ट रसवाद को स्वीकार किया है।[1] उस वर्णन में शांत रस का वर्णन नहीं है। 'शृंगारतिलक' के रचयिता रुद्रभट्ट ने रसों की गणना के अवसर पर शांत रस सहित नौ रसों का उल्लेख किया है।[2] परंतु विरोधी रसों के निरूपण, मूल रस एवं उससे उत्पन्न रसों की विवेचना काल में वे शांत रस का उल्लेख नहीं करते हैं।[3] इससे प्रतीत होता है कि वे शांत रस की स्थिति को स्वीकार नहीं करते हैं। सागरनन्दी की प्रसिद्ध रचना हैं– 'नाटकलक्षणरत्नकोश'। उन्होंने रस विवेचन के अवसर पर आठ रसों की गणना की है। उस गणना में शांत रस का नाम नहीं है।[4] 3. कुछ आचार्य काव्य में शांत रस की स्थिति को स्वीकार करते हैं जबकि नाट्य में नहीं। ऐसे आचार्यों में धनञ्जय और धनिक का स्थान प्रमुख है।[5] इनकी प्रसिद्ध रचना है– 'दशरूपक'। शांत रस के विषय में आचार्य धनंजय का मानना है कि यह काव्य का विषय हो सकता है, नाटक का नहीं। काव्य का विषय इसलिए हो सकता है कि इसमें किसी भी वस्तु का सूक्ष्म से सूक्ष्म विवेचन किया जा सकता है परंतु शांत का अभिनय करना बहुत कठिन है या यों कहें कि शांत का अभिनय असंभव है।[6] इसलिए शांत रस की स्थिति को नाटक में नहीं माना जा सकता है। आचार्य धनंजय पूर्ववर्ती आचार्यों के द्वारा स्वीकृत शांत रस के स्थायी भाव शम को भी स्वीकार नहीं करते हैं। उनकी दृष्टि में शम नामक स्थायी भाव की पुष्टि नहीं हो सकती है।[7] उनकी दृष्टि में निर्वेद स्थायी भाव न हो कर व्यभिचारी भाव है।[8] उनके अनुसार तत्वज्ञान से आपत्ति या ईर्ष्या के कारण स्वयं का तिरस्कार निर्वेद है। समस्त व्यापार का अभाव ही शम है। शांत रस की स्थिति में सुख, दुख, चिंता, द्वेष, राग और इच्छा का अभाव हो जाता है। यह अवस्था तो मोक्ष में ही संभव है। मोक्ष की अवस्था अनिवर्चनीय होती है। श्रुति भी नेति–नेति कहकर इसकी आदरणीयता को प्रमाणित सिद्ध करती है। अनिर्वचनीय होने के कारण शांत रस नाट्य का विषय नहीं हो सकता है और इस वैराग्यप्रधान शांत रस का आस्वादन भी नहीं किया जा सकता है।[9] 4. कुछ आचार्य शांत रस का अन्य रसों में समाहार करना उपयुक्त मानते हैं। इस

विषय में आचार्य आनंदवर्धन का मत विचारणीय है। उन्होंने किसी आचार्य का नाम नहीं लिया परन्तु शांत रस का वीररस के एक भेद दयावीर में अंतर्भाव का खंडन किया।[10] उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि अहंकारप्रधान वीररस में अहंकारशून्य शांत रस का समाहार कदापि नहीं हो सकता। यदि ऐसा मान लिया जाए तो वीर, रौद्र तथा अन्य रसों के एक–दूसरे में अन्तर्भाव की प्रवृत्ति को प्रश्रय मिलेगा और इससे साहित्य में अव्यवस्था उत्पन्न हो जाएगी।[11] आचार्य हेमचंद्र ने वीभत्स रस में शांत रस के अंतर्भाव का विरोध किया। उनके अनुसार विरक्तिस्वरूप शांत रस का वीभत्स रस में अंतर्भाव नहीं किया जा सकता है। वीभत्स रस का स्थायी भाव जुगुप्सा तो शांत रस का व्यभिचारी भाव है। इसी प्रकार अभिमानशून्य प्रधान शांत रस का अभिमानप्रधान वीर रस में समाहार नहीं हो सकता है।[12] आचार्य विश्वनाथ ने भी शांत रस के अंतर्भाव का विरोध किया है। उनके अनुसार निरहंकार रूप होने के कारण शांत रस का दयावीर में अंतर्भाव नहीं हो सकता।[13]

पद्‌मभूषण आचार्य बलदेव उपाध्याय शांत रस विषयक इन समस्त मतों को पाँच भागों में व्यवस्थित करते हैं–[14]

1. शांत रस प्रस्थान विरुद्‌ध है– भरत मुनि का रस वर्णन ही साहित्य संसार में एकमात्र प्रामाणिक माना जाता है परंतु उन्होंने शांत रस नामक नवम् रस का वर्णन नहीं किया है। अतएव भरतमुनि द्वारा प्रतिपादित न होने से शांत रस नहीं होता है।

2. शम का व्यावहारिक क्षेत्र में अभाव– दूसरे आचार्य शम की सत्ता व्यावहारिक जगत में ही नहीं मानते हैं। प्रथम मत तो शम का अभाव केवल काव्य–नाटक में मानने का पक्षपाती है परंतु इस द्वितीय मत में उसका सर्वथा अभाव अभीष्ट है क्योंकि राग–द्वेष का नाश करना एकदम असंभव है। राग–द्वेष का प्रवाह मनुष्यों में अनादि काल से चला आता है जिसका सर्वथा नाश असंभव ही है। ऐसी स्थिति में शांत रस का उदय ही कैसे हो सकता है।

3. अंतर्भाववाद– इस पक्ष के आचार्य चित्त की शमप्रधान स्थिति मानते हैं, परंतु वे शम को स्वतंत्र स्थायी भाव नहीं मानते हैं और न शांत रस को ही एक स्वतंत्र रस मानते हैं। वे इसका अंतर्भाव वीर तथा वीभत्सादि अन्य रसों में करते हैं। शमप्रधान चित्त में परम तत्त्व के पाने के लिए जो सतत् प्रयत्न होता है, वह उत्साहमय होता है। ऐसे में उत्साहमय शांत रस का उत्साह स्थायी भाव वाले वीर रस के भीतर अंतर्निविष्ट किया जा सकता है। यदि यह कहा जाए कि शांत की अवस्था में संसार के विषयों के प्रति जुगुप्सा तथा घृणा का भाव प्रबल रहता है। तब इसका अंतर्भाव वीभत्स रस के भीतर हो सकता है। इस प्रकार कुछ आचार्य शांत रस का अंतर्भाव वीर और वीभत्स रस में मानते हैं।

4. नाटक में शांत रस का निषेध– इस मत के अनुसार शांत रस की स्थिति

आवश्यक है परंतु उसका प्रयोग नाटक में नहीं हो सकता है। व्यापार के विराम होने पर शांत होता है। शांत रस वहाँ होता है, जहाँ दुख भी नहीं है, सुख भी नहीं है, द्वेष भी नहीं है और न चिंता है, न राग है। यह स्थिति मोक्षावस्था में ही संभव है परंतु नाटक में होती है– व्यापार की प्रधानता तथा अभिनय की योग्यता। सुख–दुख तथा राग–द्वेष का प्रदर्शन नाटक में अभीष्ट होता है। ऐसी दशा में शांत रस का अभिनय कैसे हो सकता है, जब उसमें अभिनेय वस्तुओं का सर्वथा अभाव ही होता है। वैराग्ययुक्त शांत रस का आस्वादन लौकिक रसिक कैसे कर सकता है। शांत रस तो अनिवर्चनीय होता है। अतः शांत रस का प्रयोग नाटक में नहीं हो सकता है। हाँ, काव्य में उसकी स्थिति संभव है।

5. शांत रस की सार्वत्रिक स्थिति– अभिनवगुप्त का यह मत मान्य तथा अधिक प्रामाणिक है कि शांत रस काव्य तथा नाटक दोनों में अवश्यमेव रहता है। इसके स्थायी भाव के विषय में विभिन्न मतों का उल्लेख 'अभिनवभारती' में बड़े विस्तार के साथ आचार्य अभिनवगुप्त ने किया है। इतना ही नहीं, आचार्य अभिनवगुप्त ने शांत रस को सर्वश्रेष्ठ रस स्वीकार किया है। उनके अनुसार यह प्रकृति रस होता है और इतर शृंगारादि सभी रस उसकी नाना विकृतियाँ हैं।

शांत रस का स्थायीभाव– शांत रस के स्थायीभाव के विषय में भी आचार्यों में मतभेद है। कुछ आचार्य शम को शांत रस का स्थायीभाव मानते हैं तो कुछ निर्वेद को तथा कुछ आचार्य इनसे भिन्न को। यहाँ नीचे शांत रस के विविध स्थायीभाव तथा उनको मानने वाले आचार्यों का नाम दिया गया है–

निर्वेद– मम्मट, जयदेव, विद्याधर, केशव मिश्र, भानुदत्त तथा पण्डितराज जगन्नाथ।

शम– उद्भट्ट, धनञ्जय, हेमचन्द्र, रामचन्द्र–गुणचन्द्र, वाग्भट, कविराज विश्वनाथ, विद्यानाथ तथा नरसिंह कवि।

सम्यग्ज्ञान–रुद्रट।

तृष्णाक्षयसुख–आनंदवर्धन।

तत्त्वज्ञान– अभिनवगुप्त।

धृति–भोजदेव।

रति– अग्निपुराण।

इस प्रकार हम देखते हैं कि विविध आचार्य शांत रस के स्थायीभाव को भिन्न–भिन्न प्रतिपादित करते हैं। परंतु सूक्ष्म दृष्टि से विश्लेषण करने पर इनमें बहुत अधिक भिन्नता का अवसर नहीं है। सम्यग्ज्ञान, तत्त्वज्ञान और निर्वेद एक–दूसरे के पर्यायस्वरूप हैं। धृति और रति को शांत रस का व्यभिचारी भाव माना जा सकता है, स्थायी भाव नहीं। अभिनवगुप्त, रामचन्द्र–गुणचन्द्र, विश्वनाथ आदि आचार्यों ने शांत

रस के विभावादि के निरूपण प्रसंग में निर्वेद को संचारीभाव माना है। तृष्णाक्षयसुख को शांत रस का स्थायी भाव मानने पर रस की स्थिति अभावात्मक हो जाती है। शांत रस के स्थायी भाव के विषय में आचार्य अभिनवगुप्त का एक भिन्न और रोचक मत है। उनका मानना है कि विविध रसों के स्थायी भावों की स्थिति–विशेष में शांत रस के स्थायीभाव को मानने का प्रयत्न करना चाहिए अर्थात् अध्यात्म चर्चा आदि से परिपोषित रति, विकृति दर्शनजन्य हास, सकल संसार को दुख में देखने पर शोक, सांसारिकता को अपकारक मानकर उसके प्रति क्षोभ, आत्मोद्धार के प्रति उत्साह, समस्त विषयों से भय, कांचन–कामिनी से घृणाजन्य जुगुप्सा, अपूर्व आत्मस्वरूप के प्रति विस्मय आदि को शांत रस का स्थायी भाव मानना चाहिए।[15] परंतु आचार्य अभिनवगुप्त के इस मत को स्वीकार नहीं किया जा सकता है। ऐसा मानने पर शांत रस के अनेक स्थायी भाव हो जाएँगे। यदि अनेक स्थायी भाव होने के कारण शांत रस का तत्तद् भेद मान लिया जाए तो ये अशास्त्रीय भेद होंगे जिसे स्वीकार नहीं किया जा सकता। यदि सभी स्थायी भावों को प्रपानक रस न्याय से एक साथ शांत रस का स्थायी भाव मानने की कल्पना कर ली जाए तो यह भी असंगत होगा। रति–जुगुप्सा, उत्साह–भय आदि विरोधी भावों की एक साथ स्थिति कदापि संभव नहीं है।

शम को शांत रस का स्थायी भाव मानने में कुछ समीक्षकों को आपत्ति है। उनके मतानुसार शम और शांत एक दूसरे के पर्याय हैं तथा ऐसा करने पर भरतमुनि द्वारा परिगणित भावों की संख्या में व्यतिक्रम हो जाएगा। इन दोनों आपत्तियों के विषय में उत्तर है कि यदि हास्य और हास तथा परवर्ती आचार्यों द्वारा स्वीकृत वत्सल और वात्सल्य में भ्रम उत्पन्न नहीं होता है तो शांत और शम में भी भ्रम नहीं होगा। दूसरी बात यह है कि भरतमुनि ने भावों की संख्या जरूर बतलाई है परंतु उसकी संख्या सुनिश्चित नहीं की है। उन्होंने नाट्यशास्त्र में 'आदयः' लिखकर स्पष्ट संकेत दिया है कि परिगणित संख्या के अतिरिक्त भी भाव हो सकते हैं। मनोविज्ञान के नियम के अनुसार परिस्थिति विशेष में नवीन भावों का उद्भव होता रहता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने गोस्वामी तुलसीदास के काव्य में सकपकाहट नाम का नया भाव स्वीकार किया है। अतः भरतमुनि द्वारा परिगणित भावों की संख्या के व्यतिक्रम का तर्क समीचीन नहीं है। ऐसे में शम को शांत रस का स्थायी भाव मानना उपयुक्त है।

मूल रसवाद और शांत रस– संस्कृत काव्यशास्त्र में अलग–अलग आचार्यों ने अलग–अलग रसों को मूल रस माना है। आचार्य अभिनवगुप्त शांत रस को समस्त रसों का मूल मानते हैं। उनका मानना है कि रस आनदस्वरूप होता है। शृंगारादि रसों में यह आनंद रत्यादि भावों द्वारा आच्छादित कर लिया जाता है जिससे दर्शकों को परिशुद्ध आनंद की अनुभूति नहीं होती है। इसके विपरीत शांत रस में सहृदय विशुद्ध आनंद की अनुभूति करता है। शांत रस का स्थायी भाव शम है। जब चित्त संसार के

प्रपंचों से हटकर शुद्ध सत्त्व में प्रतिष्ठित हो जाता है तब शांति का उदय होता है। सब चित्त को विकृत करने के लिए न किसी सजातीय वृत्ति का उदय होता है और न ही किसी विजातीय वृत्ति का। चित्त अपने विशुद्ध सात्विक रूप में सर्वदा विद्यमान रहता है और तभी शांत रस होता है। बाह्य वस्तु के आने पर जब चित्त उसके आकार को ग्रहण कर लेता है तब उसमें तदाकार वृत्ति का उदय होता है और चित्त अपने स्वाभाविक साम्यदशा से हटकर वैषम्य दशा की ओर अग्रसर होता है। ऐसी दशा में श्रृंगारादि रसों की उत्पत्ति होती है इसलिए विशुद्ध आनंदस्वरूप होने का कारण शांत रस को ही मूल रस मानना चाहिए।[16]

शांत रस और मोक्ष– आचार्य धनंजय और धनिक शांत रस को मोक्षावस्था का पर्याय मानते हैं।[17] काव्य से प्राप्त होने वाले शांत रस का अनुभव और साधना से प्राप्त होने वाले मोक्ष के अनुभव में अंतर करना बहुत मुश्किल है क्योंकि दोनों ही अनुभव–दशा का स्वरूप एक ही है। अंतर किंचित्मात्र यही है कि एक में मोक्ष का अनुभव साधना से किया जा सकता है जबकि दूसरे में यही अनुभव काव्य के द्वारा होता है। आचार्य विश्वनाथ की दृष्टि में इनका स्वरूप एक मीठी औषधि के समान है जो रोगों को तो समूल नष्ट करती ही है। साथ ही औषधि ग्राहक को मीठे का स्वाद देकर आनंद का अनुभव कराती है।[18] साहित्य की भाषा में मोक्ष को ही शांत रस कहा जाता है। 'नाट्यदर्पण' के अनुसार दृश्यकाव्य द्वारा धर्म, अर्थ और काम यह तीनों फल प्राप्त तो होते ही हैं, इससे मोक्ष की भी प्राप्ति होती है। मोक्ष प्राप्ति के लिए नाट्यादि में शांत रस की स्थिति आवश्यक है। जो लोग शांत रस को नहीं मानना चाहते, उनके मत में नाट्यादि से मोक्ष की सिद्धि का मार्ग बंद हो जाता है।[19] अर्थात् यदि नाट्यादि से मोक्ष की सिद्धि स्वीकार करें तो समस्त पुरुषार्थों के शिरोमणि मोक्ष का एकमात्र हेतुभूत शांत रस को मानना अनिवार्य है। भावप्रकाशकार आचार्य शारदातनय के द्वारा नाट्यादि में शांत रस की स्थिति को अस्वीकृति दी गई है किंतु मोक्षसिद्धि हेतु शांत रस की ही अनिवार्यता का कथन किया गया है। इस आधार पर उन्होंने शांत रस को सर्वश्रेष्ठ रस माना है[20]। उनका कहना है कि अनुभाव आदि के अभाव के कारण शांत रस की अनभियनेता सिद्ध होती है, इस आधार पर शांत रस विकलांग ही है, फिर भी शरीरधारी के पुरुषार्थ चतुष्ट्य में सर्वश्रेष्ठ पुरुषार्थ मोक्ष के लिए उपयोगी होने से यह श्रेष्ठ कहा जाता है।[21]

इस प्रकार हम देखते हैं कि शांत रस के विषय में संस्कृत काव्यशास्त्र में अनेक मत–मतांतर हैं। परंतु समस्त मत–मतांतरों के अध्ययन एवं विश्लेषण से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि काव्य तथा नाटक में शांत रस का अपलाप नहीं किया जा सकता। यह भी कहना ठीक नहीं है कि शांत रस का अभिनय नाटकों में असंभव है। विविध प्रमाणों एवं आचार्यों के मतों से सिद्ध होता है कि नाटक में भी शांत रस का

सुंदर नियोजन किया जा सकता है। आचार्यों ने अपने इस मत के समर्थन में महाभारत का उदाहरण दिया है। सभी आचार्य एक मत से स्वीकार करते हैं कि महाभारत में शांत रस है। महाभारत पर गंभीरता से विचार करें तो वह वीर रस प्रधान महाकाव्य दिखता है परंतु उसकी वीरता की अंतिम परिणति शांत रस में ही होती है। अतः शांत को रस मानने में किसी प्रकार की आपत्ति नहीं होनी चाहिए। इतना ही नहीं, समस्त रसों के विषय में विश्लेषण करने पर यह भी सिद्ध होता है कि शांत रस सभी रसों से श्रेष्ठ है। आचार्य मम्मट ने अपनी रचना 'काव्यप्रकाश' में सद्यः परनिवृत्ति को सर्वप्रमुख काव्य प्रयोजन कहा है। सद्यः परनिवृत्ति की वास्तविक स्थिति तो शांत रस में ही दृष्टिगत होती है। अतएव इसके पक्षपाती आचार्यों के द्वारा शांत रस को सर्वश्रेष्ठ रस कहना भी युक्तिसंगत है।

संदर्भ

1. इह त्वष्ट रसायत्ता रसवत्ता स्मृता गिराम्। काव्यादर्श 2.292
2. काव्ये नवरसाः स्मृता। शृंगारतिलक 1.22
3. वही 3.36
4. अष्टों नाट्ये रसास्मृताः। नाटकरत्नलक्षणकोश 14.21
5. दशरूपक, चतुर्थ प्रकाश
6. दशरूपक की अवलोक टीका 4.35
7. शममपि केचित्प्राहुः पुष्टिर्नाट्येषु नैतस्य। वही 4.15
8. वही 4.36
9. ततो रसत्वमपि न तोषामुच्यते। वही 3.36
10. न च तस्यान्तर्भावः कर्तु युक्तः। ध्वन्यालोकवृत्ति 3.36
11. यद्यैक्यं परिकल्प्यते तद् वीर रौद्रयोरपि तथा प्रसंगः। वही 3.36
12. काव्यानुशासन वृत्ति 2.4
13. निरहंकाररूपत्वाद् दयावीरादिरेषनो। साहित्यदर्पण 3.249
14. संस्कृत आलोचना, पृ. 284–285
15. अभिनवभारती पृ.336
16. संस्कृत आलोचना, पृ.302
17. शमप्रकर्षो अनिर्वाच्यो मुदितादेस्तदात्मता, दशरूपक 4.45
18. साहित्यदर्पण
19. नाट्यदर्पण 3.26 की वृत्ति
20. भावप्रकाश 6.36
21. वही 6.37

संदर्भ–ग्रंथ सूची–

1. अग्रवाल, मदनमोहन–भावप्रकाश (शारदातनय), चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, 2008
2. आनंदवर्धन– ध्वन्यालोक (व्याख्या–आचार्य विश्वेश्वर), ज्ञानमंडल लिमिटेड, 2018
3. उपाध्यक्ष, बलदेव –संस्कृत आलोचना, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, 1991
4. उपाध्यक्ष, बलदेव–संस्कृत साहित्य का इतिहास, शारदानिकेतन, वाराणसी, 1994
5. काण पी.वी.– संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास, मोतीलाल बनारसदास, दिल्ली, 1966
6. चतुर्वेदी, बृजमोहन–नाट्यशास्त्र (भरतमुनि), विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली, 1998
7. धनंजय–दशरूपक (व्याख्या–बैजनाथ पाण्डेय), मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1999
8. नगेंद्र–नाट्यदर्पण (रामचंद्र–गुणचंद्र), हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली, 1990
9. मम्मट– काव्यप्रकाश (व्याख्या–राम सागर त्रिपाठी), ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी, 1982
10. हीरा, राजवंश सहाय–भारतीय साहित्य शास्त्र कोश, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना, 1973
11. शास्त्री, शालग्राम– साहित्यदर्पण (विश्वनाथ), मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली, 1970

❑❑❑

मैं उसे खोजता हूँ जो आदमी है और
अब भी आदमी है
तबाह होकर भी आदमी है
चरित्र पर खड़ा देवदार की तरह बड़ा।

(केदारनाथ अग्रवाल)

हिंदी ग़ज़ल में दुष्यंत: महत्त्व और मूल्यांकन

डॉ. ज़ियाउर रहमान जाफरी
पंद्रह पुस्तकें प्रकाशित, संप्रति– सरकारी सेवा।

दुष्यंत नई कविता के कवि हैं और नई कविता के कवि के रूप में वे काफी प्रसिद्ध भी रहे। यह अलग बात है कि किसी सप्तक में सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' ने उन्हें अवसर नहीं दिया। वो नई कविता के ऐसे महत्त्वपूर्ण कवि हैं जो सप्तक में न होने के बावजूद प्रमुखता से अपनी उपस्थिति दर्ज करते हैं और अपने सिद्धांत और उसूलों से समझौता नहीं करते। यह कवि जब ग़ज़ल की दुनिया में आता है तो कोई परंपरागत इश्क की शायरी नहीं करता बल्कि एक बूढ़े आदमी को मुल्क का रोशनदान कहता है। अपनी नौकरी करते हुए उन्हें बार–बार तंग किया जाता है। हिंदी के कवि दुष्यंत और दिनकर के जितने ट्रांसफर हुए, वह किसी से छुपा हुआ नहीं है। दुष्यंत वास्तव में सच लिखते थे और किसी से डरने वाले नहीं थे। वह तब भी नहीं डरे जब राष्ट्रपति फखरुद्दीन अली अहमद ने स्पष्टीकरण के लिए उन्हें अपने पास बुला लिया था।

हिंदी कहानी में प्रेमचंद और हिंदी कविता में कबीर दो ऐसे ऋषि हैं जिन्हें कभी सीमाएँ नहीं बाँध सकीं। उन्होंने जो देखा, वह लिखा। इन दोनों के बाद अगर सच बोलने वाला कोई और कवि–शायर पैदा हुआ तो उसका नाम दुष्यंत था। उन्होंने जब कहा– 'सीमाओं से बँधा नहीं हूँ'[1] तो वास्तव में वह किसी सीमा से नहीं बँधे। उर्दू का एक शायर कहता है– 'ज़मीं पे बैठके क्या आसमान देखता है?' दुष्यंत हिंदी के ग़ज़लगो थे इसलिए ज़मीन से बैठकर जमीन की आफ़त देख रहे थे। आसमान को उन्होंने आसमान वाले के लिए छोड़ दिया था। कुछ लोगों ने दुष्यंत को नागार्जुन की परंपरा का माना है। मैं समझता हूँ कि दुष्यंत का प्रतिवाद नागार्जुन से बढ़कर है। नागार्जुन का विरोध सतही है। वह इंदिरा का विरोध करते हैं और उनसे पुरस्कार भी प्राप्त करते हैं। दिनकर के पास भी नौकरी, निर्धनता और सत्ता की मजबूरी है, पर दुष्यंत सच उगलने के लिए अपनी नौकरी, न्यायालय या अकादमियों की परवाह तक नहीं करते। दुष्यंत इश्क–मुश्क़ की शायरी करने वाले नहीं थे। अगर ऐसा होता तो न हिंदी में शायरी जिंदा होती और न दुष्यंत ज़िंदा रहते। दुष्यंत ने ग़ज़ल के लहजे

को बदला और आम लोगों की जरूरतों और देश के नाज़ेबा हालात से उसे जोड़ा। इसलिए उन पर लिखते हुए विजय बहादुर सिंह ने उन्हें दुस्साहसी कवि कहा है।[2] दुष्यंत कविता लेखन की शुरुआत अपनी किशोरावस्था के दिनों से करते हैं पर उनकी ज्यादातर ऐसी कविताएँ अधूरी रह जाती हैं। जाहिर है, उस किशोर के दिल में जो बेचैनी है, वह कविताओं में पूरी तरह से नहीं आ पा रही है। दुष्यंत मार्ग बदलते हैं। कविताएँ, कहानियाँ, नवगीत– सब को आजमाते हैं। सबकी तासीर पाते हुए जब वे ग़ज़ल की तरफ आते हैं तो उन्हें पता चलता है कि उनकी बेचैनी और ख़लिश का माध्यम यही ग़ज़ल हो सकती है इसलिए यह कवि जो हेमलता के प्यार में पागल था और 'चिर प्रतीक्षा में तुम्हारी गल गए लोचन हमारे'[3] जैसी पंक्तियाँ लिखता था, उसने ग़ज़ल में आकर कहा–

ये ऊब, फिक्र और उदासी का दौर है।
फिर कैसे तुम पे शेर कहें रीझते हुए।।

राजनीतिक व्यवस्था के प्रति विरोध और बगावत से दुष्यंत का पैदाइशी रिश्ता रहा। वह जब प्रेम करता है तब भी जयशंकर प्रसाद के मेरे नाविक की तरह प्रेयसी को जगत भूलने को नहीं कहता, बल्कि वह कहता है–'मेरी तो इच्छा है प्रिय/आओ हम–तुम कहीं दूर चलें।'[4] जब घनानंद की सुजान की तरह यह प्रेयसी साथ नहीं देती तो पत्नी के प्रति कविता लिखते हुए कहता है– 'तुम्हारी याद में पागल प्रवासी लौट आया है'।

दुष्यंत गांधी को मानते थे और कुर्ता पजामा के साथ गाँधी टोपी पहनते थे। उन्होंने सुमित्रानंदन पंत को अपना गुरु माना था। दोनों में अंतर यह है कि पंत का मन प्रकृति में लगता है और दुष्यंत का प्रतिकार में। सिर्फ कविता के माध्यम के प्रति ही नहीं, कवि को अपने नाम के प्रति भी संशय की स्थिति है। वह कभी अपना तखल्लुस विकल जोड़ता है, कभी परदेसी और अंततोगत्वा दुष्यंत कुमार बनकर रह जाता है। यह वह नाम है जो हिंदी ग़ज़ल में चाँद बनकर रोशन हुआ और जिसके न होने से रात अमावस्या बन जाती है। दुष्यंत के हिस्से कविता की कुल तीन पुस्तकें हैं– 'एक ग़ज़ल की किताब साये में धूप', 'सूर्य का स्वागत' तथा 'जलते हुए वन का बसंत।' 'सूर्य का स्वागत' में कुल अड़तालीस कविताएँ हैं जो कवि के जुझारू व्यक्तित्व को प्रदर्शित करती हैं। 'जलते हुए वन का वसंत मैं' कवि की बिल्कुल अलग तर्ज़ है और यही राजनीतिक असंतोष, बढ़ती हुई आर्थिक खाई तथा आक्रोश, द्रोह, विद्रोह दुष्यंत की शायरी में उभरकर सामने आ जाता है। दुष्यंत ने कभी कहा था– मेरे पास कविताओं के मुखौटे नहीं हैं।[5] जाहिर है सत्ता और समाज का जो चरित्र है, दुष्यंत उसे नहीं छुपाते। वे साफ–साफ कहते हैं–

तुम्हारी बदौलत मेरा देश
यातनाओं से नहीं।
फूल मालाओं से दबकर मरा है।।[6]

दुष्यंत जब ग़ज़ल की दुनिया में आते हैं तो फिर वही घोषणा करते हैं– 'सिर्फ पोशाक या शैली बदलने के लिए मैंने ग़ज़लें नहीं कही.'[7] आगे वह उस तकलीफ की बात करते हैं जिससे सीना फटने लगता है। जाहिर है उनका एक–एक शेर जनविरोधी चेहरा दिखाने वाला है। कालांतर में यही हिंदी ग़ज़ल की प्रवृत्ति बनी। आखिर कमलेश्वर ने उनका नाम नाजिम हिकमत और पाब्लो नेरुदा से जोड़कर यूँ ही नहीं देखा था। दुष्यंत सिर्फ हंगामा करने वाले शायर नहीं हैं। उनकी कोशिश सूरतों को बदलने और सीने में आग पैदा करने की है। उनकी शायरी पूरी उर्दू–हिंदी ग़ज़ल परंपरा में पहली बार भूख और बेकारी से जुड़ती है–

इस कदर पाबंदी–ए–मज़हब कि सदके आपके।
जब से आजादी मिली है मुल्क में रमजान है।।[8]

जाहिर है, हालात ऐसे हैं कि भूख लगने पर खाने की और प्यास लगने पर पीने की भी पाबंदी है। ग़ज़ल जो कि नर्म सुखन बनकर फूटती है, उसमें हालात और मामलात का ऐसा कठोर चित्रण दुष्यंत के बूते की ही बात थी। उर्दू शायरी में जिस भूने हुए कवाब का वर्णन था, दुष्यंत की हिंदी ग़ज़ल में आदमी खुद भुना हुआ कबाब बनकर रह जाता है–

अब नई तहज़ीब के पेशे नजर हम।
आदमी को भूनकर खाने लगे हैं ।।

इतना ही नहीं, स्थिति इतनी गंभीर है कि एक हँसता हुआ आदमी भी चीखने–चिल्लाने लगता है।

हिंदी ग़ज़ल लेखन में दुष्यंत का दखल एक शौक नहीं, उपकार है क्योंकि दुष्यंत अगर नहीं होते तो हिंदी गज़ल काव्य की एक मृतप्रायः विधा बनकर हमारे सामने रह जाती। आज दुष्यंत हैं तो इस बहाने कबीर, निराला, प्रसाद और शमशेर का जिक्र भी आ जा रहा है। पूरी हिंदी ग़ज़ल परंपरा का अगर आप अध्ययन करें तो हिंदी ग़ज़ल दुष्यंत और अदम गोंडवी की शैली को अपनाती हुई नजर आती है। हिंदी ग़ज़ल की यह खुशकिस्मती है कि समकालीन हिंदी ग़ज़ल परंपरा में उनके पास उर्मिलेश, ज्ञान प्रकाश विवेक, अनिरुद्ध सिन्हा, हरेराम समीप, विनय मिश्र, डॉ. भावना और बालस्वरूप राही जैसे नामचीन शायर मौजूद हैं।

दुष्यंत पर बात करते हुए उनके गद्य रूप को अक्सर भुला दिया जाता है। 'छोटे–छोटे सवाल' और 'आँगन में एक वृक्ष' जैसे उनके महत्त्वपूर्ण उपन्यास हैं। 'मिस पीटर' जैसी सात महत्त्वपूर्ण कहानियाँ हैं। 'दुष्यंत रचनावली' के तीसरे भाग में उनके

कई संस्मरण, साक्षात्कार निबंध, लेख आदि भी मौजूद हैं। नई कहानीः परंपरा और प्रगति जैसी उनकी कई आलोचनात्मक कृति भी हैं। यह कृतियाँ भी अपने समय के प्रश्नों से टकराती हैं और सरकार के औचित्य और ईमानदारी पर प्रश्नचिह्न लगाती हैं।

दुष्यंत ग़ज़ल में नई कविता और नई कहानी से आए हैं। हिंदी में ये दोनों विधाएँ आजादी के बाद की उपजी हुई निराशा पर केंद्रित हैं। दुष्यंत ग़ज़ल में भी इस फ़िक्र को रखते हैं–

हमको पता नहीं था हमें अब पता चला।
इस मुल्क में हमारी हुकूमत नहीं रही।।[9]

हमें आजादी महज सत्ता के हस्तांतरण के लिए नहीं मिली थी। आजादी हमें अपने हक को पाने के लिए थी और इसलिए हमने लंबी लड़ाइयाँ लड़ीं। देश को जैसी आजादी मिली, दुष्यंत उसके कायल नहीं थे पर गद्दी ऐसे लोगों को मिल गई थी कि हालात का बदलना इतना आसान नहीं रह गया था–

तफ़सील में जाने से तो ऐसा नहीं लगता
हालात के नक्शे में अब रद्दोबदल होगी।

आजादी की लंबी लड़ाई दासता से मुक्ति थी। हमें दास्ता से मुक्ति तो मिली, पर भ्रष्टाचार, शोषण और भाई–भतीजावाद के हम शिकार हो गए। दिल्ली में अंग्रेजों की जगह भारतीयों ने भले ले ली, पर आम जनता वैसी ही पिसती रही। एक वक्त ऐसा भी आया जब लोगों को एहसास होने लगा–

ये रोशनी है हक़ीकत में एक छल लोगों।
कि जैसे जल में झलकता हुआ महल लोगों।।

दुष्यंत की शायरी इसी नाइंसाफी के खिलाफ है पर इस विद्रोह में भी दुष्यंत की भाषा सरल बनी रहती है और ग़ज़लियत अपनी जगह कायम रहती है।

दुष्यंत को दुष्यंत बनाने में उनकी नौकरी और मित्र मंडली का भी कम स्थान नहीं है। रेडियो की नौकरी करते हुए उन्होंने नेताओं से कई साक्षात्कार लिए। फिर उन्हें पता चला कि नेताओं की कथनी और करनी में पर्याप्त अंतर है। जो सरकारें चुनी गईं जिसके साथ जिस देश में लोकतंत्र की स्थापना हुई, जब वही सरकार संविधान को बाला–ए–ताक रखकर यहाँ के लोगों के मौलिक अधिकार को छीन ले तो इससे बड़ी आपदा क्या हो सकती है। ऐसे हालात में जब तमाम आवाजें खामोश कर दी गईं, लिखने पर पहरा लग गया, तब भी एक आवाज थी जो वहाँ गूँज रही थी और वह दुष्यंत की आवाज थी–

किससे कहें कि छत की मुंडेरों से गिर पड़े।
हमने ही खुद पतंग उड़ाई थी शौकिया।।[10]

मतलब साफ है कि उस कुव्यवस्था के जिम्मेवार हम खुद हैं–

खड़े हुए थे अलावों की आँच लेने को ।
सब अपनी अपनी हथेली जला के बैठ गए।।[11]

विकास और विस्तार की बात तो छोड़ दें, रोटी जो इंसान की पहली जरूरत है, वही मयस्सर नहीं रही। दुष्यंत ने साफ लिखा और सीधे दिल्ली को निशाना बनाया–

भूख है तो सब्र कर रोटी नहीं तो क्या हुआ।
आजकल दिल्ली में है ज़ेरे बहस ये मुद्दआ।।

पूरी उर्दू हिंदी ग़ज़ल में बगावत की ये पहली जबान थी जिसे दुष्यंत ने अपनाया था। उनकी इस आवाज़ के साथ ही शायरी में तीखे तेवर की इब्तिदा होती है। दुष्यंत नेताओं के ढोंग और आश्वासन का पोल खोलते हैं। भूख, महँगाई, गरीबी, दुःख–तकलीफ और अभाव के खिलाफ आवाज उठाते हैं। वे अपने एक लेख में लिखते हैं भ्रष्टाचार की कहानी अमरबेल की तरह बढ़ रही है। ऐसे झूठे भरोसे उनकी कविताओं के विषय भी बने और ग़ज़लों के भी–

डूब जाएगा पुनः आश्वासनों का सूर्य
भाषणों की धूप में तपते हुए चेहरे
विदा लेंगे[12]

यही बात जब उनकी ग़ज़ल में आती है तो शेर यूँ बनता है–

रहनुमाओं की अदाओं पे फिदा है दुनिया ।
इस बहकती हुई दुनिया को सँभालो यारों ।।

....

आदमी होंठ चबाये तो समझ आता है।
आदमी छाल चबाने लगे ये तो हद है।।

....

देख दहलीज से काई नहीं जाने वाली।
यह खतरनाक सचाई नहीं जाने वाली।।

यही कारण है कि दुष्यंत अपनी ग़ज़ल को सल्तनत के नाम बयान कहते हैं। वे खामोश रहने वाले शायर नहीं हैं और न ही वे महज तमाशबीन बनकर रहना चाहते हैं–

मैं बेपनाह अँधेरों को सुब्ह कैसे कहूँ।
मैं इन नजारों का अंधा तमाशबीन नहीं।।

और फिर यह जुबान भी ऐसी कि –

....

ये जुबां हमसे सी नहीं जाती ।
ज़िंदगी है कि जी नहीं जाती ।।

दुष्यंत की शायरी का जनसामान्य पर ऐसा असर हुआ कि दिल्ली की सरकारें हिलने लगीं। साहित्य पर यह विधा हावी हो गई और कविता का मतलब ही ग़ज़ल समझा जाने लगा। जिसका नई कविता वालों ने काफी विरोध किया और ये मानसिकता कमोबेश आज भी है। उनके मित्र कमलेश्वर ने उन्हें 'लोकतंत्र का सच्चा पहरेदार' और 'सरहदों की निगहबानी करने वाला' बताया था, तो वास्तव में वो ऐसा करते भी हैं।

दुष्यंत की रचनाएँ सत्ता पर सीधे प्रहार करती हैं। दुष्यंत को अगर सबसे ज्यादा चिढ़ है तो नेताओं के छद्म समाजवाद से क्योंकि ये जनता को भ्रमित करते हैं। दुष्यंत की शायरी असलियत को खोलकर रख देने वाली है। इसलिए चिथड़े पहने हुए नुमाइश में मिला आदमी उनकी नजर में आम हिंदुस्तानी है। दुष्यंत जानते हैं कि राज सत्ताधीशों के पास ज़मीर तक नहीं बचा है और उसने अपने ईमान तक का सौदा कर लिया है, तब ऐसे लोगों से क्या कहना–

उसने जमीर बेच दिया है तो शक नहीं।
वह शख़्स क़ामयाब हुआ चाहता है अब।।

कहना ना होगा कि हर वह आदमी आज कामयाब है जिसने अपने ज़मीर का सौदा कर लिया है और जिसने इसे नहीं बेचा, उसकी हालत कैसी है; दुष्यंत के ही अशआर में देखें–

जो बेसुरे हैं वो मजमों के बीच जाते हैं।
जो आज सुर में हैं उनकी कोई समात नहीं।।
....
एक तालाब सी भर जाती है हर बारिश में।
मैं समझता हूँ ये खाई नहीं जाने वाली।।

और इस खाई की वजह से हंगामे से मना करने वाला यह शायर हंगामा करने पर आमादा हो जाता है–

पक गई है आदतें बातों से सर होगी नहीं।
कोई हंगामा करो ऐसे गुजर होगी नहीं।।

यह हंगामा भी इसलिए जरूरी है कि–

....
हर दर्द बेनकाब हुआ चाहता है अब।
सीने में इंक़लाब हुआ चाहता है अब।।[13]

यह शायर जब कविता लिख रहा होता है, तब भी यही प्रतिवाद और जन–विरोधी ताकत का स्वर अपनाता है –

जुल्म चाहे जितना हो।
आवाज मरती नहीं है।।

सिर्फ जुड़े रहो बोलते हुए।
यानी ख़ामोशी तोड़ते रहो।।[14]

दुष्यंत की नज़र में इस स्थिति के लिए जनता भी कम जिम्मेवार नहीं है क्योंकि उसने ही हालात को बदलने की कोई कोशिश नहीं की। फिर यह शायर पूरी उम्मीद और भरोसे से कहता है–

कैसे आकाश में सूराख नहीं हो सकता।
एक पत्थर तो तबीयत से उछालो यारो।।

परिस्थितियाँ अगर विरोधी भी हों, तो हौसले उसे मवाफ़िक बना देते हैं –

इस नदी की धार से ठंडी हवा आती तो है।
गो जर्जर ही सही लहरों से टकराती तो है।।

आप अगर दुष्यंत की भाषा पर ग़ौर करें तो पाएंगे कि विशेषकर ग़ज़लों में दुष्यंत ने उस भाषा का इस्तेमाल किया है जो आम लोगों की भाषा है। आज आवाम की यही भाषा हिंदी ग़ज़ल की मानक भाषा के रूप में स्वीकृत है।

दुष्यंत की वह ग़ज़ल जो शुद्ध हिंदी या उर्दू में है, स्वयं उनके ही शब्दों में वह ज्यादा कृत्रिम हो गई है। इसलिए वह कहते हैं, 'मेरी एक कोशिश यह भी रही है कि हिंदी और उर्दू के बीच में सेतु का काम कर सके।' इसलिए दुष्यंत की ग़ज़ल को पढ़ते–पढ़ाते हुए भी किसी शब्दकोश की जरूरत नहीं पड़ती। उनकी ग़ज़लें उर्दू हिंदी के भाषाई लालित्य के अद्भुत नमूने हैं। कुछ शेर देखें –

धूप ये अठखेलियाँ हर रोज करती है।
एक छाया सीढ़ियाँ चढ़ती उतरती है।।

....

ये लोग होमो हवन में यकीन रखते हैं।
चलो यहाँ से चलें हाथ जल न जाए कहीं।।[16]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि दुष्यंत की रचनाएँ पूँजीवादी समाज और लोकतंत्र की खामियाँ, भाई–भतीजावाद, स्वार्थपरता, चुनावी नाटकीयता, झूठे आश्वासन, दोहरे चरित्र, लोगों की चालबजियों को बेहद साफ़ तरीके से सामने रखती हैं।

हिंदी ग़ज़ल का यह नया तेवर दुष्यंत की शायरी से शुरू होता है और वहीं समाप्त हो जाता है। दुष्यंत का एक–एक शेर हिंदी ग़ज़ल की थाती है। हमें इस बात का गुरूर है कि हमारे पास दुष्यंत जैसा शायर है।

संदर्भ ग्रंथ–

1. दुष्यंत रचनावली, भाग 1, संपादक विजय बहादुर सिंह, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, वर्ष 2007, पृष्ठ 385
2. यारों के यार दुष्यंत, संपादक विजय बहादुर सिंह, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2008, पृष्ठ 127
3. दुष्यंत रचनावली, भाग 1, संपादक विजय बहादुर सिंह, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, वर्ष 2007, पृष्ठ–118
4. वही
5. वही
6. वही
7. दुष्यंत रचनावली, भाग दो संपादक– विजय बहादुर सिंह, किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ–237
8. वही
9. वही
10. वही
11. वही
12. वही
13. वही
14. वही
15. वही
16. वही

❑❑❑

सामान कुछ नहीं है, फटेहाल है मगर
झोले में उसके पास, कोई संविधान है

– दुष्यंत कुमार

काव्य और चित्रकला का अंतर्संबंध: एक विवेचन

प्रोमिला

चार पुस्तकें प्रकाशित, अनेक पत्रिकाओं/पुस्तकों में लेख प्रकाशित। संप्रति–द इंग्लिश एंड फॉरेन लैंग्वेज यूनिवर्सिटी, हैदराबाद में एसोसिएट प्रोफेसर।

मानव जीवन में उपयोगी कलाओं से इतर सत्यम्, शिवम् और सुंदरम् का समावेश संभव करने वाली ललित कलाएँ किसी भी देश की संस्कृति के सम्यक् रसात्मक ज्ञान की परिचायक रही हैं। इनमें मनुष्य ने अपनी सत्ता का आविष्कार किया है। ललित भावमूलक रागपरक अद्यतन लालसा को उत्कृष्टता दी है। 'विष्णुधर्मोत्तरपुराण' के 'चित्रसूत्रम्' में जहाँ चित्रकला के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए 'कलानां प्रवरं चित्रं' (सभी कलाओं में चित्रकला सर्वोत्कृष्ट है)[1] कहा गया है, वहीं भामह ने 'जायते यन्न काव्याङ्गम' (कलाओं को काव्य का अंग)[2] माना है। किंतु इसका तात्पर्य कलाओं में द्वैत–भाव, कलह या अलगाव का विचार कदापि नहीं है क्योंकि यहाँ विरोध के अंश स्वतः नहीं होते वरन् कलाकार को अकारण स्वयं के गुणों का ऐतिहासिक मोह होता है, अन्यथा प्रत्येक कला स्वयं में परिपूर्ण, एक जैसी मानुषी सृष्टि ही है। उसका सौंदर्य आभ्यांत्रिक सत्य की अभिव्यक्ति में निहित है। बाह्य वस्तुएँ उस सत्य को रूपाकार देने का आधार भर हैं जिसे कवि शब्द या वाक्य से, गायक स्वर से, वास्तुविद् ईंट–पत्थर से और चित्रकार रंगरेखा से अस्तित्वमान बनाता है। अशोक वाजपेयी लिखते हैं, 'हमारा (यानी साहित्य और कलाओं का) एक स्वाभाविक पड़ोस है। हम एक ही बस्ती के लोग हैं। उनकी समस्याएँ लगभग एक–सी हैं और मुझे कोई कारण नजर नहीं आता कि ये लोग आपस में बातचीत न करें, कभी नोक–झोंक न करें।'[3]

वैश्विक सौंदर्यशास्त्र के इतिहास में सदियों से विचार उपस्थित रहा है कि चित्र और काव्य दोनों एक ही प्रकार के पाठ हैं। यूनानी दार्शनिक प्लूटार्क के दृष्टिकोण, 'पेंटिंग मौन कविता है और कविता एक मुखर चित्र है', से लेकर होरेस की उक्ति, 'एक चित्र शब्दों के बिना एक कविता है' और लियोनार्डो दा विंची का कथन, 'चित्रकला वह कविता है जिसे देखा जाता है, ना कि महसूस किया जाता है और कविता वह चित्रकला है जिसे महसूस किया जाता है ना कि देखा जाता है' से लेकर विलियम

ब्लैक की टिप्पणी, 'चित्रकार अपने सामने जो कुछ है उसे चित्रित करने का प्रयास करता है; कवि अपने मन में जो कुछ है उसे अभिव्यक्त करने का प्रयत्न करता है।'[4] में इन विधाओं का पारस्परिक संबंध सुस्पष्ट है। विभिन्न युगों में चित्रों को आधार बनाकर काव्य रचे गए हैं और निश्चित रूप से, काव्य से प्रेरित होकर बनाई गई चित्रकृतियाँ भी प्रकाश में आई हैं। तभी तो चित्रकला, सुलेख और कविता का सम्मिश्रण 'हाइगा' जापानी कलात्मक अभिव्यक्ति का अनूठा रूप रही है। मंगोल युआन राजवंश के समय से ही चीन में चित्रों पर कविताएँ लिखकर चित्रकारों ने कलाओं को एक साथ जोड़ा है। क्षेमेन्द्र जैसे भारतीय आचार्य ने अपनी पुस्तक 'कविकंठाभरण' के छठे–सातवें श्लोक में कवियों के लिए चित्रकला के ज्ञान को आवश्यक मानने का संकेत किया है।[5] बालकृष्ण भट्ट ने अपने लेख 'कवि और चितेरे की डांड़ामेड़ी' में कहा है, 'कवि की प्रतिभा जिस भाव के वर्णन से लोकोत्तर चातुरी प्रकट कर दिखाती है, अच्छा निपुण चितेरा उसी को अपनी प्रतिभा से चित्र के द्वारा दिखला देता है। अच्छा चितेरा कवि के एक–एक श्लोक या दोहे के नीचे उसी भाव की ठीक तस्वीर खींच सकता है। कवि और चित्रकार की कल्पना–शक्ति भी बिल्कुल एक सी है।'[6]

भाषा के माध्यम से अपने अंतरंग की अनुभूति, अभिव्यक्ति कराने वाली कला काव्य कहलाती है जिसके शब्दों में अर्थ होता है और यह काल में व्याहत होने पर भी बहिर्जगत (देश) से असंपृक्त नहीं रहती है। चित्रकला में संपूर्ण दृश्यमान जगत की दृश्यता रंगों के माध्यम से होती है। यहाँ कला विभागीय स्थिति (डाइमेंशनल स्टेट) से मुक्त होकर एकादशी स्थिति को प्राप्त करती है किंतु संगीत, नृत्य, चित्रकला से संपृक्त कविताएँ लिखने वाले फ्रैंक ओ हारा(1926–1966) अपनी कथात्मक कविता 'व्हाई आई एम नॉट ए पेंटर' (1957) में कविता और चित्रकला को एक ही स्पेक्ट्रम के हिस्से बताते हुए कहते हैं– 'मैं चित्रकार नहीं हूँ, मैं कवि हूँ।/क्यों? मुझे लगता है कि मैं होना चाहूँगा/एक चित्रकार, किंतु मैं नहीं हूँ'[7] तथा अपनी कविता 'ऑरेंजेसः 12 पैस्टोरल्स' के लेखन की तुलना सार्डिनेस के चित्र से करके दोनों की रचनात्मक प्रक्रिया को दर्शाते हैं। वस्तुतः विश्व में काव्य–प्रेरित चित्रों की लंबी श्रृंखला विद्यमान रही है। राफेल (1483–1520) का 'द स्कूल ऑफ एथेंस' चित्र प्रत्यक्षतः यद्यपि किसी विशिष्ट कविता से प्रेरित नहीं है पर पुनर्जागरण की दार्शनिक और काव्यात्मक भावना को प्रतिबिंबित करते हुए कला और साहित्य के बीच अंतर्संबंध को प्रदर्शित करता है। विलियम वड्र्सवर्थ की एक युग के अंत और समय बीतने को दर्शाती कविता 'द फाइटिंग टेमरेअर' से प्रेरणा पाकर जेएमडब्लू टर्नर (1775–1851) इसी नाम से चित्र बनाते हैं। असीरियन राजा के नाटकीय अंतिम क्षणों को वर्णित करती लॉर्ड बायरन की 'सरदानापालस' कविता यूजीन डेलाक्रोइक्स (1798–1863) के 'सरदानापालस की

मृत्यु' नामक नाटकीय चित्र का आधार बनती है। और इसी प्रकार सीधे नहीं किंतु जर्मन रोमांटिकतावाद की कविताएँ, विशेषरूप से वे जो मृत्यु और परलोक के विषयों की खोज करती हैं, अर्नोल्ड बोक्लिन (1827–1901) के 'द आइल ऑफ द डेड' चित्र से जुड़ती हैं। परंतु यह संबंध एकात्मक नहीं ठहरता, वरन् बहुआयामी स्तर पर चित्रकार और उनके चित्र भी कवियों को प्रभावित करते रहे हैं। विन्सेंट वान गॉग के 'द स्टारी नाइट' नामक प्रसिद्ध चित्र को आधार बनाकर ऐनी सेक्सटन ने 1962 में इसी नाम से एक कविता रची थी जिसमें चित्र की भावनात्मक गहराई और विशद् कल्पना का अन्वेषण, कलाकार की आंतरिक उथल–पुथल और नाटकीय सुंदरता का अंकन है। अंग्रेजी चित्रकार जॉन विलियम व्हाइट हाउस द्वारा बनाए गए चित्र 'द लेडी ऑफ शालोट' की दुखद कहानी को अल्फ्रेड टेनिसन की 1832 में रचित इसी नाम की कविता में प्रतिध्वनि मिली है। एल ग्रीको की प्रतिष्ठित पेंटिंग 'द ब्यूरियल ऑफ़ द काउंट ऑफ़ ऑर्गेज' (1586) से प्रेरित होकर, जॉर्ज लुइस बोर्गेस बोर्गेस ने इसी नाम की कविता में मृत्यु, दैवीय हस्तक्षेप और कलात्मक प्रतिनिधित्व की प्रकृति के विषयों को दर्ज किया है।

विदित है कि भारत की स्थिति भी कुछ भिन्न नहीं रही। पुरातन काल से ही यहाँ भी समाज और साहित्य तथा चित्रकला ने न केवल एक दूसरे को प्रतिबिंबित और प्रभावित किया है बल्कि दोनों का समृद्ध और बहुआयामी संबंध रहा है। वेद, पुराण और 'भगवद्गीता' जैसे ग्रंथों से चित्रकला के विषय तथा उसकी प्रतीकात्मकता प्रभावित रहे हैं। विभिन्न शैलियों में हिंदू देवताओं के चित्रण का इन ग्रंथों में वर्णित वर्णन और विशेषताओं से ऐक्य है। चित्रकला विषयक प्रभूत सामग्री प्रस्तुत करने वाले ग्रंथों में 'रामायण' और 'महाभारत' का मुख्य स्थान स्वीकृत है। जैन और बौद्ध ग्रंथों में चित्रकला धार्मिक शिक्षाओं और कथाओं को व्यक्त करने के माध्यम के रूप में कार्य करती आई है। 'मधुबनी', 'पट्टचित्र' और 'लघु चित्रकला' जैसी शास्त्रीय भारतीय चित्रकला शैलियों के विकास में तो बहुधा कवियों, कहानीकारों और कलाकारों के बीच सहयोग रहा है। साहित्यिक कृतियों के साथ–साथ मौखिक परंपरा में भी प्रसिद्ध लोककथाओं पर चित्र बनाए जाते रहे हैं, जैसे– 'राजस्थानी' और 'मुगल कला' के चित्रों में प्रायः साहित्यिक ग्रंथों के दरबारी जीवन और ऐतिहासिक घटनाओं को दर्शाया गया है। इतना ही नहीं, प्राचीन भारत में साहित्य और चित्रकला दोनों में अक्सर प्रतीकवाद और रूपक का प्रयोग लक्षित है। चित्रों में रूपकात्मक दृश्य उपस्थित हैं जो साहित्य में पाए जाने वाले विषयों और दार्शनिक विचारों को प्रतिबिंबित करते हैं। प्रसंगतः राममूर्ति त्रिपाठी लिखते हैं, '15वीं सदी के इर्द–गिर्द यह रंग गहराने लगा है। इससे भी पूर्व 12वीं सदी के दक्षिणांचल के लीलांशुक बिल्वमंगल (कृष्ण–कृष्णामृतम्) तथा पूर्वांचल के जयदेव (गीतगोविंद) की रचनाएँ कलाकारों को राधाकृष्ण केंद्रित

चित्र–निर्माण की प्रेरणा देती रहीं। केशव ने 1591 में 'रसिकप्रिया' और 1601 में 'कविप्रिया' की रचना की। पहले में नायक–नायिका भेद है। चित्रकारों ने 'रसिकप्रिया' के बड़े व्यापक पैमाने पर चित्र बनाए। इसी प्रकार 'कविप्रिया' को भी लिया। लोकगीतों के आधार पर 'बारहमासा' लिखा। इसने भी चित्रकारों को प्रभावित किया।[8] इस बीच मेवाड़ चित्रकला में भी 'सूरसागर' आधारित कृष्ण–लीला संबंधी चित्रों की भरमार रही है।

तदनंतर यदि हिंदी की बात की जाए तो 'सरस्वती' पत्रिका में उस युग के प्रसिद्ध चित्रकार राजा रवि वर्मा, बाबू बृजभूषण रायचौधरी, बाबू बामापद बंद्योपाध्याय, श्रीयुत् एमबी धुरंधर के न केवल चित्र प्रकाशित हुए हैं बल्कि महावीरप्रसाद द्विवेदी, कामताप्रसाद गुरु, मैथिलीशरण गुप्त और नाथूराम शर्मा 'शंकर' आदि ने उन पर पद्य भी रचे हैं जिनका संकलन 'कविता–कलाप' नाम से प्रकाशित है तथा जिसकी भूमिका में द्विवेदी जी ने कहा है, 'कवि और चित्रकार में किसका आसन उच्चतर है, इसका निर्णय करना कठिन है क्योंकि किसी चित्र के भाव को कविता द्वारा व्यक्त करने से जिस प्रकार अलौकिक आनंद की वृद्धि होती है, इसी प्रकार कवितागत किसी भाव को चित्र द्वारा स्पष्ट करने से भी इसकी वृद्धि होती है।'[9] काव्य चित्रकला पारस्परिक प्रभेद नहीं रखते हैं। उनकी सहकारिता, सहस्थिति और अंतरावलंबन उत्थान में सुपरिणत हो जाते हैं। "प्रायः चित्र पर कविता लिखते समय कवि या तो कविता में चित्र का वर्णन करते हैं या चित्र के प्रभावों का चित्रण करते हैं या फिर चित्र के विषय पर स्वतंत्र शब्द–चित्र बनाते हैं। कुछ कवि चित्र में कविता की खोज करते हुए कविता लिखते हैं। चित्र और कविता के बीच एकता का आधार बिम्ब है।... चित्र पर कविता लिखने का एक तरीका यह भी है कि कवि चित्र के बिंबों को शब्द–चित्रों में व्यक्त करे।"[10] यही शब्द–चित्र हिंदी साहित्य में कई मूर्धन्य कवियों के काव्य में रेखांकन पाते हैं।

ध्यातव्य है कि दांते की 'डिवाइन कॉमेडी' पर सौ जलतरंगीय चित्रों की शृंखला बनानेवाले प्रसिद्ध अंग्रेज चित्रकार, कवि विलियम ब्लैक की भांति हिंदी साहित्य में महादेवी वर्मा (संभवतः पहली) ऐसी कलाकार ठहरती हैं जिन्होंने काव्य और चित्रकारी को सहयोगी मानते हुए अद्भुत साम्य दृष्टिगत किया है। स्वयं को सत्य अर्थ में कोई चित्रकार नहीं मानने वाली वर्मा जी ने हालाँकि चित्रकला की कोई विधिवत् शिक्षा अर्जित नहीं की थी। वे केवल 'प्रयाग महिला विद्यापीठ' में चित्रकला विभाग (1935) की संस्थापक रही थीं और वहाँ कला शिक्षक शंभूनाथ मिश्र के प्रशिक्षण–निर्देशन में उन्होंने 'वाश शैली' के कुछ प्रयोग सीखे थे पर बावजूद इसके, कला–साधना के सैद्धांतिक और व्यावहारिक दोनों धरातलों पर उनका चिंतन गहन लक्षित होता है जिसका प्रथम पद 1936 में आए 'सांध्यगीत' की 45 कविताओं के साथ अंकित 85

रेखांकन बनते हैं तो सशक्त प्रमाण 1942 में प्रकाशित 51 चित्रों के साथ 51 कविताओं का संधिस्थल चित्रमय काव्य–संग्रह 'दीपशिखा' दर्ज होता है। इसकी भूमिका में महादेवी वर्मा लिखती हैं, 'मेरे गीत और चित्र दोनों के मूल में एक ही भाव रहना जितना अनिवार्य है, उसकी अभिव्यक्तियों में अंतर उतना ही स्वाभाविक। गीत में विविध रूप, रंग, भाव, ध्वनि सब एकत्र हैं पर चित्र में इन सबके लिए स्थान नहीं रहता। उनमें प्रायः रंगों की विविधता और रेखाओं के बाहुल्य में भी एक ही भाव अंकित हो पाता है, इसी से मेरा चित्र गीत को एक मूर्त पीठिका मात्र दे सकता है। उसकी संपूर्णता बाँध लेने की क्षमता नहीं रखता।... रंगों की दृष्टि से मैं बहुत थोड़े और विशेषतः नीले, सफेद से ही काम चला लेती हूँ। जहाँ कई को मिलना आवश्यक होता है वहाँ ऐसे मिलना अच्छा लगता है कि किसी की स्वतंत्र सत्ता न रह सके।'[11]

एक दिवस के चार पहरों पर रचित चार अलग–अलग कविता–संग्रहों, आकर्षक और पीड़ा की अनुभूति पर केंद्रित 'नीहार'(1930), दार्शनिक सिद्धांतों से समृद्ध 'रश्मि'(1932), विरह व्यथा की अंतर्दशाओं से परिपूर्ण 'नीरजा'(1934) और आत्मतोष की अनुभूति पर आधारित 'सांध्यगीत'(1936) का एकत्र संकलन 'यामा' (1939) की 185 कविताओं के आसपास महादेवी वर्मा के बनाए लगभग 104 रेखांकन शामिल होते हैं। (बहुत से चित्रों की आवृत्ति–पुनरावृत्ति भी होती है जिनकी गणना से संख्या बढ़ जाती है।) इनमें से 84 वही हैं जिन्हें 'सांध्यगीत' में शामिल किया गया था। साथ ही नौ रंगीन चित्र भी यहाँ हैं जो काव्य–पंक्तियों के साथ इस प्रकार हैं–

- **'नीहार' से**–

चित्र–तूफान (उद्वेलित नीलाभ सागर, मेघमय अंबर, झंझा, पतवार, नाविक) काव्य पंक्ति–गरजता सागर बारंबार/कौन पहुँचा देता उसे पार।

- **'रश्मि' से**

चित्र–अरुणा (आलोक वसना मुक्त केशी उषा सुंदरी, बालारुण, अधो भाग में तिमिर का पलायन और छिटपुट हतप्रभ नक्षत्र)

काव्य पंक्ति–चुभते ही तेरा अरुण बाण/बहते कण–कण से फूट–फूट।

- **'रश्मि' से**

चित्र–यात्रा का अंत (शिथिल चरण, पलितवय पथिक, गठरी, लाठी, विस्तृत पथ रेखा, गंतव्य द्वार, अभिनंदन तत्पर 'विराट' की मानुष आकृति, ज्योतिर्मय दीपक)

कविता पंक्ति–इस अनंत पथ में संसृति की साँसें करतीं लास/जाती हैं असीम होने मिटकर असीम के पास।

- **'नीरजा' से**

चित्र–निशीथिनी (नीलाभ गगन, तारों के गजरे, अर्ध चंद्रमा, उजले–काले बादल, कमल–कोष आदि)

कविता पंक्ति—तारकमय नव वेणी बंधन / शीश फूल कर शशि की नूतन / रश्मि वलय सित अवगुण्ठन।

- **'नीरजा' से**

चित्र—दीपक (दीपक, तिमिर की पृष्ठभूमि, प्रसाधन पुष्प)

कविता पंक्ति—मधुर—मधुर मेरे दीपक जल / युग—युग प्रतिदिन, प्रतिक्षण, प्रतिपल।

- **'नीरजा' से**

चित्र—वर्षा (वर्षा—सुंदरी—सद्यः स्नात नारी वेष, कजरारे बादल, धूमांकित धूमदान, श्यामल गगन, विरल वक—पंक्ति)

कविता पंक्ति—रूपसि तेरा घन केश—पाश / श्यामल श्यामल कोमल कोमल।

- **'सांध्यगीत' से**

चित्र—संध्या (नारी वेश, धुंधला और अरुण सांध्य गगन)

कविता पंक्ति—प्रिय सांध्य—गगन मेरा जीवन

- **'सांध्यगीत' से**

चित्र—मिलन (नर—नारी, अंजलि पुष्प, आकाश, बादल, विहग—युग्म और सितारे)

कविता पंक्ति—छोड़ किस पाताल का पुर / राग से बेसुध चपल सपने सजीले नयन में भर / रात नभ के फूल लाई।

- **'सांध्यगीत' से**

चित्र—मृदुमहान (नील गगन में उठते हुए तुषार—धवल, गिरि—श्रृंग, उन्मुक्त दिशा, विचारमग्न आराधिका)

कविता पंक्ति—मेरे जीवन का आज मूक / तेरी छाया से हो मिलाप।[12]

इसके अतिरिक्त 'पथ के साथी' पुस्तक में विभिन्न साहित्यकारों, 'मेरा परिवार' में मानवेतर प्राणियों की आकृतियों को उभारा गया है। 'स्मृति की रेखाएँ' में कुली, ठकुरी बाबा, भक्तिन आदि के कुल सात रेखा—चित्र हैं तथा 'बंग दर्शन' के कुल ग्यारह चित्रों में दो 'अन्नपूर्णा' और 'माँ की चिंता' नामक तेल चित्र महादेवी वर्मा के द्वारा बनाये गए हैं। (अन्य चित्र शंभुनाथ मिश्र, मीना अनद, सरला सिन्हा, बनलता बैनर्जी द्वारा रचित हैं।) संभवत 'दीपशिखा' की रूपरेखा 'यामा' के समय से ही आकारित हो गई थी। 'यामा' के चित्र जहाँ मोटे तौर पर बाह्य प्रकृति से संबंध रखते हैं, वहीं 'दीपशिखा' में आंतरिक हलचलों का लेखा—जोखा है। 'दीपशिखा' में कविता और चित्र एक ही भाव पर केंद्रित हैं जबकि 'यामा' में इसका शत—प्रतिशत ध्यान नहीं रखा गया है। अपनी संपूर्ण चित्रकला में 'बांग्ला चित्रकारों की कला की अतिकाल्पनिकता, मृष्णता, रोमानीपन, अनुपातहीन बड़े नेत्र, स्वप्निलता, चित्रों में आत्मनिवेदन का भाव, स्मृतियों का धुंधलापन, अवयवों की पेशलता, पैरों में गति, आँखों में करुणा, चित्र पर एक अपार्थिव लोक की छाया, वाश टेक्नीक आदि को महादेवी ने ग्रहण किया है।'[13]

कुमार विमल के मतानुसार, 'महादेवी के प्रकृति–चित्रों में कहीं–कहीं वान गॉग के प्रकृति–चित्रण का उदात्त एवं भास्वर रूप मिलता है। इस विकट, किंतु महार्घ साम्य को महादेवी के 'मृदु महान' एवं वान गॉग के 'द साइप्रसेस' शीर्षक चित्रों में देख सकते हैं।'[14] किंतु इतना होने पर भी महादेवी वर्मा के चित्रकार रूप का निजत्व कायम रहा है।

महादेवी के बाद यही कला अज्ञेय जी ने 'सुनहले शैवाल' में एक भिन्न ढंग से अपनाई है, वहाँ कवि की आंख से खींचे गए फोटो हैं– ये कविताओं के अर्थ संदर्भ खोलते हैं। इसी कला का एक विस्तार डॉ. जगदीश गुप्त के काव्य–संग्रह 'युग्म' में मिलता है। कवि जगदीश गुप्त का यह रेखांकन मनोभावों को खोलता–व्यक्त करता है। ऐसा ही एक चित्र–काव्य प्रयोग इलाचंद्र जोशी के संपादन में निकली पत्रिका 'संगम' के निराला विशेषांक में भी देखने को मिलता है। यह लालित्य–बोधीय संसार मानव–मन की भाव तरंगों को महसूस करने का एक विशिष्ट–रूप पक्ष है।[15] जोकि शमशेर बहादुर सिंह की चर्चा के बिना अधूरा है।

निःसंदेह महादेवी वर्मा की भाँति शमशेर बहादुर सिंह ने कविता और चित्र को एक ही पन्ने पर समानांतर अभिव्यक्ति नहीं दी किंतु उनकी प्रत्येक कविता में चित्र और प्रत्येक चित्र में एक कविता को पढ़ा जा सकता है। उनका स्पष्ट स्वीकार रहा कि 'मैंने अपनी चित्रकारी के शौक को कविता में काफी पूरा किया है... मैंने चीजों को अक्सर पेंटिंग की शक्ल में ग्रहण किया है भले ही उनका कोई बाह्य रूपाकार न हो, रंग न हों पर रंगों के प्रभाव उनमें हैं– रंगों के भावात्मक रूप। मेरी कविताओं में जो इंप्रेशनिज़्म की बात कही गई है, वह यही है।'[16] और संभवतः इसका कारण जीवन के आरंभ में चित्रकला की बाकायदा शिक्षा लेना बना। पर इतना निश्चित है कि वे सदैव एक साथ कवि और चित्रकार दोनों रहे। रमन सिंह लिखते हैं, 'एक चित्र में कमरे के बंद कपाट के अंदर लकड़ी की मेज पर चाय की केतली, एक बड़ा–सा कप, ग्लास और चीनी का एक छोटा–सा डिब्बा है, किनारे किसी चीज पर रखा एक अधखुला बक्सा दिख रहा है, दूसरे चित्र में वही कमरा है, वही मेज, वही कुर्सी लेकिन अब मेज से चीजें हटा ली गई हैं और कुर्सी मेज के पीछे से हटाकर आगे कर ली गई है और जिसकी पीठ पर अब तौलिया पड़ा है। दृश्य की संरचना अपेक्षाकृत वाइड ऐंगेल से होने के कारण पहले जहाँ एक ही बंद कपाट दिख रहा था, अब दोनों दिख रहे हैं और इसलिए अब किनारे बिस्तर का थोड़ा सा किनारा भी दिखने लगा है। दोनों ही चित्रों में एक सूनापन है मानो किसी के आने की उत्कट प्रतीक्षा और तदनुसार बेचैनी है। यह दोनों ही चित्र सन् उनचास के हैं और इस वर्ष की उनकी लिखी कविता 'आओ!' की कुछ पंक्तियाँ हैः 'तुम आओ, गर आना है/मेरे दीदों की वीरानी बसाओ/शे'र में ही तुमको समाना है अगर/जिंदगी में आओ, मुजस्सिस/[17] मानो

इन पंक्तियों की ही दृश्यात्मक प्रस्तुति हों ये चित्र। इतना ही नहीं पिकासो के चित्रों की एलबम देखने के बाद शमशेर ने रचा, 'जीवन की तुला में/प्राणों का संयमन/सहजतम एक अद्‌भुत व्यापार/सरलता का हमारी ही तरह/कैसा दुरूहतम स्पष्टतम'[18]

इसी तरह हिम्मत शाह के चित्रों के लिए श्रीकांत वर्मा ने 'मत्स्य मेघ 'कविता लिखी है। चित्रकार जगदीश स्वामीनाथ की चित्रकारी अशोक वाजपेयी के लिए प्रेरणा बनी है और उन्होंने 'अचल चिड़िया उड़ती चट्‌टान', 'जिस पर आकाश नहीं टिकता' जैसी कविताएँ रची हैं। चित्रकला और काव्य के अंतःसंबंध की सामान्य पीठिका के उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि शब्द (कलम) और चित्र (तूलिका) समानधर्मी हैं। दोनों का धर्म सौंदर्यसृष्टि द्वारा उदात्त भावों की संपृक्ति रहा है तथा हिंदी काव्य के प्रत्येक कालखंड में विशिष्ट कवियों और चित्रकार के मध्य सहसंबंध प्रभूत मात्रा में उपस्थित है जिनका सम्यक् सौंदर्यशास्त्रीय अध्ययन गिनती के उदाहरण के अतिरिक्त अभी तक हिंदी आलोचना में हाशिए पर है।

संदर्भ–

1. डॉ. रंजीत शाह, आधुनिक भारतीय चित्रकला की रचनात्मक अनन्यता, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2022, पृ.12
2. कुमार विमल, सौंदर्यशास्त्र के तत्व, राजकमल प्रकाशन, द्वितीय संस्करण 1981, पृ 40
3. अशोक वाजपेयी, कविता का अशोक–पर्व, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2015, पृ.74
4. नॉर्मन ई लैंड, द व्यूअर एज़ पोएट: द रेनेसां पीरियड ऑफ आर्ट, द पेंसिलवानिया स्टेट यूनिवर्सिटी प्रेस, 1994, पृ.3–7
5. कुमार विमल, वही, पृ.54
6. https://hindikahani.hindi-kavita.com/Kavi-Aur-Chitere-Ki-Daandamedi-Balkrishna-Bhatt.php
7. द कलेक्शन ऑफ पोयम्स ऑफ फ्रैंक ऑ'हारा, संपा. डोनाल्ड एलेन, कनोप्फ न्यूयॉर्क, संस्करण 1995, पृ.260–261
8. राममूर्ति त्रिपाठी, अर्धशताब्दी का भारतीय काव्य–चिंतनः विपक्ष और पक्ष, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2001, पृ.310–311
9. संपा. महावीर प्रसाद द्विवेदी, कविता–कलाप, इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग, द्वितीय वृत्ति 1921, पृ.1
10. मैनेजर पांडेय, आलोचना की सामाजिकता, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2008, पृ.224

11. महादेवी वर्मा, दीपशिखा, भारती भंडार लीडर प्रेस, इलाहाबाद, चतुर्थ संस्करण, वि.सं. 2011, पृ.61
12. दूधनाथ सिंह, महादेवी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2009, पृ. 122, 123 एवं डॉ. कुमार विकल, छायावाद का सौंदर्यशास्त्रीय अध्ययन, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1970, पृ.59
13. प्रोफेसर पुष्पारानी, महादेवी वर्मा की साहित्य–साधना, के.के. पब्लिकेशन, दिल्ली, संस्करण 2014, पृ.68
14. कुमार विमल, छायावाद का सौंदर्यशास्त्रीय अध्ययन, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1970, पृ.61
15. कृष्णदत्त पालीवाल, नवजागरणः देसी स्वच्छंदतावाद और नयी काव्यधारा, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2018, पृ.101
16. राजेश जोशी, एक कवि की नोटबुक, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2004, पृ.20
17. संपा. अखिलेश, तद्भव (आधुनिक रचनाशीलता पर केंद्रित विशिष्ट संचयन–विशेष प्रस्तुति–चित्रकार शमशेर, लेखक– रमण सिन्हा), जनवरी 2011, पृ.19–20
18. शमशेर बहादुर सिंह, इतने पास अपने, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1980, पृ.23

❑❑❑

किसी हत्यारे को कभी मत करो माफ़
चाहे हो वह तुम्हारा यार,
धर्म का ठेकेदार,
चाहे लोकतंत्र का
स्वनामधन्य पहरेदार।

– सर्वेश्वरदयाल सक्सेना

नागालैंड में हिंदी का विकास और चुनौतियाँ

छेवांगलुंग

शोधार्थी, नागालैंड विश्वविद्यालय

डॉ. मुन्नी चौधरी

एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, नागालैंड विश्वविद्यालय

नागालैंड पूर्वोत्तर भारत का एक महत्त्पूर्ण राज्य है जहाँ की संस्कृति और भाषाएँ वैविध्यमयी है। केवल इसी एक राज्य में सोलह बड़ी भाषाएँ पाई जाती हैं। इस राज्य में विभिन्न जनजातियाँ निवास करती हैं जिनकी अपनी–अपनी मातृभाषाएँ हैं। उल्लेखनीय है कि यहाँ सोलह बड़ी जनजातियाँ निवास करती हैं। सोलह मुख्य भाषाओं के अतिरिक्त यहाँ की संपर्क भाषा नागामी है लेकिन अंग्रेजी यहाँ की राजकीय भाषा है। बावजूद इन सबके, हिंदी भाषा ने इस राज्य में धीरे–धीरे अपनी जगह बना ली है। आज यह बोलचाल की भाषा के रूप में प्रयुक्त होने लगी है। हिंदी भाषा का विकास नागालैंड में न केवल सांस्कृतिक आदान–प्रदान का माध्यम है बल्कि यह भारत के अन्य हिस्सों के साथ नागालैंड को जोड़ने में भी सहायक सिद्ध हुआ है। इसके विकास के पीछे सरकारी प्रयास, शैक्षणिक संस्थानों की भूमिका और सामाजिक–सांस्कृतिक आदान–प्रदान का प्रमुख योगदान रहा है।

इस लेख में हम नागालैंड में हिंदी भाषा के विकास की प्रक्रिया, इसके महत्त्व और इस दिशा में सामने आने वाली चुनौतियों का विश्लेषण करेंगे। साथ ही हम यह भी समझने का प्रयास करेंगे कि कैसे हिंदी भाषा नागालैंड के लोगों के बीच आपसी संचार और राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देने में सहायक सिद्ध हो रही है। हम नागालैंड में हिंदी के विकास की तमाम पहलुओं की भी चर्चा करेंगे। इसके अलावा, हम उन चुनौतियों और अवसरों का भी विश्लेषण करेंगे जो नागालैंड में हिंदी भाषा के विकास के मार्ग में सामने आ रहे हैं।

नागालैंड का भाषाई परिदृश्य

नागा समुदाय तथा कुकी चाइना–तिब्बती–बर्मी समूह के हैं।[1] नागालैंड का भाषाई परिदृश्य बहुत ही विविध और समृद्ध है। नागालैंड में कई आदिवासी समुदाय रहते हैं और हर समुदाय की अपनी विशिष्ट भाषा है। राज्य में कुल सोलह प्रमुख जनजातियाँ हैं और सभी जनजातियों की अपनी–अपनी अलग भाषा है। ये प्रमुख जनजातियाँ हैं– चाकेसांग, अंगामी, कछारी, जेलियांग, आओ, संगतम, सुमी, यिमचुंगर,

चांग, लोथा, फोम, पोचुरी, रेंगमा, कोन्यक, कुकी व ख्यमनुंगन[2]। यहाँ की कुछ प्रमुख भाषाएँ इस प्रकार हैं– आओ, अंगामी, सुमी, लोथा, जेलियांग, चाखासांग, कोन्याक आदि। अलबत्ता, नागा भाषाओं की कोई अपनी लिपि नहीं है। लिपिहीनता नागालैंड के लोक–साहित्य के संरक्षण–संकलन–प्रकाशन में सबसे बड़ी बाधा है।[3] इसके अलावा, नागालैंड में हिंदी और अंग्रेजी भी व्यापक रूप से बोली जाती है। अंग्रेजी राज्य की आधिकारिक भाषा है और शिक्षा तथा प्रशासन में इसका प्रमुखता से उपयोग किया जाता है। हिंदी भी एक संपर्क भाषा के रूप में उपयोग की जाती है, विशेषकर गैर–आदिवासी समुदायों के बीच। यहाँ शिक्षा के क्षेत्र में त्रिभाषा सूत्र लागू है जिसके अंतर्गत अध्ययन का क्रम इस प्रकार है– अंग्रेजी पहली भाषा के रूप में; आओ, अंगामी, सेमा, लोथा, कोन्यक, संगतम, रेंगमा, फोम, चांग आदि स्थानीय भाषाएँ द्वितीय भाषा के रूप में और हिंदी तृतीय भाषा के रूप में।[4] नागालैंड की भाषाई विविधता उसकी सांस्कृतिक धरोहर का महत्त्वपूर्ण हिस्सा है और इसे संरक्षित करने के लिए कई सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं।

हिंदी शिक्षा का इतिहास और वर्तमान स्थिति

इतिहास– नागालैंड में शिक्षा की शुरुआत ब्रिटिश शासनकाल में हुई थी। 19वीं सदी के अंत और 20वीं सदी की शुरुआत में भारत में राष्ट्रीयता का आंदोलन जोर पकड़ रहा था। इसी दौरान अंग्रेजी को राजभाषा के रूप में प्रोत्साहित किया गया। पूर्वोत्तर भारत के राज्यों में हिंदी शिक्षा का प्रसार किया गया ताकि उन्हें राष्ट्र की मुख्य धारा से जोड़ा जा सके लेकिन नागालैंड में स्वतंत्रता के बाद ही हिंदी शिक्षा को बढ़ावा मिला। 1950 और 1960 के दशकों में सरकारी और गैर–सरकारी संस्थानों ने हिंदी को स्कूली पाठ्यक्रम में शामिल करना शुरू किया। उसी दौर से नागालैंड के विभिन्न स्कूलों और कॉलेजों में हिंदी पढ़ाई जाने लगी।

वर्तमान स्थिति– वर्तमान में नागालैंड में हिंदी शिक्षा की स्थिति में काफी सुधार हुआ है। कई स्कूलों और कॉलेजों में हिंदी एक महत्त्वपूर्ण विषय के रूप में पढ़ाई जाती है। नागालैंड के नागरिक भी हिंदी को एक संपर्क भाषा के रूप में अपनाने लगे हैं, खासकर उन क्षेत्रों में जहाँ विभिन्न जनजातियों के लोग रहते हैं। मिश्रित समुदायों और गैर नागाओं का इलाका है– दीमापुर, कोहिमा और मोकोकचुंग। इन्हीं इलाकों में हिंदी फल–फूल रही है।

राज्य सरकार और केंद्र सरकार द्वारा कई योजनाएँ और कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं जिनके तहत हिंदी शिक्षा को प्रोत्साहित किया जा रहा है। नागालैंड विश्वविद्यालय में भी हिंदी विभाग है जहाँ उच्च शिक्षा के लिए हिंदी पढ़ाई जाती है। यहाँ हिंदी में पीजी डिप्लोमा, पीजी और पीएच. डी. कराई जाती है। हिंदी के विकास और प्रचार के लिए विश्वविद्यालय साल भर कोई–न–कोई कार्यक्रम संचालित करता रहता है। इस तरह हिंदी के प्रति लोगों में जागरूकता बढ़ रही है।

विभिन्न सांस्कृतिक और साहित्यिक कार्यक्रमों के माध्यम से भी हिंदी भाषा और साहित्य का प्रचार–प्रसार किया जा रहा है। हिंदी दिवस और अन्य उत्सवों के दौरान हिंदी के महत्त्व और इसके उपयोग पर जोर दिया जाता है। हालाँकि, नागालैंड में अंग्रेजी और स्थानीय भाषाओं का प्रभाव अभी भी प्रबल है, लेकिन हिंदी की स्वीकार्यता और उपयोगिता धीरे–धीरे बढ़ रही है। नागालैंड के लोग हिंदी को राष्ट्रीय एकता और संचार के माध्यम के रूप में देख रहे हैं।

सांस्कृतिक प्रभाव और हिंदी का प्रसार

नागालैंड अपनी समृद्ध सांस्कृतिक धरोहर और विविध जनजातीय परंपराओं के लिए प्रसिद्ध है। असंख्य त्योहारों के कारण नागालैंड को त्योहारों की भूमि कहा जाता है फिर भी कुछ त्योहार बहुत महत्त्वपूर्ण हैं, जैसे– सेकरेन्यी, मोआत्सु, तोक्कू, एमोंग व तुलनी।[5] यहाँ हर साल पर्यटन विभाग द्वारा दिसंबर में हार्नबिल उत्सव का आयोजन किया जाता है। दरअसल यह त्योहारों का त्योहार है। इस उत्सव में नागा जीवन और संस्कृति की झलक प्राप्त होती है। यहाँ एक सप्ताह तक सांस्कृतिक कार्यक्रम, देशी खेल, शिल्प, संगीत कार्यक्रम, फैशन, साइकिल चालन, मोटर स्पोर्टिंग, बच्चों के कार्निवाल, पुष्प प्रदर्शन, भोजन व पेय, फिल्म समारोह और अन्य अनेक गतिविधियों एवं प्रतियोगिताओं का आयोजन व प्रदर्शन किया जाता है। हार्नबिल त्योहार का उद्देश्य नागालैंड की विरासत का संरक्षण, नवीकरण और संवर्धन करना है[6]। नागालैंड की प्रमुख जनजातियाँ जैसे अंगामी, आओ, सुमी आदि अपनी विशेष सांस्कृतिक पहचान और रीति–रिवाजों के साथ जानी जाती हैं। इन जनजातियों की भाषाएँ, संगीत, नृत्य, त्योहार और हस्तशिल्प उनकी सांस्कृतिक पहचान को संजोए हुए हैं। इन जनजातियों द्वारा आयोजित किए जाने वाले कार्यक्रमों में देश–विदेश के लाखों पर्यटक आते हैं और यहाँ की सांस्कृतिक पहचान को अपने साथ ले जाते हैं और उसका आनंद उठाते हैं। इस तरह नागालैंड से बाहर देश–विदेश में नागालैंड के प्रति जानकारी और रुचि बढ़ रही है। नागा लोग बड़े दिल और खुले विचारों वाले हैं। ये दुनिया को चढ़–बढ़कर अपनी सांस्कृतिक विरासत को प्रस्तुत करते हैं, दिखाते हैं और उनके साथ दोस्ताना व्यवहार करते हैं। यही कारण है कि यहाँ आनेवाले पर्यटक नागालैंड को यूरोप जैसा समझते हैं। यहाँ जाति, धर्म, भाषा, रंग, जेंडर आदि को लेकर कोई दकियानूसीपन नहीं मिलता। ये 'जिओ और जीने दो' के मानदंडों पर चलते हैं तथा लोगों से इसी की अपेक्षा भी करते हैं। यही कारण है कि नागालैंड आज पूर्वोत्तर भारत के सर्वाधिक सुरक्षित राज्यों में से एक माना जाता है।

सांस्कृतिक प्रभाव– नागालैंड में सोलह से अधिक मान्यताप्राप्त जनजातियाँ अपनी भाषा, पारंपरिक पोशाक, आभूषण और शिल्पकला के लिए प्रसिद्ध हैं। इन पहलुओं में सभी एक–दूसरे से अलग हैं। यही विविधता बाहरी लोगों को यहाँ खींच

लाती है। अलबत्ता इनकी आपसी विविधता के बावजूद परस्पर एकता देखते ही बनती है। इनकी एकता और विविधता को देखकर ऐसा लगता है जैसे एक छाते के नीचे पूरा विश्व समाया हुआ है। यहाँ स्त्री शिक्षा का फैलाव इस कदर हुआ है कि डॉ. अंबेडकर की विश्वदृष्टि यहीं सफल होती दिखती है। उन्होंने समाज के विकास का पैमाना स्त्री को माना था। यहाँ सचमुच स्त्रियाँ पुरुषों से बहुत आगे निकल गई हैं। नागालैंड विश्वविद्यालय में पढ़ने वाले छात्र–छात्राओं का औसत 36:64[7] है। इससे नागा समाज के विकास की स्थिति बहुत साफ हो जाती है।

नागालैंड अपने त्योहारों, खान–पान व पहनावों के लिए देशभर में प्रसिद्ध है। प्रकृति ने भी इन्हें खूब दिया है। लेकिन शहरीकरण के प्रभाववश ये प्रकृति के विनाश में कोई कमी नहीं रखे हुए हैं। प्राकृतिक संसाधनों का दोहन और विनाश नागालैंड की प्रकृति–प्रदत्त सौंदर्य को नष्ट किए जा रहा है जो चिंता का विषय है।

नागालैंड के पारंपरिक संगीत और नृत्य में प्रकृति, जीवन और युद्ध से संबंधित कथाएँ मिलती हैं। यहाँ 'मोरंग' और 'अंगामी' नृत्य विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। यहाँ का कोई भी कार्यक्रम बिना गीत–संगीत व नाच के संपन्न नहीं होता।

हिंदी का प्रसार

नागालैंड में हिंदी का प्रचार–प्रसार देश की आजादी के बाद हुआ है। यहाँ हिंदी को पहुँचने के कई स्रोत हैं। इसको पहुँचाने वालों में काम–काज की तलाश में आए बिहारी मजदूरों, व्यावसायियों, सरकारी सेवकों, आर्मी के जवानों, शिक्षकों, केंद्रीय सरकारी कर्मचारियों तथा स्कूलों में आठवीं कक्षा तक हिंदी को अनिवार्य करने की भूमिका सर्वोपरि है।[8] नागालैंड में हिंदी भाषा का प्रसार स्कूलों–कॉलेजों में शिक्षा के माध्यम से हुआ है। सरकार ने हिंदी को अनिवार्य भाषा के रूप में लागू किया है जिससे युवा पीढ़ी हिंदी भाषा से परिचित हो रही है। संचार माध्यमों जैसे टेलीविजन, रेडियो व फिल्मों के माध्यम से भी हिंदी का प्रसार तेजी से हुआ है। हिंदी फिल्मों और टीवी धारावाहिकों ने नागालैंड के लोगों में हिंदी भाषा की समझ और रुचि को बढ़ाया है। युवाओं के बीच सोशल मीडिया–माध्यमों ने तो क्रांति ही कर दी है। इतना ही नहीं, इसके लिए इलेक्ट्रॉनिक सोशल मीडिया को भी श्रेय दिया जाना चाहिए।[9] यहाँ हर व्यक्ति के पास एक–न–एक मोबाइल हैंडसेट अवश्य है जो चौबीसों घंटे उन्हें पूरी दुनिया से जोड़े रखता है। हिंदी भाषा सभी रुचिकर चीजों को प्रसारित करने में अग्रणी भूमिका निभा रही है।

नागालैंड में हिंदी भाषा का प्रभाव सांस्कृतिक आदान–प्रदान के माध्यम से भी बढ़ा है। राज्य में होने वाले विभिन्न सांस्कृतिक कार्यक्रमों में हिंदी का प्रयोग देखा जा सकता है। यहाँ के लोगों का हिंदीभाषी राज्यों के लोगों के साथ सामाजिक और व्यापारिक संपर्क भी हिंदी के प्रसार में सहायक रहा है। इन सभी कारकों के समन्वित

प्रभाव से नागालैंड में हिंदी का प्रसार हुआ है, जो धीरे–धीरे वहाँ के जनजीवन का हिस्सा बनती जा रही है।

हिंदी के विकास में चुनौतियाँ

नागालैंड में हिंदी के विकास में कई चुनौतियाँ हैं जो इस क्षेत्र की सामाजिक, सांस्कृतिक और भौगोलिक विविधताओं से उत्पन्न होती हैं। इन चुनौतियों को विस्तृत रूप से निम्नलिखित बिंदुओं में समझा जा सकता है–

भाषाई विविधता– नागालैंड में सभी जनजातियों की अपनी–अपनी भाषाएँ और बोलियाँ हैं। इनमें से प्रत्येक जनजाति की अपनी सांस्कृतिक पहचान और भाषाई परंपराएँ हैं। इस प्रकार, हिंदी को एक अतिरिक्त भाषा के रूप में स्वीकार करना और उसे प्राथमिकता देना एक चुनौतीपूर्ण कार्य है।

सांस्कृतिक पहचान– स्थानीय जनजातियाँ अपनी सांस्कृतिक और भाषाई पहचान को बनाए रखने के प्रति अत्यधिक संवेदनशील हैं। हिंदी, जो कि एक बाहरी भाषा मानी जाती है, को अपनाने से इन जनजातियों को अपनी पहचान खोने का डर है। इस कारण हिंदी के प्रचार–प्रसार में कठिनाई आती है।

शिक्षा प्रणाली– नागालैंड की शिक्षा प्रणाली में भी हिंदी को व्यापक स्तर पर नहीं सिखाया जाता। अधिकांश स्कूलों में प्राथमिक शिक्षा स्थानीय भाषाओं में दी जाती है और उच्चतर शिक्षा के स्तर पर भी हिंदी का प्रचलन कम है। इसके कारण छात्रों में हिंदी भाषा की समझ और प्रवाह कम रहता है।

सामाजिक और राजनीतिक मुद्दे– नागालैंड में सामाजिक और राजनीतिक दृष्टिकोण से भी हिंदी के प्रचार–प्रसार में अनेक चुनौतियाँ हैं। नागालैंड का भारत की मुख्यधारा के साथ संबंध जटिल रहा है। इस प्रकार हिंदी को यहाँ राष्ट्रीय भाषा के रूप में प्रचारित करना एक संवेदनशील मुद्दा बन जाता है।

बुनियादी ढाँचे की कमी– हिंदी के विकास के लिए आवश्यक बुनियादी ढाँचे की भी कमी है। हिंदी माध्यम के शिक्षकों की कमी, उपयुक्त पाठ्यपुस्तकों की अनुपलब्धता और शिक्षण संसाधनों की कमी हिंदी शिक्षा को कठिन बनाती है।

आर्थिक कारक– आर्थिक दृष्टि से भी नागालैंड में हिंदी के विकास में बाधाएँ हैं। राज्य का आर्थिक विकास अपेक्षाकृत धीमा है और शिक्षा के क्षेत्र में निवेश की कमी है। इस कारण हिंदी को बढ़ावा देने के लिए आवश्यक संसाधनों की व्यवस्था करना कठिन हो जाता है।

प्रौद्योगिकी और संचार का अभाव– नागालैंड भारत के सुदूर पूर्व में स्थित है जहाँ संचार और प्रौद्योगिकी की पहुँच सीमित है। इस कारण आधुनिक शिक्षण विधियों जैसे ऑनलाइन कक्षाओं और डिजिटल सामग्री के माध्यम से हिंदी के प्रसार में बाधा आती है।

निष्कर्ष–

नागालैंड में हिंदी भाषा का विकास एक जटिल और धीमी प्रक्रिया रही है जो अनेक सामाजिक, सांस्कृतिक और शैक्षिक पहलुओं से प्रभावित हुई है। लेकिन देखा जाए तो हिंदी को एक संपर्क भाषा के रूप में स्वीकार किया गया है और शैक्षणिक स्तर पर इसे बढ़ावा दिया जा रहा है। फिर भी कई चुनौतियाँ बनी हुई हैं। इनमें से प्रमुख हैं– भाषा की विविधता, सांस्कृतिक अस्मिता और संसाधनों की कमी।

हिंदी के प्रचार–प्रसार में स्थानीय भाषाओं और संस्कृतियों का सम्मान करते हुए समन्वय आवश्यक है। शैक्षणिक संस्थानों में हिंदी शिक्षकों की गुणवत्ता और उनकी प्रशिक्षण व्यवस्था में सुधार किया जाना चाहिए। साथ ही, आधुनिक तकनीक और मीडिया का उपयोग करके हिंदी शिक्षण को और अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है।

अंत में, नागालैंड में हिंदी का भविष्य तभी उज्ज्वल हो सकता है जब इसे स्थानीय भाषाओं और संस्कृतियों के साथ संतुलित और समन्वित रूप में प्रस्तुत किया जाए। इस दिशा में सामुदायिक समर्थन, सरकारी प्रयास और शिक्षाविदों की भूमिका महत्त्वपूर्ण साबित होगी।

संदर्भ सूची–

1. गुप्ता, रमणिका, आदिवासी लोक–1, शिल्पायन, दिल्ली, 2012, पेज–10
2. परमार, वीरेंद्र, पूर्वोत्तर भारत के सांस्कृतिक आयाम, मित्तल पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2021, पेज–105
3. परमार, वीरेंद्र, नागालैंड–लोकजीवन और संस्कृति, मित्तल पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2021, पेज–173
4. परमार, वीरेंद्र, पूर्वोत्तर भारत के पर्व–त्योहार, मित्तल पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2020, पेज–12
5. परमार, वीरेंद्र, पूर्वोत्तर भारत के सांस्कृतिक आयाम, मित्तल पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2021, पेज–7
6. वही, पेज–8
7. https://www.google.com/search?q=evarage+of+male-female+students+ratio+in+nagaland+university&rlz=1C1CHBF_enlN10831 N1083&oq=Evarage+of+male-female+students+ratio+in+Na&gs_ICrp=EgZjaHJvbWUqCQaCECEYChigATIGCAAQRRg5MgkIARAhGAoYoAEyCQgCECEYCHigATIoCAMQIRqKGKABMgYIBBAhGBUyBwgFECEYjwlyBwgGECEYjwLSAQkzMDqwMGowajeoAgCwAghA&sourceid=chrome&ie=UTF-8

❑❑❑

लाइहराओबा और थाबल चोंबा: मणिपुरी संस्कृति के अनूठे पर्वों की सामाजिक, सांस्कृतिक व धार्मिक भूमिका

चांदम इङो सिंह

अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान विशेषज्ञ, संप्रति मणिपुर विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में सहायक आचार्य।

थाबल चोंबा और लाइहराओबा मणिपुरी समाज के महत्त्वपूर्ण और अटूट सांस्कृतिक पर्व हैं। ये पर्व मणिपुर के सांस्कृतिक और धार्मिक जीवन के अभिन्न हिस्से हैं जो प्रकृति और समाज के बीच संतुलन को दर्शाते हैं। इन पर्वों में मणिपुरी समाज की परंपराओं, रीति–रिवाजों और जीवनशैली परिलक्षित होती है। प्रस्तुत आलेख में मणिपुरी समाज में थाबल चोंबा और लाइहराओबा का संक्षिप्त परिचय देते हुए उनकी सामाजिक, सांस्कृतिक व धार्मिक भूमिका के बारे में विवेचन किया जाएगा।

लाइहराओबा का संक्षिप्त परिचय

लाइहराओबा कृषि और प्राकृतिक संसाधनों से जुड़े त्योहार के रूप में मनाया जाता है जिसमें देवी–देवताओं की पूजा की जाती है और समुदाय की भागीदारी होती है। यह पर्व केवल एक धार्मिक आयोजन भर नहीं है बल्कि समुदाय को एकजुट करने, पारंपरिक मूल्यों को सहेजने और सामाजिक समरसता बढ़ाने में अहम भूमिका निभाता है।

लाइहराओबा मणिपुर की मैतेई जाति का बहुत ही प्राचीन त्योहार है। मैतेई जाति के लोग इसे बड़े हर्षोल्लास और उत्साह के साथ मनाते हैं। इस त्योहार का प्रारंभ कब हुआ, इस बारे में कोई जानकारी नहीं है। लोककथाओं के अनुसार देवताओं ने अपने वंशजों को इन अनुष्ठान का पालन करने हेतु प्रेरित किया और सबसे पहला 'लाइहराओबा' कौब पर्वत पर आयोजित किया था।

यह त्योहार अस्मृति काल से ही मैतेई जाति के लोग पारंपरिक रूप से आज तक हर वर्ष मनाते आए हैं। वर्ष में एक बार मनाया जाने वाला यह त्योहार मणिपुर राज्य के मैतेई समाज के पुराने इतिहास और संस्कृति को दर्शाता है। इस त्योहार में

 ISSN 0523-1418

शामिल होने के लिए लोगों को एक विशेष प्रकार की पारंपरिक पोशाक पहनना अनिवार्य है। इस त्योहार में पारंपरिक नृत्य और गीत उमङलाई (वनदेवताओं) के सामने अर्पित किए जाते हैं। लाइहरोओबा त्योहार में मैतेई लोग अपने क्षेत्र–विशेष के अनुसार विभिन्न स्थानीय उमङलाई (स्थानीय वनदेवताओं) की प्रार्थना करते हैं। मैतेई लोग अपने स्थानीय विशेष उमङलाई की अपने इलाके के संरक्षक देवता के रूप में आराधना करते हैं। लाइहराओबा का उत्सव विभिन्न स्थानों या बस्तियों में विभिन्न महीनों में मनाया जाता है। सब बस्तियों गाँवों के अपने–अपने अलग–अलग स्थानीय उमङलाई (वनदेवता) होते हैं। इन उमङलाइयों के लिए साल में एक बार उनके मंदिरों में अनुष्ठान के साथ यह त्योहार अवश्य मनाया जाता है।

''लाइहराओबा'' शब्द 'लाई' और' हराओबा' के संयोजन से बना है। 'लाइ' का अर्थ है भगवान या देवता जबकि 'हराओबा' का अर्थ है आनंदित करना या प्रसन्न करना। इस प्रकार हिंदी में इसका शाब्दिक अर्थ 'देवताओं का आमोद–प्रमोद' होता है। लाइहराओबा मणिपुर का बहुत प्रतिष्ठित और पवित्र सामाजिक एवं धार्मिक त्योहार है। मैतेई लोगों का मानना है कि यह पर्व दो हजार वर्ष पूर्व से विद्यमान है। यह मणिपुर की घाटी में रहने वाली मैतेई जाति द्वारा स्थानीय वन देवी–देवताओं जिसे मणिपुरी में उमङलाई कहते हैं, को प्रसन्न करने के लिए आयोजित पूजा और उत्सव का तरीका है। लाइहराओबा उत्सव के दौरान माईबा (पुजारी), माईबी[2], पेना[3] खोंगबा (पेना वादक) और स्थानीय समुदाय विशेष अनुष्ठानों व प्रार्थनाओं के साथ गीत गाते हुए नृत्य प्रस्तुत करते हैं जिससे इस आयोजन की पवित्रता और परंपरा का निर्वहन होता है। इस उत्सव के अनुष्ठानों के आयोजन के लिए कठोर नियमों का पालन अनिवार्य होता है क्योंकि किसी भी प्रकार की चूक को बड़ा अशुभ संकेत माना जाता है। इसलिए इस त्योहार के सभी अनुष्ठान बड़ी संख्या में स्थानीय समुदायों, माईबा, माईबी और पेना खोंगबा द्वारा अत्यंत सावधानीपूर्वक संपन्न किए जाते हैं।

मैतेई जाति के लोग लाइहराओबा उत्सव के माध्यम से अपनी प्राचीन संस्कृति को संजोए रखते हैं। यह उत्सव हर वर्ष मेरा[4] (अक्तूबर) से प्रारंभ होकर इंङा(जून) महीने तक मनाया जाता है। साल में एक बार उमङलाई (स्थानीय देवी–देवता) के लिए लाइहराओबा उत्सव का आयोजन अनिवार्य होता है। यह उत्सव 1, 3, 5, 7, 15 या 30 दिनों तक मनाया जा सकता है। वर्तमान में मोइरंग में यह उत्सव 15 दिनों तक मनाया जाता है जबकि पूर्व में इसे 30 दिनों तक मनाया जाता था। आमतौर पर विभिन्न क्षेत्रों में यह त्योहार 3, 5, 7 या 15 दिनों तक आयोजित किया जाता है। कभी–कभी लाइहराओबा उत्सव को किसी अपरिहार्य कारणवश लंबे समय तक आयोजित करना संभव नहीं होता। ऐसी स्थिति में इसे एक ही दिन में संपन्न किया जाता है जिसे 'कुमचनबा' कहा जाता है।

मैतेई समाज में चार प्रकार के लाइहराओबा प्रचलित हैंः

1. कंलै हराओबा– मुख्य रूप से इंफाल और आसपास की बस्तियों में आयोजित किया जाता है।

2. मोइराङ हराओबा– यह मोइराङ में मनाया जाता है।

3. ककचिङ हराओबा– यह ककचिङ में मनाया जाता है।

4. चकपा हराओबा– इसे अनड्रो, फैयेङ, सेकमाइ, काउत्रुक, खुरखुल, लैमराम और ताइरेनपोकपि में मनाया जाता है।

सभी प्रकार के लाइहराओबा उत्सवों में संपन्न किए जाने वाले अनुष्ठान अधिकांशतः समान होते हैं। केवल कुछ वस्तुओं या भजनों में स्थान–विशेष और आराध्य देवता के आधार पर इनमें अंतर पाया जाता है। उदाहरण के लिए, इकोउबा[5], इकोउरोल[6] और याकाइरोल (जागरणगीत) त्योहार की शुरुआत में गाए जाते हैं जबकि 'मिकोन थागोंबा'[7] समापन के अवसर पर संपन्न किया जाता है। विशेष रूप से, इन भजनों के बोल स्थान–विशेष और आराध्य देवता के अनुसार भिन्न होते हैं।

लाइहराओबा उत्सव के पहले दिन विशेष वनदेवताओं का अनुष्ठान संपन्न किया जाता है। इस अनुष्ठान के अंतर्गत बड़ी संख्या में स्थानीय समुदायों के माईबा, माईबी और पेना खोंगबा नदी या तालाब में जाकर देवताओं की आत्माओं का आह्वान करते हैं और उन्हें मंदिर में प्रतिष्ठित करते हैं। इस प्रक्रिया को 'लाई लौखतपा' अर्थात् उद्घाटन समारोह कहा जाता है। इसके बाद उत्सव के दौरान हर सुबह पेना खोंगबा द्वारा "याकैरोल" (जागरण गीत) गाकर आराध्य देवता को जगाया जाता है। इस प्रकार दिन का धार्मिक अनुष्ठान प्रारंभ होता है।

उत्सव के दूसरे दिन से 'लाईबौचोंबा' अनुष्ठान प्रारंभ होता है। इस अनुष्ठान के दौरान माईबा, माईबी और पेना खोंगबा धरती की रचना–प्रक्रिया से लेकर मानव के आविर्भाव तक की कथा को गीतों के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं। वे जन्म से लेकर मृत्यु तक के जीवन के विभिन्न चरणों और सभी संस्कारों का वर्णन गीत और नृत्य के माध्यम से करते हैं जिसमें मानव जीवन की संपूर्ण यात्रा को दर्शाया जाता है।

लाइहराओबा उत्सव में गाए जाने वाले ऐसे गीतों को ''लाइहराओबा इशेई'' कहा जाता है जो प्रसिद्ध लोकगीत होते हैं। इन गीतों के बोलों में मानव सभ्यता के विकास के वर्णन के साथ–साथ यौन रहस्यवाद के गूढ़ संदर्भ भी समाहित होते हैं। इसकी प्रमुख विशेषता इसकी लय और धुन में निहित होती है जो इसे विशेष रूप से प्रभावशाली बनाती है।

लाइहराओबा उत्सव के दौरान शुभ मुहूर्त निकालकर एक दिन के लिए आराध्य देवताओं को मंदिर से बाहर किसी खुले मैदान में ले जाकर उत्सव आयोजित किया जाता है। इसे 'लाई लम थोक्पा'(अर्थात् देवताओं का बाह्य भ्रमण) कहा जाता है। इस

उत्सव में भी लाइहराओबा के सभी नित्य कार्यक्रम, लाइबौचोंबा सहित सभी अनुष्ठान संपन्न किए जाते हैं। इसकी विशेषता यह है कि इसमें पान्थोइबी और नोंपोक्निन्थौ के प्रेम का अभिनय द्वारा प्रदर्शन किया जाता है। साथ ही, नृत्य के माध्यम से सृष्टि की रचना, मानव सभ्यता का विकास, कृषि से जुड़े मानव के कार्य तथा मानव जाति के विकास हेतु संतान वृद्धि और काम–इच्छा आदि को संगीत एवं अभिनय के साथ प्रस्तुत किया जाता है।

लाइहराओबा के अंतिम दिन को 'लाई रोई' (अर्थात् समापन समारोह) कहा जाता है। समापन के दिन भी लाइबौचोंबा अनुष्ठान के साथ पान्थोइबी और नोंपोक्निंथौ के प्रेम प्रसंग को भी अभिनय के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है। इस प्रस्तुति में विशेष रूप से पान्थोइबी और नोंपोक्निंथौ के अभिनय द्वारा कृषिसंबंधी ज्ञान प्रदान किया जाता है जिससे मानव सभ्यता के विकास में कृषि की महत्ता को दर्शाया जाता है।

लाइहराओबा को नृत्य का प्राचीन रूप कह सकते हैं जो मणिपुर में सभी शैली के नृत्य के रूपों का आधार है। पूर्व–वैष्णव काल से इसका उद्भव हुआ था और आज भी यह मणिपुर में प्रस्तुत किया जाता है। लाइहराओबा पर्व श्रुति साहित्य, संगीत, नृत्य और पारंपरिक अनुष्ठानों का अद्भुत संगम है। इस उत्सव में सृष्टि मिथक का अनुष्ठानिक रूप में प्रदर्शन किया जाता है जो मणिपुर की संपूर्ण संस्कृति को दर्शाता है और पहाड़ी तथा मैदानी क्षेत्रों के लोगों के बीच घनिष्ठ संबंधों को चित्रित करता है। लाई लमथोक्पा और लाई रोईके दिनों में नोंपोक्निंथौ और पान्थोइबी के प्रेम संबंधों के साथ–साथ मानव सभ्यता के विकास की कथा को चित्रित किया जाता है। सभी प्रकार के लाइहराओबा उत्सवों में यही अनुष्ठान संपन्न किए जाते हैं।

लाइहराओबा की सामाजिक, सांस्कृतिक व धार्मिक भूमिका :

मैतेई जाति द्वारा बड़ी श्रद्धा और उल्लास के साथ मनाए जाने वाले इस पर्व की धार्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक भूमिका अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है।

सामाजिक भूमिका :

लाइहराओबा उत्सव समाज को एकजुट करने में अहम भूमिका निभाता है। इस पर्व के माध्यम से समुदाय के लोग पारंपरिक मूल्यों को संजोते हैं और एक–दूसरे से जुड़ते हैं। यह उत्सव न केवल धार्मिक है बल्कि यह सामाजिक समरसता और एकता को बढ़ावा देने का एक साधन है। विभिन्न समुदाय और गाँव के लोग इस अवसर पर मिलकर पूजा–अर्चना करते हैं, नृत्य, संगीत और अनुष्ठान प्रस्तुत करते हैं जिससे समाज में भाईचारे और सद्भाव का माहौल बनता है।

सांस्कृतिक भूमिका :

लाइहराओबा मणिपुरी संस्कृति का एक अभिन्न हिस्सा है। यह उत्सव नृत्य, संगीत, लोककथाओं और धार्मिक अनुष्ठानों के माध्यम से मणिपुरी समाज की प्राचीन

संस्कृति और परंपराओं को जीवित रखता है। उत्सव के दौरान गाए जाने वाले गीत जैसे 'लाइहराओबा इशेई', मानव सभ्यता के विकास, सृष्टि मिथक और कृषि से संबंधित ज्ञान को प्रस्तुत करते हैं। यह त्योहार पारंपरिक संगीत और नृत्य का अद्वितीय संगम है जो मणिपुर की सांस्कृतिक धरोहर को प्रदर्शित करता है।

धार्मिक भूमिका :

'लाइहराओबा' पर्व मुख्य रूप से वनदेवताओं या 'उमङलाई' की पूजा के लिए होता है। यह उत्सव स्थानीय देवताओं को प्रसन्न करने और उनका आशीर्वाद प्राप्त करने के उद्देश्य से आयोजित किया जाता है। माईबा (पुजारी) और माईबी (पुजारिन) धार्मिक अनुष्ठानों का संचालन करते हैं जो देवताओं की पूजा और आह्वान करते हैं। इस दौरान समुदाय के लोग अपने स्थानीय देवताओं के लिए विशेष प्रार्थनाएँ और अनुष्ठान करते हैं। यह धार्मिक आयोजन समाज में आस्था और विश्वास को मजबूत करता है और लोगों को धार्मिक दृष्टिकोण से एकजुट करता है।

निष्कर्षतः लाइहराओबा केवल एक धार्मिक त्योहार ही नहीं है बल्कि यह मणिपुर की सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक धरोहर को संजोने और संरक्षित करने का एक प्रभावी तरीका है। इस पर्व के माध्यम से लोग अपनी पुरानी परंपराओं को याद करते हैं और उनके प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करते हैं। साथ ही, यह समाज में एकता, भाईचारे और सामाजिक समरसता को बढ़ावा देता है जिससे समुदाय के लोगों में आपसी सहयोग और समझ बढ़ती है।

थाबल चोंबा का संक्षिप्त परिचय :

थाबल चोंबा नृत्य मणिपुरी समुदाय की सबसे प्रसिद्ध और प्रतीकात्मक सांस्कृतिक परंपराओं में से एक है। इसकी जड़ें मणिपुर की प्राचीन लोकपरंपराओं और सामाजिक आयोजनों में हैं। प्रारंभ में, यह नृत्य मैतेई समुदाय के धार्मिक और सांस्कृतिक आयोजनों का हिस्सा था। इसे मुख्य रूप से बसंत ऋतु के आगमन का प्रतीक माना जाता था जब चाँदनी रात में लोग इकट्ठा होकर सामूहिक नृत्य करते थे। हिंदू धर्म के आगमन के बाद जब मणिपुर में याओशंग (होली) मनाई जाने लगी तब से यह नृत्य होली उत्सव का एक अभिन्न हिस्सा बन गया। मणिपुर के लोग इस नृत्य को पाँच दिनों तक मनाते हैं।

पुराने समय में यह नृत्य चाँदनी रात में धार्मिक रीति–रिवाजों और विश्वासों पर आधारित लयबद्ध गीतों के साथ किया जाता था। जैसे ही चंद्रमा पहाड़ियों के ऊपर उदय होता है, उत्सव मनाने वाले अपने संगीत वाद्य यंत्रों– झांझ, बांसुरी, ढोल और अन्य वाद्य यंत्रों के साथ तैयार हो जाते हैं। इस नृत्य के दौरान लड़के और लड़कियाँ एक–दूसरे का हाथ पकड़कर वृत्ताकार रूप में नृत्य करते हैं जो सामूहिक उल्लास और एकता का प्रतीक है। यह जीवंत नृत्य रूप खुले आसमान के नीचे लोगों को एक

वृत्त में एकत्र करता है जो एकता, आनंद और समुदाय की सामूहिक पहचान का प्रतीक है।

थाबल चोंबा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

मैतेई लोगों का यह मानना है कि मणिपुर में थाबल चोंबा का प्रचलन सृष्टि के समय से चला आ रहा है। आजकल लोग इसे सामान्यतः युवक–युवतियों के मनोरंजन के रूप में नृत्य के रूप में देखते और समझते हैं लेकिन मणिपुर के विद्वान इसका ऐतिहासिक महत्त्व मानते हैं। अगर इसके उत्पत्ति के बारे में विचार किया जाए तो इसके पीछे छिपे मूल भाव को समझना आवश्यक होगा। थाबल चोंबा नाम इसलिए पड़ा क्योंकि यह नृत्य चाँदनी रात में आयोजित किया जाता है। थाबल चोंबा शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है, जिसमें 'थाबल' का अर्थ है 'चाँदनी' और 'चोंबा' का अर्थ है 'खुशी से कूदना'।

पौराणिक कथा के अनुसार, इसका प्रारंभ गुरु शिदबा (सृष्टिकर्त्ता) ने सृष्टि के बाद अपने दोनों बेटों को बुलाकर यह निर्णय लेने के लिए कहा कि राजगद्दी पर कौन बैठेगा। इसके लिए उन्होंने पृथ्वी के चारों ओर सात बार चक्कर लगाने के लिए कहा। जो सबसे पहले लौटेगा, वही गद्दी का हकदार होगा।

अपने पिता की आज्ञा से सनामही जो बड़े बेटे थे, बाघ पर सवार होकर पृथ्वी का चक्कर लगाने निकल पड़े। लेकिन इस बीच, जो छोटा बेटा शारीरिक रूप से कमजोर था, वह अपनी माँ के पास गया और अपने पिता की बातों को बताया। माँ ने उसे यह सलाह दी कि वह अपने पिता के आसन के चारों ओर सात बार चक्कर लगाए। इस प्रकार, छोटे बेटे तुथेकप ने अपनी माँ के बताए अनुसार किया और वह पाखंबा (पिता को समझने वाला) उपाधि प्राप्त कर राजगद्दी पर बैठ गया। जब सनामही सफलतापूर्वक पृथ्वी का सात बार चक्कर लगाकर वापस आया, तो उसने देखा कि राजगद्दी पर उसका छोटा भाई बैठा हुआ है। यह जानकर सनामही का गुस्सा भड़क उठा और उसने पाखंबा को मारने के लिए उसका पीछा किया।

तभी गुरु शिदबा ने पाखंबा को बचाने के लिए नौ युवा देवताओं और सात युवा देवियों को भेजा। इन युवा देवी–देवताओं ने एक–दूसरे का हाथ पकड़कर गोलाकार बनाकर सनामही से पाखंबा को बचाया। इस क्रिया से बाद में थाबल चोंबा नृत्य का विकास हुआ।

थाबल चोंबा का एक और प्राचीन रूप है जिसे औग्रि हंकेल कहा जाता है। यह नृत्य धार्मिक अनुष्ठान के साथ आयोजित किया जाता है। पुरानी मैतेई भाषा में रस्सी को ''औग्रि'' कहते हैं। इस नृत्य का विकास भी पुरानी पौराणिक कथा से जुड़ा हुआ है।

एक समय सनामही द्वारा बनाए गए शामतोन (अश्व) के शरीर में पाखंबा ने प्रवेश

कर लिया था जिसके कारण सनामही द्वारा निर्मित सभी सामानों का नाश होने लगा। तब नौ युवा देवता और सात युवा देवियाँ मिलकर उस अश्व को घेरकर उसे काबू करने में लगे। अंततः सनामही ने युवा देवी–देवताओं की मदद से अश्व के गले में रस्सी डालकर उसे पकड़ लिया। सनामही और युवा देवी–देवताओं द्वारा पाखंबा की आत्मा प्रविष्ट अश्व को पकड़ने की प्रक्रिया ही औग्रि हंकेल नृत्य के रूप में विकसित हुई। यह नृत्य सनामही और युवा देवी–देवताओं द्वारा अश्व को पकड़ने की क्रिया–कलाप का अनुकरण करते हुए विकसित हुआ है। औग्रि हंकेल और थाबल चोंबा भले ही बाह्य रूप से समान दिखते हों लेकिन उनके नृत्य की प्रक्रिया, शारीरिक भंगिमा और अन्य पहलुओं में काफी अंतर है। थाबल चोंबा का कोई निश्चित समय नहीं होता। इसे किसी भी समय, विशेष रूप से चाँदनी रात में आयोजित किया जा सकता है। थाबल चोंबा में कोई भी युवा या युवती भाग ले सकता है। इसके लिए कोई विशेष संख्या या योग्यता की आवश्यकता नहीं होती। यदि नृत्य के दौरान कोई थक जाता है तो वह आराम कर सकता है। इस नृत्य में कोई भी गीत गाया जा सकता है क्योंकि इसके लिए कोई निर्धारित नियम नहीं होते।

थाबल चोंबा की उत्पत्ति का मूल 'नोंखों कोइबा' (राजगद्दी के हकदार के लिए विश्व का चक्कर लगाने) नामक पौराणिक कथा से जुड़ा हुआ है। इसके विपरीत, औग्रि हंकेल नृत्य के लिए भाग लेने वाले युवक और युवतियों की संख्या समान होनी चाहिए। एक ओर युवक खड़े होंगे और दूसरी ओर युवतियाँ। औग्रि हंकेल नृत्य करते समय भाग लेने वाला या वाली बीच में आराम नहीं कर सकते; उन्हें प्रारंभ से अंत तक लगातार भाग लेना होता है। इस नृत्य में शारीरिक रूप से कमजोर लोग भाग नहीं ले सकते। युवक और युवतियों को शारीरिक रूप से स्वस्थ और स्वच्छ होना चाहिए। साथ ही, उन्हें स्वच्छ, पवित्र वस्त्र पहनने चाहिए और उन खाद्य पदार्थों से परहेज करना चाहिए जो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक माने जाते हैं। औग्रि नृत्य के लिए नृत्य स्थल में भाग लेने वाले लोगों के खड़े होने के लिए जो स्थान अधिग्रहित होगा, उसकी माप के अनुसार एक रस्सी गोलाकार बनाकर लटकाई जाती है। इसके दोनों सिरे जोड़कर एक घंटी भी लटकाई जाती है। इस गोलाकार में एक ओर माईबा (पुजारी या धर्मज्ञाता) नेतृत्व करते हुए युवक नृत्य करेंगे, जबकि दूसरी ओर माईबी (पुजारिन या धर्मज्ञाता) नेतृत्व करते हुए युवतियाँ नृत्य करेंगी। इस नृत्य के बीच में इशै हनबा (गायक) द्वारा गीत गाया जाएगा।

औग्रि हंकेल नृत्य के दो मुख्य उद्देश्य बताए गए हैं। पहला उद्देश्य राज्य की मंगलकामना, सुख–समृद्धि, शांति और विकास के लिए नृत्य का आयोजन करना है। इसमें नृत्य बड़ी ही शालीनता से कदम मिलाकर किया जाता है। दूसरा उद्देश्य राज्य में दुष्कर्मों को रोकने, अपराधियों को दंडित करने और राज्य को सुरक्षित रखने के लिए

नृत्य आयोजित किया जाता है। इस प्रकार के नृत्य में उत्तेजक ढंग से कदमों में बल देकर या पैर पटककर और क्रोधपूर्ण भंगिमा के साथ नृत्य किया जाता है। पहले प्रकार का औग्रि हंकेल आज भी लाइहराओबा के एक अभिन्न हिस्से के रूप में अंतिम दिन आयोजित किया जाता है। पुराने समय में, यह नृत्य चाँदनी रात में धार्मिक रीति–रिवाजों और विश्वासों पर आधारित लयबद्ध गीतों के साथ किया जाता था। मणिपुर के लोग इस नृत्य को पाँच दिनों तक मनाते हैं।

थाबल चोंबा की सामाजिक, सांस्कृतिक व धार्मिक भूमिका:

थाबल चोंबा मणिपुरी समुदाय की एक महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक, सामाजिक और धार्मिक परंपरा है जिसका गहरा ऐतिहासिक और सांस्कृतिक महत्त्व है। इसे न केवल एक पारंपरिक नृत्य के रूप में देखा जाता है बल्कि यह मणिपुरी समाज की धार्मिक और सांस्कृतिक पहचान का प्रतीक भी है।

सामाजिक भूमिका:

1. समुदाय की एकता: थाबल चोंबा नृत्य सामूहिक रूप से किया जाता है जिसमें लड़के और लड़कियाँ एक–दूसरे का हाथ पकड़कर वृत्ताकार नृत्य करते हैं। इस नृत्य के माध्यम से समाज में एकता, सामूहिक उल्लास और सौहार्द बढ़ता है। यह सामूहिक सहभागिता का प्रतीक है जो समुदाय को एक साथ जोड़ता है।

2. सामाजिक सहभागिता: इस नृत्य में बिना भेदभाव के कोई भी व्यक्ति भाग ले सकता है। यह समानता की भावना को बढ़ावा देता है क्योंकि नृत्य में कोई विशेष योग्यता की आवश्यकता नहीं होती और किसी को भी अवसर मिलता है।

3. पारंपरिक सामाजिक आयोजनों में शामिल: यह नृत्य विशेष रूप से मणिपुर के प्रमुख सामाजिक आयोजनों, जैसे याओशंग (होली) में आयोजित किया जाता है जो एक सामाजिक उत्सव का रूप लेता है। इस दौरान लोग सामूहिक रूप से इकट्ठा होकर अपने सामाजिक और सांस्कृतिक रिश्तों को मजबूत करते हैं।

सांस्कृतिक भूमिका:

1. प्राचीन लोकपरंपरा: थाबल चोंबा मणिपुर की प्राचीन लोक परंपराओं से जुड़ा हुआ है और यह मणिपुरी समाज की सांस्कृतिक धरोहर का हिस्सा है। यह नृत्य मणिपुरी संस्कृति के गहरे संबंध को दर्शाता है जिसमें प्रकृति, समाज और धार्मिक अनुष्ठान जुड़े हुए हैं।

2. संस्कार और शिक्षा: थाबल चोंबा नृत्य एक शारीरिक अभ्यास के रूप में भी कार्य करता है जो युवा पीढ़ी को सांस्कृतिक धरोहर और परंपराओं के प्रति जागरूक करता है। यह उन्हें पारंपरिक नृत्य शैली और संगीत के महत्त्व को समझने में मदद करता है।

धार्मिक भूमिका :

1. धार्मिक अनुष्ठान : थाबल चोंबा की उत्पत्ति धार्मिक कथाओं से जुड़ी हुई है जैसे गुरु शिदबा और उनके बेटों के बीच हुई प्रतिस्पर्धा। नृत्य का एक रूप औग्रि हंकेल है जो धार्मिक अनुष्ठान के साथ किया जाता है। इस नृत्य के दौरान दिव्य ऊर्जा का प्रवाह और सामाजिक सुख–समृद्धि की कामना की जाती है।

2. होली और अन्य धार्मिक अवसरों पर : थाबल चोंबा का विशेष रूप से होली (याओशंग) के दौरान आयोजन किया जाता है। यह नृत्य बसंत ऋतु के आगमन के साथ जुड़ा हुआ है जो नए जीवन और नवीकरण का प्रतीक है। यह धर्म और संस्कृति के बीच एक मधुर संतुलन स्थापित करता है।

3. दिव्यता का प्रतीक : नृत्य के दौरान देवता और देवियाँ एक–दूसरे का हाथ पकड़कर गोलाकार रूप में नृत्य करते हैं जो समर्पण, श्रद्धा और दिव्यता का प्रतीक है। यह थाबल चोंबा की धार्मिक और पवित्र प्रकृति को भी दर्शाता है।

इस प्रकार, थाबल चोंबा नृत्य मणिपुरी समाज के धार्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक जीवन में एक अभिन्न और महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है जो न केवल परंपराओं को संरक्षित करता है बल्कि समुदाय को एकजुट करने में भी महत्त्वपूर्ण योगदान देता है।

संदर्भ :

1. डॉ. खुन्दोंबम गोकुलचंद्र (संपा.), 2012 परिषदकी अरिबा साहित्यगी नैन–वारें, मणिपुर साहित्य परिषद्, इम्फाल, पृ. 1–13
2. मोइराङथेम चन्द्रसिंह (संपा.), 1963, पन्थोइबी खोंगुल, पृ. 4–20
3. लाइरेनमयुम इबुङोहल सिंह, 2008, मणिपुर
4. Parratt, Saroj Nalini, 1980, The Religion of Manipur, Firma KLM (Pvt) Ltd, Calcutta
5. Singh, E. Nilakanta, 1993, Fragments of Manipuri Culture, Omsons Publications, New Delhi,
6 R.K. Danisana, 2012, Manipuri Dances (A Panorama of Indian Culture), Rajesh Publications, New Delhi.

❑❑❑

मणिपुर की कबुई जनजाति का मनमोहक और जीवंत त्योहार: गान–ङाई

डॉ. गाईगुईमेईलू कामेई

इबोटोनसना गर्ल्स उच्च माध्यमिक विद्यालय, मणिपुर में हिंदी आचार्य

मणिपुर की 'कबुई जनजाति' जेलेंगोंग नागाओं के प्रमुख जातीय समूहों में से एक है। यह अपनी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत के कारण प्रसिद्ध है। कबुई को रोंगमेई के नाम से भी जाना जाता है। उनका अपना संसार लोककथाओं, नृत्यों, गीतों, पोशाकों, आभूषणों और अन्य मनोरंजक कार्यक्रमों और खेलों जैसी सांस्कृतिक गतिविधियों के रूप में संरक्षित है। इस समुदाय के कई त्योहार हैं जैसे– 'रिह ङाई', 'गुदुई ङाई', 'नानु ङाई', 'गिनकी– ङाई' आदि है किंतु 'गान–ङाई' के लिए सभी अत्यधिक उत्सुक रहते हैं। यह जनवरी के महीने में मनाया जाता है। यह त्योहार मुख्य रूप से मणिपुर, असम और नागालैंड में रहने वाले टिंगकाऊ राग्वांग चपरैक (टी. आर. सी.) के अनुयायियों द्वारा मनाया जाता है। इस त्योहार के लिए युवा और युवतियाँ, बच्चे सभी दिसंबर के मध्य से नृत्य प्रदर्शन के लिए सीखना प्रारंभ कर देते हैं। सभी लोग अपने घरों की साफ–सफाई और सजावट करते हैं। राग (गाँव के मुख्य द्वार) और गाँवों को युवा सजाते हैं। सभी युवतियाँ अपने–अपने साथियों के अनुसार एक ही रंग और पैटर्न के पैईसोई अर्थात् मेखला पहनते हैं।

त्योहार में लोग अपनी संस्कृति के मूल्यों को बनाए रखते हैं और उसे व्यक्त करते है। गान–ङाई वैसा ही एक त्योहार है। 'गान' – प्रकाश और 'ङाई' त्योहार है अर्थात् गान– ङाई प्रकाश और जीत का त्योहार है।[1] गान– ङाई अब 13 तारीख लूनार माह जिसे गानबू कहा जाता है, वाकचिंग मणिपुरी कैलेंडर के अनुसार निर्धारित किया जाता है। यह फसल कटाई के बाद मनाया जाने वाला त्योहार है। कबुई जनजाति इस त्योहार के माध्यम से अपनी समृद्ध संस्कृति को बचाए हुए है। गान–ङाई की अवधि हर गाँव में अलग–अलग होती है। यह पाँच या सात दिनों तक ही चलता है। आधुनिकीकरण के कारण अब पाँच दिन तक ही मनाया जाता है।

इस त्योहार में 'खांचू'– पुरुषों का छात्रावास और 'लुचू'– लड़कियों का

छात्रावास बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यह त्योहार कबुई जनजाति का एक महत्त्वपूर्ण त्योहार है जो सद्भावना, शांति और समृद्धि फैलाता है एवं सांस्कृतिक पहचान को संरक्षित करता है।

पाँच दिन का त्योहार इस प्रकार है–

पहले दिन– **ङाईगंग्मेई**

त्योहार के पहले दिन सुबह–सुबह पैई के बड़े बुजुर्ग बम्बू (गाँव के देवता) के पास एक अनुष्ठान करते है– 'गु लिम दन शंमेई'। इसमें पुजारी पूजा करने के लिए देवता के सामने केले का पत्ता रखते हैं। फिर वे अदरक को एक विशेष चाकू का उपयोग करके छिलका उतारते हैं और दूसरे आधे हिस्से को केले के पत्ते पर फेंकते हैं। यदि आधा अदरक दूसरे आधे हिस्से पर ठीक से गिरता है तो पुजारी भविष्यवाणी करते हैं कि त्योहार ठीक और सामंजस्यपूर्ण होगा। यदि नहीं तो वह गाँव के बुजुर्ग को शगुन अच्छा नहीं होने के कारण आने वाले त्योहार का ध्यान रखने के लिए सलाह देते हैं।

गु (अदरक) को पवित्र माना जाता है और इसका प्रयोग कई अनुष्ठानों, बलिदानों और बुरी शक्तियों को दूर करने के लिए किया जाता है। ऐसा माना जाता है कि अदरक निराकार और सर्वशक्तिमान ईश्वर टिंगकाऊ राग्वान के पैर की उँगलियों का प्रतिनिधित्व करता है।[3]

यह अनुष्ठान करने के पश्चात् गाँव के बुजुर्ग कुछ युवाओं के साथ खांगचू (लड़कों के छात्रावास) में लौटते हैं और जौपान केईमै अर्थात् पवित्र शराब चढ़ाते हैं। इसके बाद खांगचू के आँगन में टिंग्काऊ राग्वांग के नाम पर एक बड़े सुअर की बलि दी जाती है। बलिपशु की तिल्ली को सावधानीपूर्वक निकाला जाता है। उसके बाद 'गोक कपाई जाउमेई' (तिल्ली का निरीक्षण) होता है जो गाँव के बड़े बुजुर्ग, मुह (पुजारी) और अन्य विशेषज्ञ द्वारा किया जाता है। सुअर की तिल्ली में कई संकेत या निशान दिखाई देते हैं जो शुभ संकेत या अन्यथा की व्याख्या करते हैं। इसके बाद बलिपशु के रक्त को पकाया जाता है जिसे 'जेइगन' के रूप में जाना जाता है। जेइगन एक प्रकार से एकता, एकजुटता और एकरूपता के लिए शपथ लेने की रस्म है कि सुख–दुख में सभी एक दूसरे का साथ देंगे। इसलिए 'जेइगन' को पकाने के लिए सभी बड़े बुजर्ग, पुरुष सदस्य, युवा भाग लेते हैं।[4]

होइगंग्मेई– गान–ङाई उत्सव के प्रथम दिन में शाम को गाँव के बड़े बुजर्गों, पुरुष सदस्यों, युवाओं का एक जुलुस निकलता है जिसे 'होइगंग्मेई' कहते हैं। सभी अपने रंग–बिरंगे पारंपरिक परिधानों, सर पर पीकम (मुकुट), हाथों में आले लेकर वरिष्ठता के आधार पर पंक्तिबद्ध होकर खांगचू से 'हो' होइंग के साथ गाँव के उत्तरी द्वार की ओर बढ़ते हैं। फिर गाँव के दक्षिणी द्वार की ओर जाते है और अंत में

डासांगपुंग (कूद के मैदान) में पहुँचते है जहाँ वार्षिक खेलकूद (जैसे– ताऊ फाड़मेड़ (शॉर्ट–पूट), दान कचकमै (लॉन्ग जम्प) आदि शुरू होते हैं।[5]

मेईथन लामेई (पवित्र अग्नि)– गाँव के सभी युवा पुरुष शाम को हरेक घर में जाकर आग निकालने की प्रविधि अपनाते हैं जिसे 'मैइरापमेई' कहते हैं। इस विधि से जिस घर में आग निकलती है, ऐसा माना जाता है कि उस घर में साल भर खाने की कमी नहीं होगी। किंतु आजकल खांगचू में बाँस की पट्टी को लकड़ी के टुकड़े से रगड़कर आग निकालते हैं और सभी आग को अपने–अपने घर ले जाकर उस आग से खाना पकाते हैं।[6]

दूसरे दिन टम चनमेई (ङाई दाई)–

त्योहार का दूसरा दिन टम चनमेई है। इस दिन लड़के और लड़कियाँ अपने–अपने भोज के लिए खाने–पीने की चीज़े उपहार के रूप में पेश करते हैं किंतु आजकल अपने–अपने हिस्से के पैसे देते हैं। शाम को लड़कियाँ टमचन लाम (टम यानि चटनी, चन का अर्थ अर्पण और लाम का अर्थ है नृत्य) और टमचन गीत गाते हैं और इन संस्थानों में–पैईकाई (गाँव परिषद् का कार्यालय), केनजापुई काईबंग (बूढ़ी महिलाओं का घर), गानचंग काईबंग (बुजुर्गों का घर), नपमू काईबंग (कृषि संस्कारों का घर), मथेनमेई काईबंग (विवाहित महिलाओं का घर) टमचन लाम प्रस्तुत करते हैं। यह माना जाता है कि इन संस्थानों द्वारा टमचन लाम प्रस्तुत करने से गाँव के युवाओं को कोई बीमारी या रोग नहीं होगा। संस्थाओं को पवित्र माना जाता है।[7]

तीसरा दिन– टमशोन जौशोनमेई (तूना गान ङाई)

'टमशोन जौशोनमेई' का शाब्दिक अर्थ है 'युवाओं का त्योहार।' इस दिन लड़के और लड़कियों के छात्रावासों के सदस्य उन लड़कियों के लिए विदाई नृत्य करते हैं जिनकी अगले साल शादी होने वाली है। इस दिन पिछले वर्ष मरने वाले सदस्यों के लिए भी विदाई, सम्मान और श्रद्धाजंलि नृत्य होता है जिसे 'थैईकदी लाम' कहते हैं और यदि कोई वरिष्ठ गानपी से खंगबोन में पदोन्नत होने वाले हों; उनके लिए भी सम्मान नृत्य किया जाता है। सुबह, खांगबोन के वरिष्ठ टमचा लेके आते है तथा 'शोन' (पैसे) को केले के पत्ते में लपेट के बाँस की डोरी से बाँधते है। इसे माँस, पेय, सब्जियों और अन्य वस्तुओं के रूप में माना जाता है लेकिन आज के चलन में पैसा फंड ड्राइव के लिए एकत्र किया जाता है और उसके बाद चुने हुए सदस्यों के लिए रिहाई होई चिल्लाया जाता है। खांगचू सर्वश्रेष्ठ शोन के लिए दो पुरुष और दो महिलाओं का चयन करते हैं और उन्हें लाम रेंग घोषित करते हैं। युवा, युवतियाँ और यहाँ तक कि बच्चे भी चुने हुए सदस्यों के सम्मान में नृत्य प्रस्तुत करते हैं। दिन में दोनों छात्रावासों द्वारा नृत्य प्रस्तुत किया जाता है जिसमें बच्चे भी शामिल होते हैं। नृत्य के समापन के बाद चुने हुए सदस्य के परिवार नृत्य में उपस्थित सभी लोगों को

नप–हौई (पारंपरिक दलिया) और घर में बने पेय पदार्थ पेश करते हैं। गाँव के बुजुर्ग अपने दाहिने हाथ में शौन पकड़कर आशीर्वाद देते हैं और वहाँ उपस्थित हर व्यक्ति आऊ (हाँ) कहता है जिसका अर्थ है 'हाँ, ऐसा ही होगा।' जउपान केईमै पवित्र पेय को टिंगकाऊ राग्वांग को अर्पित करके प्रार्थना करते हैं और पीते हैं। इसके बाद सभी अपने–अपने छात्रावास की ओर प्रस्थान करते हैं। खांचू के सदस्य और बुजुर्ग अपने शयनगृह में होई के आह्वान के साथ आगे बढ़ते हैं।

चौथा दिन– **लाकपुई कथन जाईकुमेई**

'लाकपुई कथन जाईकुमेई' का अर्थ है 'नव विवाहित का प्रवेश' अर्थात् नव विवाहित महिलाओं को महिला सदस्य में शामिल करना। इस दिन गाँव की नव विवाहित महिलाओं के 'लाकपुई कदीमेई लाम' यानि महिला सदस्य में शामिल होने वाला नृत्य किया जाता है परंतु यह अब बंद कर दिया गया है जब तक कि संबंधियों द्वारा कोई अनुरोध न हो। इसके बजाय अब एक प्लेट सलाद, चावल से बनी शराब की एक बोतल और कुछ चाय के रूप में लाकपुई माथेनमेई काईबंग में सदस्यता के रूप में लाई जाती है और बड़ों द्वारा अच्छी संतान, समृद्धि, अच्छे स्वास्थ्य और दीर्घायु के लिए आशीर्वाद के साथ संपन्न किया जाता है। यदि महिलाओं में सबसे बड़ी को गाँव के बूढ़ी महिलाओं के क्रम में पदोन्नत किया जाना है तो महिलाओं का नृत्य 'करापई कदीमेई लाम/केंगजा कदीमेई लाम' किया जाता है। हालाँकि महिलाओं के अनुरोध पर यह रांग्पत से पहले किया गया है, वरना यह रांग्पत के बाद होता था। गान–ङाई के चौथे दिन लोंगकूमेई किया जाता है (लोंग– पहाड़ और कूमेई–चढ़ाई करना)। इस दिन पास की पहाड़ियों में लड़के और लड़कियों के छात्रावास द्वारा लोंगकूमेई नामक अनुष्ठान किया जाता था जिससे उनकी क्षमता का परीक्षण होता था, अब यह अनुष्ठान नहीं होता।

पाँचवाँ दिन– **नपचनमेई (चावल की भेंट)**

इस दिन हर घर की माँ और साथ ही खांगचू और लुचु चूल्हे और चावल के बर्तन में धान की देवी से परिवार की समृद्धि के लिए प्रार्थना करते है। खांगचू और लुचू में सामुदायिक भोज का आयोजन किया जाता है। भोज के अंत में, खांगचू में गान ङाई का समापन समारोह नप्सिन गानसिन लाऊमेई लूह (गाना) गाकर आयोजित किया जाता है। इसे नप्सिन गानसिन लाऊमेई कहा जाता है। इसका शाब्दिक अर्थ है– 'रसोइये का मजाक उड़ाना/खाद्य प्रभारी का मजाक उड़ाना' लेकिन अंतर्निहित विचार कुछ और होता है।[8]

इसके दूसरे दिन रांगपतमेई होता है। रांग का अर्थ है गाँव का द्वार और पटमेई का अर्थ है खोलना अर्थात् गाँव का द्वार खोलना। पुराने समय में दुश्मन के हमले से बचने के लिए लोग त्योहार के दौरान गाँव के द्वार बंद कर देते थे। इस दिन सात

भाई देवताओं और जेलेंगलोंग के अन्य देवताओं की पूजा गाँव के उत्तरी द्वार पर गाँव के प्रमुख देवता कैपी बांबू की बगल में गाँव के मूह (पुजारी) द्वारा की जाती है। इस महत्त्वपूर्ण अनुष्ठान के लिए गाँव के प्रत्येक घर की ओर से मुर्गी, अंडे, अदरक, केले के पत्ते भेंट करते हैं। गाँव के मूह द्वारा राग्वान के सात भाइयों और अन्य स्थानीय देवताओं की पूजा की जाती है जिसे रारेन लौमेई कहते हैं। इस पूजा को करने का उद्देश्य कठिनाई, परेशानी, बीमारी और यहाँ तक कि मृत्यु को दूर करने की प्र्राथना है।[9]

यह स्पष्ट कर दें कि जेलेंगलोंग बुरी आत्माओं की पूजा नहीं करते। बस, प्रसाद चढ़ाकर उन्हें प्रसन्न रखते हैं ताकि कोई बाधा नहीं आए। यह अनुष्ठान हर साल गान–ङाई के आखिरी दिन और अंतिम दिन अवश्य किया जाता है, इस विश्वास के साथ कि इस अनुष्ठान के दौरान कोई भी बाहर नहीं जा सकता और न कोई बाहर से अंदर आ सकता है। पैईकाई में मुर्गी की बलि द्वारा एक और अनुष्ठान किया जाता है और उसे पकाया जाता है और सभी घरों में थोड़ा–थोड़ा बाँटा जाता है जिसे बुह काऊमेई कहते हैं। इस प्रकार पर्व का समापन होता है और गान–ङाई त्योहार संपन्न होता है।[10]

कबुई–राँगमेई जनजाति अपने समृद्ध सामाजिक–सांस्कृतिक मूल्यों के लिए प्रसिद्ध है और वे अपनी सांस्कृतिक परंपराओं, रीति–रिवाजों को त्योहारों, गीतों, नृत्यों, दावतों आदि के माध्यम से पीढ़ी–दर–पीढ़ी संरक्षित करते हैं। मोरूंग प्रणाली (छात्रावास) जैसी सामाजिक संस्था जो अपनी–अपनी भूमिका और कर्त्तव्यों का पालन करती है और व्यवस्थित तरीके से काम करने का तरीका सिखाती है। अनुशासन वर्तमान में संस्कृति, धर्म और परंपरा के अस्तित्व को बेहतर रूप में जीवंत बनाने के मुख्य कारकों में एक है। अतः त्योहार मनुष्य जीवन का महत्त्वपूर्ण अंग है। गान ङाई कबुई जनजातियों के टी.आर.सी. अनुयायियों के लिए अच्छी फसल, अधिक संतान और लंबी आयु के लिए है। ये त्योहार अपने समाज, अपने मूल्यों और अपनी नींव से जुड़े रहने और संरक्षित करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। त्योहारों में भाग लेकर लोग विवादों और गलतफहमियों को सुलझाते हैं और पूरे समाज में शांति और सद्भाव लाते हैं।

संदर्भ सूची :

1. Dr. Kamei Budha Kabui, Social and Religious Aspects of Gaan-Ngai: Reinvestigation, in The Gaan - Ngai (A Ritual Festival), Editors Dr. Budha Kamei and Pou Chaoba Kamson, 2001, 154, The State Level Gaan - Ngai Celebration Committee, Manipur.
2. Dr. Kamei Beeju, Description of Gaan - Ngai: The practices in Sangaiprou

Village, in The Gaan - Ngai (A Ritual Festival), Editors Dr. Budha Kamei and Pou Chaoba Kamson, 2001, 75, The State Level Gaan - Ngai Celebration Committee, Manipur.

3. Dr. Kamei Budha Kabui, Social and Religious Aspects of Gaan -Ngai: Reinvestigation in The Gaan - Ngai (A Ritual Festival), Editors Dr. Budha Kamei and Pou Chaoba Kamson, 2001, 157, The State Level Gaan -Ngai Celebration Committee, Manipur.
4. साक्षात्कार, लगाईलूँगलू कामेई, कखुलोंग, इम्फाल।
5. Dr. Kamei Rockos, The Festivals, in The Gaan -Ngai (A Ritual Festival), Editors Dr. Budha Kamei and Pou Chaoba Kamson, 2001, 170, The State Level Gaan - Ngai Celebration Committee, Manipur.
6. साक्षात्कार, पूर्णिमा पालमेई, रगाईरोंग गाँव की महिला अध्यक्ष, इम्फाल।
7. Kamei Lanlilung, Chakaan Gaan- Ngai, in The Gaan - Ngai (A Ritual Festival), Editors Dr. Budha Kamei and Pou Chaoba Kamson, 2001, 81-100, The State Level Gaan - Ngai Celebration Committee, Manipur.
8. Dr. Jenpuiru Kamei, The Festivals of the Zeliangrong, in The Gaan - Ngai (A Ritual Festival), Editors Dr. Budha Kamei and Pou Chaoba Kamson, 2001, 113, The State Level Gaan - Ngai Celebration Committee, Manipur.
9. Dr. Kamei Budha Kabui, Social and Religious Aspects of Gaan - Ngai: Reinvestigation, in The Gaan - Ngai (A Ritual Festival), Editors Dr. Budha Kamei and Pou Chaoba Kamson, 2001, 161, The State Level Gaan - Ngai Celebration Committee, Manipur.
10. Dr. Lamaru Thaimei and Lungjengkhwan Kahmeih, Chaakan Gaan - Ngai: Festival of Zeliangrong] in The Gaan - Ngai (A Ritual Festival), Editors Dr. Budha Kamei and Pou Chaoba Kamson, 2001, 157, The State Level Gaan-Ngai Celebration Committee, Manipur.

❑❑❑

हिंदी साहित्य में किन्नर जीवन की समस्याः औपन्यासिक संदर्भ

डॉ. मनोहर गंगाधरराव चपळे

तीन पुस्तकें प्रकाशित तथा विभिन्न पत्रिकाओं में शोध आलेख प्रकाशित। संप्रति– अध्यक्ष एवं शोध निर्देशक, हिंदी विभाग, महात्मा बसवेश्वर महाविद्यालय, लातूर।

वर्तमान समय शिक्षा के आधार पर विकसित समानता का युग है। शिक्षा के माध्यम से ही समानता का विस्तार भारतीय समाज में हुआ और हो रहा है। शिक्षा समानता का विस्तार करती है। आधुनिक शिक्षित समाज अपनी पारंपरिक, रुढ़िवादी मानसिकता को त्यागकर विविध समता के विस्तार की राहें खोज रहा है। वह अपनी अनुभूति को विस्तारित करते हुए विचार और साहित्य के माध्यम से नए उपेक्षित, हाशिए पर पड़े हुए परंपरा से असमानता, अन्याय, अत्याचार का दंश झेलते हुए तत्त्वों को पहल दे रहा है। वर्तमान समय अनुभूति की तीव्रता का समय है जिसे सजग रचनाकार अपनी रचना के माध्यम से अभिव्यक्त कर रहे हैं जिसके कारण विभिन्न रूपों में उपेक्षित, हाशिए पर जीवनयापन करने वाले सामाजिक वर्ग को नई जीवन दृष्टि से परखने की साहित्यिक दृष्टि विकसित हुई है। अनुभूति की अभिव्यक्ति का दायरा विचार और सामाजिक समस्या के आधार पर विकसित होता रहा है इसलिए साहित्यिक विमर्श के परिप्रेक्ष्य में नवीन वैचारिक विमर्शों का विकास हुआ है। समाज की वैचारिक गतिशील धारा ने युगीन समस्या के आधार पर विविध विमर्शों को जन्म दिया है जिसमें दलित, आदिवासी, स्त्रीवादी विमर्श अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इन विमर्शों को अस्मितामूलक विमर्श के नाम से अभिहित किया गया। इसमें परंपरागत समाज से उपेक्षित वर्ग की पहचान, अस्मिता की खोज, संघर्ष की विविधायामी खोज तथा अभिव्यक्तियों के आधार पर विवेचन अध्ययन का मुख्य विषय रहा है। इसी समाज में स्थित सदियों से अलक्षित वर्ग के रूप में जीवनयापन करता है किन्नर समाज। वर्तमान समय में साहित्यिक विमर्शों में सबसे अलक्षित विमर्श के रूप में हम किन्नर विमर्श को देख सकते हैं। इस संदर्भ में लिखित साहित्य हमें इस उपेक्षित वर्ग की अनुभूति और संवेदनागत अभिव्यक्ति से हमारे भाव और विचारों में गति पैदा करता है।

हिंदी साहित्य में किन्नर स्वर अथवा किन्नर जीवन विषय आधारित साहित्य वर्तमान विमर्श की वैचारिकता का प्रमुख अंग बन गया है जिसमें किन्नरों की सामाजिक, मानवीय अस्मिता का विवेचन प्रमुख विषय रहा है। किन्नर जीवन पर आधारित साहित्य सार्वजनिक विकास की तथाकथित द्यूत–क्रीड़ा में जीवन मूल्य, जीवनाधिकार को हारते हुए लोगों की आर्त चीत्कार हैं जो समाज में रहकर भी सामाजिक व्यवस्था, मूल्य और मानदंडों से वंचित रहने के लिए अभिशप्त हैं। किन्नरों की इस उपेक्षा का "कारण स्पष्ट है समाज में संख्या और महत्त्व के आधार पर न्यूनता, साथ ही शोषण अत्याचार के हर मानवी आक्रमण से परे हास–परिहास का विषय होना"।[1]

किन्नर जीवन का स्वरूप: मानव समाज को प्रकृति ने दो रूपों में निर्मित किया है– स्त्री और पुरुष। समाज के विकास में प्राकृतिक रूप से स्त्री और पुरुष का योगदान स्वाभाविक परस्पर पूरक रहा है। समाज में एक अन्य लिंग भी है जो न स्त्री है न पुरुष, उसे 'तृतीय लिंगी' वर्ग कहा गया। "स्त्री और पुरुष के अतिरिक्त मानव समाज में एक और लिंग व्यवस्था सदियों से चली आ रही है जिसे अन्य लिंगी कहा जाता है अर्थात् जो न स्त्री हैं और न पुरुष। जननांग के अभाव, अविकसित या निष्क्रियता से उत्पन्न नपुंसकता से ग्रस्त मनुष्यों को हिजड़ा कहा जाता है। प्रकारांतर से इनके लिए एक सम्मानजनक शब्द 'किन्नर' गढ़ लिया गया। 'किन्नर' शब्द का संबंध हिमाचल प्रदेश के 'किन्नौर' ज़िले से कदापि नहीं हैं। हिजड़ों के लिए इस शब्द के प्रयोग पर 'किन्नौर' प्रदेश के लोगों ने आपत्ति की थी। किन्नरों के लिए अंग्रेज़ी का 'थर्ड जेंडर' शब्द बहुप्रचलित है अर्थात् तृतीय लिंगी मनुष्य"।[2] मानव समाज में प्राकृतिक व्यवस्था से ही लिंग भेद की स्थिति विद्यमान है। प्रजोत्पादन समाज का मूल आधार रहा है और जो प्रजोत्पादन के लिए योग्य रहे, वे समाज की मुख्य धारा का आधार बने एवं जो इस प्रक्रिया में प्राकृतिक कारणों से सम्मिलित न हो पाए, वे समाज की मुख्यधारा से उपेक्षित, अभिशप्त हाशिए का जीवन जीने के लिए छोड़ दिए गए। इस विभाजन का मूल आधार 'लिंग आधारित पहचान' है। समस्त मानव समाज अपनी सामाजिक विकास की गति में समान आकांक्षा, हित, जीवन के उद्देश्य पर आधारित मूल्यों के आधार पर अपने समूह अथवा समाज की आधारशिला रखता है, इस रूप में उभय (स्त्री और पुरुष) लिंग में अपनी पहचान न पाकर यह वर्ग तृतीय लिंगी माना गया और इनकी लिंग आधारित स्थिति को समाज में विविध स्थिति पर अलग स्थान दिया किंतु किन्नर कोई अलग सामाजिक इकाई न होकर समाज के ही जननांग आधारित विभेद के आधार पर समाज से अलग किए गए सामाजिक तत्त्व हैं। "यह जीवन शैली की लिंगीयता हैं जिसमें स्त्री लिगी–पुंलिंगी मुख्य धाराएँ हैं जो इनको दबा देती हैं। नपुंसकलिंगी कहाँ कैसे जिएंगे? समाज का स्वीकृत हिस्सा कब बनेंगे"?[3]

साहित्यिक विमर्श एवं संवेदना का यह महत्त्वपूर्ण प्रश्न है।

वैश्विक सभ्यता पर विचार करने से ज्ञात होता है कि समाज विभिन्न विभाजनात्मक तत्त्वों की खोज में लगा रहा एवं उसी विभेदात्मक स्थिति के आधार पर अपनी विकास की अवस्थाओं में विकसित होता रहा। जाति, धर्म, वर्ग, संप्रदाय, भाषा, प्रांत, संस्कृति इत्यादि तत्त्व उसके विभाजन के साधन रहे हैं। इसी आधार पर लिंग भेद भी समाज के विभाजन का प्राकृतिक आधार रहा है किंतु वर्तमान समाज समता, स्वतंत्रता, बंधुता आदि मानवीय मूल्यों के विकास का काल है तथा साथ ही इसके अवरोध के सभी संकीर्ण भावधाराओं के विरोध का भी है। मनुष्य की आदिम अवस्था के जीवनयापन के सारे अवरोधात्मक तत्त्व समाज ने त्याग दिए अथवा त्याग रहे हैं। वर्तमान समाज में सहअस्तित्व, सद्भाव, सहानुभूति के आधार पर जीवनयापन कर लोकमंगलात्मक सामाजिक व्यवस्था निर्माण हो रही है और इस ओर मनुष्य अग्रसर हो रहा है। किंतु समाज में आज भी ऐसे कई विभाजनात्मक, विषमतावादी, अमानवीय मूल्य एवं आचरण पद्धतियों का अनुसरण किया जा रहा है जो मनुष्य को मानवीय तत्त्वों से दूर करने की परंपरा को जीवित रखना चाहते हैं। प्रत्येक समाज अपनी–अपनी वर्तमान सामाजिक स्थिति के आधार पर अपने नियम बनाता है। प्राकृतिक काल में समाज ने अपनी–अपनी स्थितियों के आधार पर, अपनी युगीन आवश्यकताओं के आधार पर अपने जीवन के नियम बनाए होंगे। लिंग आधारित समाज की स्थिति उस युग की कोई उपयोगी संरचना रही होगी। किंतु वर्तमान समय बदल रहा है। इस बदलते समय में सामाजिक स्थितियाँ परिवर्तित होकर नए नियमों, आचरण–तत्त्वों का अनुसरण करने में लगी हुई हैं। साहित्य सामाजिक चिंतन का आविष्कार माना जाता है। साहित्य को 'जनता की चित्तवृत्ति का प्रतिबिंब'कहा गया है। साहित्य विचार, मनोभावना, संवेदनाओं को अभिव्यक्त करने का महत्त्वपूर्ण साधन है। यह साधन मनुष्य के विचार एवं भावात्मकता को गति प्रदान करता है। उसे सोचने एवं आचरण की नई राहें निर्माण करने की शक्ति प्रदान करता है, सभ्यता के नए सोपानों पर पहुँचाता है। साहित्य के उद्देश्य पर विचार करते हुए प्रेमचंद लिखते हैं– "साहित्य की उत्कृष्टता की कसौटी अनुभूति की वह तीव्रता है जिससे वह हमारे भावों और विचारों में गति पैदा करता है।"[4] वर्तमान समय का साहित्य एवं साहित्यिक विमर्श अनुभूति की तीव्रता और विचारों के गति के आधार पर पारंपरिक रूप से समाज के उपेक्षित अनछुए विषयों को अभिव्यक्ति कर रहे हैं। उनमें सबसे अधिक चर्चित तत्त्वों में दलित, महिला, आदिवासी और किन्नर विमर्श हैं।

वर्तमान समय में नई आर्थिक नीतियों, भूमंडलीकरण, उदारवाद, बाजारवाद, नई व्यवस्थापन नीतियों ने समाज में आमूलचूल परिवर्तन किया है। इनसे साहित्यकार प्रभावित होकर समाज के नए किंतु अनछुए पहलुओं पर विचारकर अपनी 'अनुभूति की

तीव्रता' की अभिव्यक्ति कर रहा है। उसी की फलश्रुति वर्तमान समय का किन्नर विमर्श है जो मानवीय संवेदनाओं में परिवर्तन की मूल पड़ताल में लगा है। वर्तमान समाज का सबसे महत्वपूर्ण मूल्य समानता का तत्त्व है। शिक्षित व्यक्ति शिक्षा के माध्यम से क्षमता का विस्तार करता है। किंतु समाज में दलित, स्त्री, किन्नरों के प्रति पारंपरिक रूप से असमानता का व्यवहार किया गया है। वर्तमान समय के मूल्य एवं चिंतन से प्रभावित होकर साहित्यकार अपनी संवेदना, को इन उपेक्षित समुदाय के चिंतन में लगाकर अपनी मौलिक चेतना द्वारा सामाजिक परिवर्तन में योगदान दे रहा है। वर्तमान समय के परिवर्तित सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेश ने हाशिए पर पड़े किन्नर समुदाय के प्रति समाज में समान मानवीय संवेदनाओं को जगाया है। समाज में परिवर्तन की इस लहर से समाज में उपेक्षित वर्गों को पहचान मिली और निस्संदेह हिंदी के कुछ चुनिंदा कथाकारों ने इस आंदोलन को साहित्य की मुख्यधारा में स्थान देने की महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। हिंदी में किन्नर जीवन पर आधारित कथा साहित्य का आरंभ 21 वीं सदी में हुआ। विगत शती में स्त्री, दलित और आदिवासी वर्ग को विशेष अभिव्यक्ति मिली है परंतु किन्नर समाज को हिंदी साहित्य में कोई विशेष अभिव्यक्ति नहीं मिली थी।

वर्तमान भारतीय साहित्य पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि हिंदी साहित्य में विशेष रूप से किन्नर समुदाय पर केंद्रित साहित्य लिखा गया। साहित्य की विविध धाराओं— उपन्यास, कहानी, कविता एवं आलोचना के प्रमुख विचार का बिंदु किन्नर जीवन रहा है। इस संदर्भ में नीरजा माधव लिखित 'यमदीप', अनुसूया त्यागी— 'मैं भी औरत हूँ', महेंद्र भीष्म कृत 'किन्नर कथा, मैं पायल', प्रदीप सौरभ— 'तीसरी ताली' निर्मला भुराड़िया— 'गुलाम मंडी', चित्रा मुद्गल— 'पोस्ट बॉक्स नंबर 203 नाला सोपारा', पंकज बिष्ट— 'पंखवाली नाव', भगवंत अनमोल— 'जिंदगी 50—50' आदि उपन्यास महत्त्वपूर्ण हैं। इन उपन्यासों में किन्नर जीवन के विविधायामी उपेक्षित तत्त्व, जीवनानुभवों, संवेदनाओं, समस्याओं को प्रस्तुत किया गया है। यह विषय पारंपरिक रूप से उपेक्षित विषय रहा है जो साहित्य में संवेदना के धरातल पर सहानुभूति एवं स्वानुभूति के रूप में आविष्कृत हुआ है। यह लेखन संख्या की दृष्टि में अल्प किंतु गुणात्मक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। इसमें साहित्य की उत्कृष्टता की कसौटी अनुभूति की तीव्रता है जिससे वह हमारे भावों और विचारों में गति पैदा करता है।

किन्नर जीवन की समस्या : औपन्यासिक संदर्भ

भारतीय समुदाय में किन्नर समाज निरंतर उपेक्षा की स्थिति झेलता आया हैं। समाज में उसे कुछ शुभ अवसरों पर बुलाया जाता हैं किंतु उसकी स्थिति वहाँ उपहासपूर्ण ही होती है। निर्मला भुराड़िया के उपन्यास 'गुलाम मंडी' में इस स्थिति का वर्णन हुआ है। "शादी के दिनों में ही न स्वारथ रहता है तुम्हारा, आगे दिन में जो कहीं

कौवा आकर बैठ जाए ना तुम तो नहावोगी–धोवोगी अपशगुन बनाओगी। जैसे हम न तुम्हारे जो शादी ब्याह हो तो नाचेंगी, गाएँगी, शगुन पाएँगी मगर यूँ जो रास्ते में आ पड़ीं न हमें तो हिजड़ा कहकर धिक्कार करोगी?"[5]

तृतीयलिंगी अथवा किन्नरों की समाज एवं परिवार में भयावह अवस्था बनी रहती है। यह अवस्था कितनी भयानक है कि उसके ही माता–पिता सामाजिक लोक–लज्जा के भय से उसे तिरस्कृत कर नारकीय जीवन जीने के लिए छोड़ देते हैं। इस संदर्भ का विवेचन 'किन्नर कथा' उपन्यास में 'महेंद्र भीष्म' ने किया है– "संतान कैसी भी हो, उसमें कैसी भी शारीरिक, मानसिक कमी क्यों न हो– माता–पिता को अपनी संतान हर हाल में भली लगती है, प्यारी लगती है फिर भले ही वह संतान हिजड़ा क्यों न हो? फिर भी सामाजिक परिस्थितियाँ, खानदान की इज्जत, मर्यादा, झूठी शान के सामने अपने हिजड़े बच्चे से उसके जन्मदाता हर हाल में छुटकारा पा लेना चाहते हैं"।[6] अर्थात् तृतीयलिंगी व्यक्ति को अपने जन्म से मरणांतक स्थिति तक यातना, उपहास, उपेक्षा का विषाक्त जीवन जीने के लिए बाध्य कर दिया जाता है। केवल लिंग के अभाव तत्त्व के आधार पर उसे समाज से बहिष्कृत कर दिया जाता है। इसी दंश को 'गुलाम मंडी' की पात्र अभिव्यक्त करती है– "अब क्या बार–बार मेरे मुँह से सुनेगी हरामजादी कि मेरे को मेरी माँ ही फेंक गई होगी घूरे पर जब मूतने की जगह कोरा छेद देखा होगा"।[7]

किन्नर जीवन की अपनी–अपनी सामाजिक स्थितियों के आधार पर उनके रीति–रिवाज हैं। जन्म से लेकर मरण उनकी सांस्कृतिक स्थितियाँ सभ्य समाज से अलग प्रकार निर्मित की गई हैं। उनके रीति–रिवाजों को 'प्रदीप सौरभ' के उपन्यास 'तीसरी ताली' में इस प्रकार वर्णन किया गया है– "दिल्ली में आम तौर पर हिजड़े के शव को रात को डंडों से मारते, उस पर चप्पल जूते बरसाते और सड़क पर खींचते हुए श्मशान घाट ले जाते हैं। इसी तरह शव को श्मशान ले जाने के पीछे मान्यता यह है कि मरने वाला दोबारा तीसरी योनि में जन्म नहीं लेगा"।[8]

किन्नर जीवन को परिवार, समाज से उपेक्षा तो प्राप्त होती है, वह अपने किन्नरों के समाज में जाकर भी शोषण का ही शिकार बन जाते हैं। वहाँ की गुरु परंपरा, चेलियों की स्थितियाँ, इनमें भी वे मुक्ति की सांस नहीं ले पाते हैं। वह असामाजिक तत्त्वों के हाथ कठपुतली बनने के लिए विवश होता है। उनकी सांस्कृतिक शिष्य मंडली की राजनीति एवं शोषण का वे शिकार बन जाते हैं जिसका उल्लेख '203 नाला सोपारा' में किया गया है। यथा– "असामाजिक तत्त्वों के हाथ की कठपुतली बनने में जितनी भूमिका किन्नरों के सामाजिक बहिष्कार तिरस्कार की रही है, उससे कम उनके पथभ्रष्ट निरंकुश सरदारों और गुरुओं की नहीं, ऊपर से विकल्पहीनता की कुंठा ने उन्हें आँधी का तिनका बना दिया हैं।[9]

समाज की रूढ़ लिंगात्मक धारणाओं के आधार पर यौनिकता की रुचियाँ भी अलग–अलग प्रकार की हैं। तृतीयलिंगी समाज पर भी सभ्य समाज की इस अनूठी यौनिक रुचि का प्रभाव दिखाई देता है। अर्थात् उनका भी यौन शोषण किया जाता है जिसका वर्णन विवेचन भगवंत अनमोल के उपन्यास 'ज़िंदगी 50–50' में मिलता है। उपन्यास की पात्र हर्षा स्वयं पर बीते बलात्कार की घटना का विवेचन करते हुए अपनी डायरी में लिखती है– "अब मेरी आंखों से सिर्फ दर्द के आँसू निकल रहे हैं और वह हैवान मेरे शरीर से मजे लेता रहा। मैं पेट के बल पर लेटी रही, मेरा हाथ सीने के नीचे दबा था, मैं चीख रही थी और उस पर कंकड़–पत्थर चुभ रहे थे। वह इस चीख का आनंद ले रहा था। कुछ देर बाद उसने मुझे झटककर फेंक दिया जैसे कोई संडास में इस्तेमाल के बाद टिशू पेपर फेंक देता है"।[10]

नीरजा माधव कृत उपन्यास 'यमदीप' किन्नरों के उपेक्षित जीवन को प्रतीकात्मक रूप से अभिव्यक्त करता है। इस उपन्यास में लेखिका ने किन्नरों के जीवन की अतल गहराइयों में जाकर उनकी संवेदना को समाज के समक्ष अभिव्यक्त किया है। उपन्यास के शीर्षक यमदीप और किन्नरों के मध्य प्रतीकात्मक समानता है। यम मृत्यु के देवता यमराज का पर्यायवाची है, दीपावली के दिन एक दिन पूर्व नरक चतुर्दशी के रात्रि को मिट्टी के दिए जलाने की परंपरा है। दीप की इन पंक्तियों में से एक दीपक को उठाकर घर के बाहर उपेक्षित स्थल या कूड़े में रखे जाने की भी रूढ़ि है। न ही उस दिए की पूजा का विधान है और न ही किसी प्रकार की चिंता करने का कि वह जल रहा है या बुझ गया, इसके बाद भी वह प्रज्वलित रहकर अपना दायित्त्व निभाता है। इसी यमदीप की तरह किन्नरों का जीवन तिरस्कृत एवं बहिष्कृत है। किन्नरों की उपेक्षा– प्रताड़ना का आरंभ उनके अपने परिवार से ही आरंभ होता है। इसका वर्णन 'मैं पायल' उपन्यास में पायल के पिता के रूप में होता है। वे अपनी पुंसत्ववादी विचारधारा के आधार पर कहते हैं– "ये जुगनी हम क्षत्रिय वंश में कलंक हुई है। साली हिजड़ा है"।[11] जन्म से ही किन्नरों के प्रति पारिवारिक और सामाजिक भेदभाव आरंभ होता है और संपूर्ण जीवन तक उसे यह अभिशाप झेलना पड़ता है। अपने ही प्रिय–परिजनों के द्वारा उसके जीवन को इस उपेक्षा एवं अपमान का दंश प्राप्त होता है जिससे वह जीवनभर उबर नहीं पाता। पारिवारिक दंश के कारण 'मैं पायल' उपन्यास की पायल सिंह अपने घर को त्यागकर उपेक्षित, पराधीन, आत्महत्या करने के लिए सजग हो उठती है और घर को त्याग देती है।

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। समाज के अभाव में वह जीवनयापन नहीं कर सकता। उसकी इच्छाओं, आकांक्षाओं को पूर्ण करने के लिए सामाजिक सहयोग की नितांत आवश्यकता होती है। किंतु किन्नरों के प्रति समाज की अस्वीकृति एवं उपेक्षा ही उनके जीवन को नरक समान बना देती है। सामाजिक समस्या का वर्णन करते

हुए डॉ. मोनिका देवी अपने उपन्यास 'अस्तित्व की तलाश में सिमरन' में लिखती हैं– "किन्नर पैदा तो होता है, उसको रखना सबसे बड़ी समस्या है। समाज की इस समस्या को बड़ी बीमारी बनाने वाले कुछ तो रिश्तेदार और कुछ पड़ोसी ही होते हैं। सिमरन कहती हैं– 'किन्नर का जीवन सरल नहीं होता, जीते भी हैं रो–रोकर, आँसू ही सहारा बन जाते हैं, लेकिन अपना कहने के लिए कोई हाथ आगे नहीं बढ़ता।'[12]

किन्नरों में शिक्षा का अभाव, सामाजिक उपेक्षा, घर, समाज, परिवार से उपेक्षित होने के कारण रोजगार की समस्या भी सामने आती है। सामाजिक उपेक्षा उन्हें रोजगार प्रदान नहीं करती है। अपने पेट की आग बुझाने के लिए किन्नर वेश्यावृत्ति में जुड़ जाते हैं। इसके कई संदर्भ 'पोस्ट बॉक्स नंबर 203 नाला सोपारा' और 'मैं पायल' उपन्यास में यत्र–तत्र दिखाई देते हैं। 'नालासोपारा' की पात्र सायरा, 'मेरे हिस्से की धूप' उपन्यास की पात्र बबली भी वेश्यावृत्ति में संलग्न रहती है। सामाजिक स्थितियों के अंतर्गत किन्नरों का भी यौन–शोषण किया जाता है। यह चित्रण सभी उपन्यासों में दिखाई देता है। इस शोषण के विरोध में अपराध मानकर इस ओर आवाज उठाने वाला भी कोई संगठित प्रयास किन्नरों द्वारा तथा समाज द्वारा नहीं किया जाता। 'मैं पायल' उपन्यास में 'पायल' के साथ एक सिपाही ही उसका यौन शोषण करने का प्रयास करता है। किन्नरों के साथ होते शोषण का वर्णन 'अस्तित्व की तलाश में सिमरन' उपन्यास में किया गया है।

किन्नरों का सामाजिक बहिष्कार पारंपरिक पूर्वाग्रह के कारण उसके माता–पिता के द्वारा ही प्रारंभ होता है। इसी सामाजिक भय के कारण 'गुलाम मंडी' की अनारकली को घूरे पर फेंक दिया जाता हैं और 'पोस्ट बॉक्स नंबर 203 नाला सोपारा' के हरेंद्र शाह और बंदना बेन अपने मंझले बेटे विनोद को किन्नर चंपाबाई को सौंपने के लिए विवश हो जाते हैं। साथ ही 'यमदीप' उपन्यास में राजा अपनी कन्या की हत्या का आदेश दे देता है। वर्तमान समाज में आज किन्नरों के प्रति इसी सामाजिक मनोवृत्ति को तोड़ने की आवश्यकता है जो केवल और केवल जागरूकता और सामाजिक स्वीकार्यता से ही संभव हो पाएगी। इसी मनोवृत्ति के विरोध में विन्नी अपने भाषण में लोगों को शपथ दिलाता है– "भविष्य में कोई माता–पिता लोकपवाद के भय से लिंगदोषी औलाद को दर–दर की ठोकरें खाने के लिए घूरे पर न फेंकें। शपथ लीजिए, यहाँ से लौटकर आप किसी लिंगदोषी नवजात बच्चे को, किशोर–किशोरी को, युवक–युवती को जबरन उसके माता–पिता से अलग करने का पाप नहीं करेंगे, उससे उसका घर नहीं छीनेंगे, उपहासों के लात–घूसों से उसे जलील होने की व्यवस्था नहीं देंगे"[13]

किन्नरों के सामाजिक और पारिवारिक बहिष्कार की परिणति उनका विस्थापन होती है। परिवार, समाज–संबंधों से अस्वीकृत होने के कारण किन्नर अपना घर छोड़ने के लिए मजबूर होते हैं। 'किन्नर कथा' में विस्थापित हिजड़ों की नियति पर' महेंद्र

भीष्म' कहते हैं– "प्रत्येक हिजड़ा अभिशप्त है अपने ही परिवार से बिछुड़ने के दंश से, समाज का पहला पाठ यहीं से उस पर शुरू होता है। अपने ही परिवार से अपने ही लोगों द्वारा उसे अपनों से दूर कर दिया जाता है। परिवार से विस्थापन का दंश सर्वप्रथम उन्हें ही भुगतना होता है"।[14]

'किन्नर कथा' उपन्यास में महेंद्र भीष्म पारिवारिक उपेक्षा और विस्थापन का दंश विवेचित करते हैं। 'किन्नर कथा' उपन्यास की सोना को मारने का आदेश मिलता है किंतु उसे न मारकर पंचम सिंह तारा नामक किन्नर को उसे सौंप देता है। तारा किन्नर सोना को पाकर उस निर्दोष अबोध लड़की के प्रति भावनाओं में बहकर सोचने लगती है– "ईश्वर क्यों करता है ऐसा अन्याय? भला इस नन्हीं हँसती–खेलती बच्ची का क्या दोष है जो उसे ईश्वर ने अपूर्ण बनाकर संसार में भेजा, जिसे अपने माता–पिता से दूर होना पड़ रहा है, जिसे घर से बेघर किया जा रहा है। परिवार से बिछुड़ने का दंश कितना सालता है कष्ट देता है, यह उससे अच्छा भला कौन जान सकता था"[15]। परिवार से तिरस्कृत, विस्थापित होकर किन्नरों में आत्महत्या का विचार निर्मित होता है। इस संदर्भ में 'मैं पायल' उपन्यास में पायल प्रतिदिन की उपेक्षा, मारपीट से तंग आकर आत्महत्या करने के विचार से घर से निकलती है। वह सोचती है– "एकाएक मेरे मन में विचार आया फिर पीटी जाओ, मारी जाओ, इससे अच्छा है, मैं खुद ही ना मर जाऊँ....और फिर एक बार जो मेरे मन में यह विचार आया तो मरने की इच्छा गहराती चली गई। मैंने तख्त के दो चक्कर लगाते हुए पिताजी की ओर देखा, उनके पैरों के पास जाकर अपना सिर रख दिया और बिना पीछे मुड़कर देखे, घर का दरवाजा खोलकर इस अभिशप्त देह का विनाश करने निकल पड़ी।"[16]

निष्कर्षतः, किन्नर विषय आधारित उपन्यासों में किन्नर समाज के प्रति गहरी संवेदना के साथ उनकी जीवनविषयक समस्याओं पर संवेदनात्मक अभिव्यक्ति की गई है। प्राकृतिक अभिशाप, लिंगात्मक पहचान की समस्या, समानता का अभाव, परिवार एवं समाज से तिरस्कार, सभी प्रकार की उपेक्षा का दंश, अपमान– हास्यास्पदता, शिक्षा की समस्या, समाज संस्कृति की समस्या, उत्पादन साधनों में सम्मिलन से बहिष्कार, संख्यात्मकता की समस्या आदि कई बिंदुओं पर किन्नर समाज की समस्याओं पर विचार उपन्यासों के माध्यम से किया गया किंतु केवल लिंग अभाव में परिवार से बिछुड़कर जीवन जीने के लिए यह किन्नर समाज वर्तमान समाज में भी बाध्य है। आज वर्तमान समय में वैज्ञानिक–चिकित्सा के आविष्कारों से इस समस्या पर भी विजय प्राप्त कर ली गई है किंतु इनके प्रति देखने की सामाजिक दृष्टि भिन्न ही है। वर्तमान एवं भविष्य में हो रहे संवैधानिक सुधार, न्यायिक निर्णय आदि के आधार पर इनके स्वस्थ सामाजिक समन्वय की आशा है।

संदर्भ सूची–

1. नीरजा माधव, यमदीप, सुनील साहित्य सदन, दिल्ली, 2002, पृ.07
2. डॉ. एम. वेंकटेश्वर, हिंदी कथा–साहित्य में किन्नर स्वर (अंक 153, अप्रैल प्रथम, 2020 में प्रकाशित sahityakunj.net)
3. प्रदीप सौरभ, तीसरी ताली, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 2011, उपन्यास के लैप से
4. प्रेमचंद, साहित्य का उद्देश्य https://hi.m.wikisource.org
5. निर्मला भुराड़िया, गुलाम मंडी, सामयिक प्रकाशन, दिल्ली, 2016, पृ.12
6. महेंद्र, भीष्म, किन्नर कथा, सामयिक बुक्स, 2011, पृ.45
7. निर्मला भुराड़िया, गुलाम मंडी, सामयिक प्रकाशन, 2016 पृ. 68
8. प्रदीप सौरभ, तीसरी ताली, वाणी प्रकाशन 2011, पृ. 147
9. चित्रा मुद्गल, पोस्ट बॉक्स नंबर 203 नाला सोपारा, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016, पृष्ठ 168
10. भगवंत अनमोल, ज़िंदगी 50–50, राजपाल एंड संस, 2018 पृ.159
11. महेंद्र भीष्म, मैं पायल, अमन प्रकाशन, कानपुर 2016, पृ. 30
12. मोनिका देवी, अस्तित्व की तलाश में सिमरन, माया प्रकाशन, कानपुर, 2019 पृ. 98
13. चित्रा मुद्गल, 203 नाला सोपारा, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016, पृ.186
14. महेंद्र भीष्म, किन्नर कथा, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016, पृ. 41–42
15. महेंद्र भीष्म, किन्नर कथा, सामयिक प्रकाशन नई दिल्ली, 2016, पृ. 41
16. मैं पायल, महेंद्र, भीष्म, अमन प्रकाशन, कानपुर, 2016, पृ. 39

❑❑❑

भूल–सुधार

भाषा पत्रिका के मार्च अप्रैल, 2025 अंक में समीक्षा आलेख "दिल दोस्ती दुनिया वगैरह" की लेखिका का नाम त्रुटिवश श्रुति उपाध्याय छप गया है। लेखिका का सही नाम सृष्टि उपाध्याय है।

आधुनिक समय में हिंदी शिक्षा के उपलब्ध साधन और तकनीक

प्रो. हितेंद्र कुमार मिश्र

7 पुस्तकें प्रकाशित, 7 संपादित पुस्तकों और कई साहित्यिक पत्रिकाओं में आलेख प्रकाशित। अनेक पुरस्कारों से सम्मानित। संप्रति– प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग एवं निदेशक– यूजीसी मालवीय मिशन शिक्षक प्रशिक्षण केंद्र, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग

भाषा मनुष्य के जीवन की सर्वाधिक मौलिक खोज है। भाषा के बिना किसी भी सभ्य समाज की कल्पना नहीं की जा सकती। भाषा ही वह साधन है जिसके माध्यम से मनुष्य या कोई भी समाज अपने जीवन का व्यवहार करता है। मनुष्य के जीवन में इसकी महत्ता केवल जीवन के उपाय तक सीमित न होकर ज्ञान के विभिन्न स्रोतों की समझ और उसे रूप प्रदान करती है। इस भाषा के विशिष्ट उपयोग के कारण ही मनुष्य इस चराचर जगत में अपना विशिष्ट स्थान निर्मित करता है। मनुष्य अपने जीवन की जागृतावस्था में जो भी व्यवहार करता है, उसकी प्रस्तुति भाषा में ही होती है। आपस में मिलना–जुलना, प्रेम–भाईचारा, लड़ना–झगड़ना, लिखना–पढ़ना सब कुछ वह भाषा में ही करता है।

भाषा सामाजिक व्यवहार को सुनिश्चित करने वाला एक प्रमुख माध्यम है और इसीलिए समाज के भेद से भाषा में भी भेद दिखाई देता है। प्रत्येक प्रकार के कार्य और समाज की अपनी एक विशिष्ट भाषा होती है। भाषा मनुष्य को जन्म के साथ, शिक्षा के साथ, समुदाय विशेष के साथ अलग–अलग अवसरों पर प्राप्त होती है। जन्म से प्राप्त मनुष्य की भाषा उसकी मातृभाषा कही जाती है और इस रूप में प्रत्येक मनुष्य कम से कम मातृभाषा का अवश्यमेव प्रयोक्ता होता है।

मनुष्य जन्म से भाषा का इतना स्वाभाविक प्रयोक्ता होता है कि वह भाषा का श्रेष्ठ प्रयोक्ता होते हुए भी भाषा की बारीकियों को नहीं जानता या कम जानता है। जैसे हिंदी भाषा को लेकर कहा जाए तो 'हम खाना खाते हैं' और 'तुमने दूध लाया' में कौन सही है और कौन गलत है, इसका भेद कम ही लोग कर पाते हैं। इसी प्रकार, अन्य भाषाओं में भी हम देख सकते हैं। इसलिए भाषा शिक्षण एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण विषय है जिसपर हर भाषा–प्रयोक्ता को गंभीर होना चाहिए।

आधुनिक समय में सम्यक् जीवन–निर्वाह के लिए अनेक भाषाओं का ज्ञान आवश्यक है। मनुष्य एक साथ मातृभाषा, राजभाषा एवं अंतरराष्ट्रीय भाषा का प्रयोग करता है। इसलिए इन भाषाओं का सम्यक् ज्ञान किसी भी कामकाजी व्यक्ति के लिए आवश्यक है। हिंदी संसार में सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषाओं में से एक है। भारत का वैश्विक महत्त्व बढ़ने के कारण हिंदी का वैश्विक महत्त्व अपने आप बढ़ रहा है। हिंदी भाषा सीखने के लिए सर्वप्रथम हमें भाषा के दो पक्षों पर ध्यान देना होगा। प्रथमतः औच्चारणिक या मौखिक रूप और दूसरा व्याकरणिक या लिखित रूप। जहाँ तक भाषा का सवाल है, भाषा प्रथमतः मौखिक होती है और लिखित रूप उसका दस्तावेजी रूप है। इसलिए हिंदी भाषा की सम्यक् शिक्षा के लिए इन दोनों रूपों का संगत ज्ञान आवश्यक है ।

भाषा का औच्चारणिक या मौखिक रूप

दुनिया के अनेक भाषाशास्त्रियों ने भाषा के औच्चारणिक या मौखिक रूप को अधिक महत्त्व दिया है। ए.एच सेसे का मानना है कि 'Language does not consist of letters but of sounds'. ध्वनि भाषा की प्राथमिक औच्चारणिक इकाई है और प्रत्येक भाषा में इन ध्वनियों का उच्चारण का अपना स्वतंत्र स्वरूप होता है। कठिन और कीमत में 'क' के उच्चारण में भिन्नता है। इसी प्रकार हिंदी कालेज और अंग्रेजी के कॉलेज के उच्चारण में भिन्नता है। इसलिए भाषा का ज्ञान उसके औच्चारणिक ज्ञान के बिना पूर्ण नहीं हो सकता।

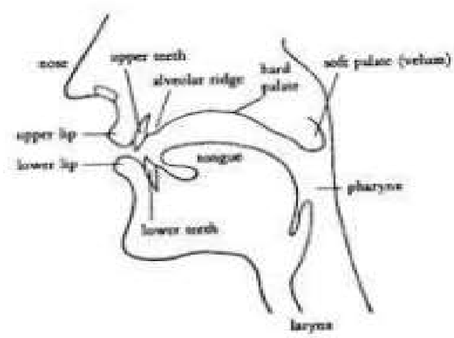

भाषा सीखने के लिए उसके औच्चारणिक स्वरूप को सीखना प्राथमिक उपाय है। भाषा के औच्चारणिक स्वरूप का उत्पादन मनुष्य के मुख से होता है और भाषावैज्ञानिक शब्दावली में इसे ध्वनियंत्र कहते हैं। मौखिक रूप से भाषा को सीखने के लिए हमें वैज्ञानिक रूप से ध्वनियंत्र का अध्ययन करना होगा। ध्वनिशास्त्रियों ने मुख विवर और उसके विभिन्न विभागों को ध्वनियंत्र कहा है। फेफड़े से निकलने वाली प्राण–वायु, मुख–विवर के भीतर विभिन्न स्थानों पर अवरोध प्राप्त करती है। अवरोध

के उपरांत उन्मोचन के समय निकलने वाली प्राणवायु से ही ध्वनि की उत्पत्ति होती है। इस आधार पर देखा जाए तो ध्वनि के उच्चारण में उच्चारण अवयव और उच्चारण स्थल दोनों का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है।

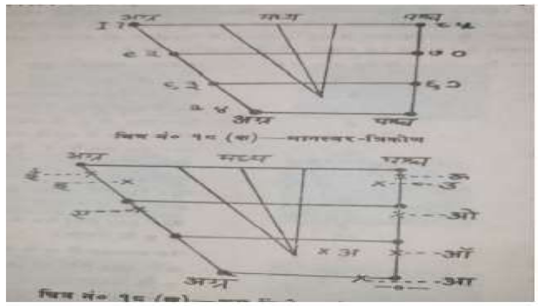

इसे ध्यान में रखते हुए ध्वनियों का विभाजन उच्चारण स्थल और उच्चारण अवयव के स्थान पर दो भेदों में किया जाता है। प्रत्येक भाषा के उच्चारण की यही प्रक्रिया होती है। इसलिए भाषा शिक्षा के लिए ध्वनियंत्र को समझना और उच्चारण विधि को समझना अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। हिंदी शिक्षण में हमें इन उच्चारण अवयवों और स्थलों के ज्ञान से ध्वनि की सही स्थिति का ज्ञान प्राप्त होगा।

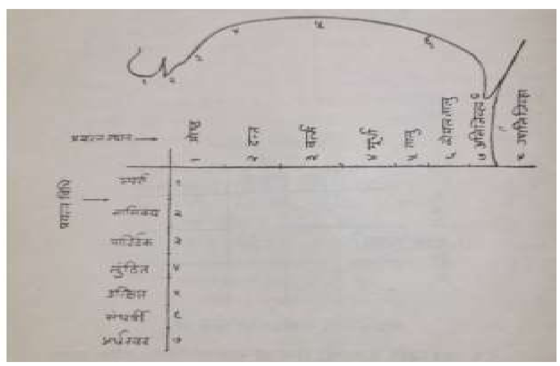

उच्चारण के भेद से ही स्वर और व्यंजन दो प्रकार की ध्वनियाँ होती हैं। इसलिए हिंदी भाषा शिक्षार्थी और शिक्षक को इसका ज्ञान होना आवश्यक है। आज के विज्ञान और तकनीकी युग में इसकी सम्यक् शिक्षा के लिए अनेक प्रकार के सॉफ्टवेयर विकसित हो चुके हैं जो दृश्य–श्रव्य रूप में सटीक उच्चारण को सिखा सकते हैं। इन सॉफ्टवेयर के माध्यम से हमें न केवल वर्णमाला का ज्ञान हो सकता है बल्कि उसके सही उच्चारण के प्रायोगिक स्वरूप को समझा जा सकता है। हिंदी वर्णमाला की ध्वनियों में कण्ठ, तालव्य, मूर्धन्य, दन्त्य, ओष्ठ्य, दन्तोष्ठ्य, अंतस्थ, ऊष्म, अल्पप्राण, महाप्राण, अघोष, सघोष, अनुनासिक, नासिक्य, उत्क्षिप्त– अनेक प्रकार की ध्वनियाँ

होती हैं। इसका सम्यक् ज्ञान न होने से भाषा प्रयोक्ता भाषा की ध्वनियों का अनुचित प्रयोग करते हैं जैसे हिंदी में स, ष, श तीन रूप में हैं। सामान्य प्रयोक्ता इन तीनों का उच्चारण एक समान करता है और कई बार अज्ञानतावश वह इन तीनों की जगह पर एक ध्वनि के प्रयोग की माँग को उठाता है जबकि इन तीनों ध्वनियों का अपना अलग महत्त्व है।

संक्षेप में ध्वनियों के महत्त्व को मंत्रों के महत्त्व से समझ सकते हैं। 'ऊँ' का महत्त्व लिखने में नहीं बल्कि उसके सटीक उच्चारण में है। विज्ञान की 'क्वान्टम थ्योरी' ध्वनियों के इस महत्व को वैज्ञानिक रूप से रेखांकित करती है। इसलिए भाषा शिक्षा के लिए उसके औच्चारणिक या मौखिक स्वरूप को समझना शिक्षार्थी की प्राथमिक आवश्यकता है।

भाषा का लिखित या व्याकरणिक रूप

भाषा का लिप्यंकन उसके दस्तावेजीकरण से संबंधित है और अगर भाषा का महत्त्व उच्चारण से है तो उसे सुरक्षित करने के लिए उसका दस्तावेजीकरण भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है। इसलिए भाषा को लिखित रूप में रखना भी आवश्यक है। भाषा के लिखित रूप के व्यवस्थापन को ही व्याकरण कहते हैं। एक प्रकार से भाषा को अनुशासन में निबद्ध करना व्याकरण का काम कहा जाता है। इसलिए उसकी संरचना के कुछ निश्चित नियम होते हैं। इन्हीं निश्चित नियमों पर किसी भी भाषा को रूपायित किया जाता है ।

हिंदी विश्व की सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषाओं में से एक है। यह विश्व की बड़ी भाषाओं की तुलना में अधिक वैज्ञानिक भाषा है। इसलिए इसके सीखने के उपायों में उच्चारण और उसके लेखन पर भी विचार किया जाना चाहिए। हिंदी शिक्षण के माध्यम से जहाँ एक ओर हिंदीभाषी उसके वास्तविक स्वरूप को समझते हैं, वहीं दूसरे भाषा–भाषा इसे समझकर वैश्विक स्तर पर अपने जीवन को सुगम बनाते हैं।

वर्तमान समय विज्ञान एवं तकनीक का समय है। इसलिए भाषा शिक्षा के लिए उसकी पारंपरिक पद्धति के साथ–साथ उसकी वैज्ञानिक एवं तकनीकी पद्धति को भी समझना चाहिए। हिंदी भाषा शिक्षा में पारंपरिक पद्धति उसके उच्चारण की पद्धति है जहाँ शिक्षक शिक्षार्थी को अनेक प्रकार की ध्वनियों के उच्चारण के माध्यम से भाषा शिक्षण कराते रहे हैं। आज के समय में तकनीकी संसाधन इस भाषा शिक्षण की दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं।

विज्ञान और तकनीक इन उपायों को तकनीकी माध्यमों से प्रस्तुत करते हैं जिसका प्रमुख उपादान आज के समय में कंप्यूटर है। आज हिंदी शिक्षण हेतु अनेक प्रकार के ऐप का प्रयोग किया जा रहा है। विभिन्न प्रकार के ऐप भाषा सीखने वालों को दृश्य और श्रव्य रूप में भाषा उच्चारण कर सिखाने का प्रयास कर रहे हैं जिसमें डूओलिंगो (Duolingo), रोसेटा स्टोन (Rosetta Stone), मेमराइज़ (Memrise), हेलो

टॉक (Hello Talk), लर्न हिंदी स्पीक हिंदी (Learn Hindi Speak Hindi) आदि प्रमुख ऐप आते हैं।

डूओलिंगो (Duolingo)– डूओलिंगो एक अमेरिकी शैक्षणिक तकनीकी कंपनी है जो अपने ऐप्स के माध्यम से लोगों को भाषा सीखने में मदद करती है। यह तैंतालीस भाषाओं में नब्बे से अधिक भाषा पाठ्यक्रम को संचालित करती है। इस प्लेटफार्म का प्रयोग करके विश्व की प्रचलित भाषाओं– अंग्रेज़ी, फ्रेंच, स्पैनिश आदि के साथ–साथ क्षेत्रीय भाषाओं– आइरिश, वेल्श आदि को भी सीखा जा सकता है। यह ऐप शिक्षण पद्धति में दैनिक, लघु एवं निरंतर अभ्यास को शामिल करता है जिससे अधिगम में सरलता रहती है। डूओलिंगो इंग्लिश टेस्ट भी अपनी तरह का एक भाषायी परीक्षण का माध्यम है जो कि सीखने की प्रक्रिया का अनवरत मूल्यांकन करता है। यह प्लेटफार्म निःशुल्क एवं सशुल्क, दोनों तरह की सुविधा प्रदान करता है। वर्तमान समय में इस ऐप के विश्वभर में तीस करोड़ से अधिक पंजीकृत उपयोगकर्ता हैं।

रोसेटा स्टोन (Rosetta Stone)– रोसेटा स्टोन भी भाषा सीखने का एक ऑनलाइन माध्यम है। यह क्लाउड आधारित तकनीक का उपयोग करके सभी प्रकार के शिक्षार्थियों को तीस से अधिक भाषाओं को पढ़ने, लिखने तथा बोलने में मदद करता है। इन भाषाओं में कुछ ऐसी भाषाएँ भी शामिल हैं जो लुप्तप्रायः हैं। इनकी तकनीक का प्रयोग करके स्पैनिश, फ्रेंच, इंग्लिश, हिंदी, चाइनीज, फारसी, अरबी, ग्रीक, लैटिन, हिब्रू, पोलिश, तुर्किश, जापानी, वियतनामी आदि भाषाओं को सीखा जा सकता है। इसकी तकनीक वाक् पहचान में भी उत्तम है। यह सशुल्क पाठ्यक्रम को संचालित करता है।

मेमराइज़ (Memrise)– मेमराइज़ एक ब्रिटिश भाषिक प्लेटफार्म है जो शिक्षण की दर में वृद्धि के लिए फ्लैशकार्ड की पुनरावृत्ति की तकनीक का प्रयोग करता है। यह शिक्षार्थी की आवश्यकता के अनुसार सामग्री का निर्माण करता है जो भाषा के साथ–साथ अन्य विषयों पर भी आधारित होती है। इस ऐप में तेईस भाषाओं के साथ इनके विभिन्न संयोजनों का भी अध्ययन संभव है। यहाँ विश्व की प्रचलित भाषाओं के साथ–साथ लुप्तप्रायः प्राचीन भाषाओं को सीखने की सुविधा भी प्रदान करता है। यह शिक्षार्थी को संबंधित भाषाओं के स्थानीय वाचक या अध्यापक से जोड़ता है जिससे कि वार्तालाप में स्थानीयता बनी रहती है। यह निःशुल्क एवं सशुल्क, दोनों तरह की सुविधा उपलब्ध कराता है। वर्तमान में सात करोड़ से अधिक शिक्षार्थी इनके ऐप में पंजीकृत हैं ।

हैलो टॉक (Hello Talk)– हैलो टॉक किसी भाषा के स्थानीय व्यक्ति के साथ जुड़कर चैट के माध्यम से भाषा सीखने को प्रोत्साहित करता है। यह किसी भाषा को सीखने के लिए एक निःशुल्क माध्यम है। वर्तमान समय में इस प्लेटफार्म पर एक सौ

पचास से अधिक भाषाएँ बोलने वाले लोग पंजीकृत हैं जिनकी संख्या पाँच करोड़ के आसपास है।

हिंदी भाषा शिक्षण के लिए ऑनलाइन शिक्षण पाठ्यक्रम और स्रोतों की भी खूब भरमार है, उदाहरणतः– कोर्सेरा (Coursera), एडएक्स (edX), यूट्यूब चैनलों के अंतर्गत लर्न हिंदी विद मैक्स (Learn Hindi with Max), हिंदी टीचर (Hindi Teacher) और हिंदी लेसन्स 365 (Hindi Lesson 365) प्रयोग किए जाते हैं; जबकि पोडकास्ट के अंतर्गत लर्न हिंदी (Learn Hindi) और हिंदी पोड 101 (Hindi pod 101) संचालित हो रहे हैं।

कोर्सेरा (Coursera)– कोर्सेरा एक वैश्विक MOOC (massive open online course) है जो अमेरिका से संचालित होता है। इसकी शुरुआत सन 2012 ई. में स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी के कंप्यूटर साइंस के प्रोफेसर एंड्रयु इंग तथा डाफने कॉलर के संयुक्त प्रयास से हुई। कोर्सेरा विश्वविद्यालयों के साथ संबद्ध होकर विभिन्न विषयों में ऑनलाइन पाठ्यक्रम, सर्टिफिकेट तथा डिग्री कोर्स को संचालित करता है। वर्तमान समय में तीन सौ से अधिक विश्वविद्यालय एवं कंपनियाँ अपना कोर्स कोर्सेरा के माध्यम से प्रदान करते हैं। कोर्सेरा पर सूचीबद्ध पाठ्यक्रम चार से बारह सप्ताह के होते हैं। ये पाठ्यक्रम एक या दो घंटे के वीडियो लेक्चर के रूप में उपलब्ध होते हैं। इसके साथ ही साथ क्विज़, साप्ताहिक अभ्यास कार्य, परियोजना कार्य आदि भी दिए जाते हैं। कोर्सेरा के माध्यम से परास्नातक की डिग्री भी दी जाती है। इसमें मास्टर्स इन इनोवेशन एंड इंटरप्रेनरशिप (MSIE) तथा मास्टर्स ऑफ अकाउंटिंग (IMSA) प्रमुख हैं। कोर्सेरा के माध्यम से बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ यथा– गूगल, मेटा, आईबीएम आदि शिक्षार्थियों को डेटा एनालिटिक्स, डिजिटल मार्केटिंग, प्रोजेक्ट मैनेजमेंट, डेटा साइंस, यूएक्स डिजाइन, आईटी सपोर्ट आदि पाठ्यक्रम का पेशेवर सर्टिफिकेट भी प्रदान करती हैं।

एडएक्स (edX)– एडएक्स एक प्रकार का MOOC (massive open online course) प्रदाता है। इसकी शुरुआत सन 2012 ई. में एमआईटी तथा हार्वर्ड प्रशासन द्वारा की गई थी। सन 2013 ई. में इसे स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी का भी साथ मिला। इसके माध्यम से विश्व के लगभग सभी प्रतिष्ठित विषयों में शिक्षा एवं सर्टिफिकेट प्राप्त किया जा सकता है। भाषा शिक्षण के अतिरिक्त कंप्यूटर प्रोग्रामिंग, डेटा एनालिसिस, जीवविज्ञान, अर्थशास्त्र, भौतिकी, सामाजिक विज्ञान, मानव विज्ञान, गणित आदि विषय एडएक्स पर उपलब्ध हैं। एडएक्स विभिन्न प्रकार के भाषा पाठ्यक्रम जैसे– अंग्रेजी, स्पेनिश, फ्रेंच, रशियन, मंडारिन, पुर्तगाली, जापानी आदि का ऑनलाइन पाठ्यक्रम उपलब्ध कराता है। यह उन लोगों के लिए महत्त्वपूर्ण हो सकता है जो कि कक्षा के अनुशासन से अलग होकर मुक्त रूप से भाषा के प्रवाह में स्वयं को विसर्जित करना

चाहते हैं।

एडएक्स ने पिछले कुछ वर्षों से विश्व के प्रतिष्ठित विश्वविद्यालयों के साथ जुड़कर सीखने की जटिलता को सरल बनाने का कार्य किया है जिसमें उसे माइक्रोसॉफ्ट, टेक महिन्द्रा, जॉर्जिया इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी, यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया, एरिजोना स्टेट यूनिवर्सिटी आदि का भी सहयोग प्राप्त हुआ। शैक्षिक कार्यों के अतिरिक्त एडएक्स डेटा संग्रह एवं उसके विश्लेषण पर भी कार्य करता है जिसका प्रयोग दूरस्थ शिक्षा में अनुसंधान के लिए किया जाता है।

इधर कुछ वर्षों से यूट्यूब पर भी निःशुल्क हिंदी शिक्षण का कार्य विभिन्न चैनलों के माध्यम से हो रहा है। इनमें हिंदी टीचर, हिंदी लेसन्स 365 आदि प्रमुख हैं।

कुछ भाषा विनिमय वेबसाइटों के माध्यम से भी हिंदी सीखी जा सकती है। इटालकी (italki) वेबसाइट के माध्यम से हिंदी शिक्षकों से जुड़ा जा सकता है तथा उनसे ऑनलाइन कक्षा की जा सकती है। वार्तालाप विनिमय (Conversation Exchange) के माध्यम से स्थानीय हिंदी वक्ताओं के साथ हिंदी में वार्तालाप कर अभ्यास किया जा सकता है।

हिंदी भाषा एवं साहित्य से संबंधित ई–पुस्तक kindle books और Google Play Book पर उपलब्ध हैं। साथ ही, ऑडियोबुक्स Audible पर उपलब्ध हैं जहाँ किसी साहित्य को ऑडियो के रूप में सुना जा सकता है।

फ्लैशकार्ड टूल्स भी हिंदी शिक्षण का एक महत्त्वपूर्ण साधन है जिसमें अनेक प्रकार से हिंदी शिक्षा के उपाय प्राप्त होते हैं। ऐंकी एक डिजिटल फ़्लैशकार्ड है। इसके माध्यम से हिंदी की शब्दावली का स्मरण किया जा सकता है। क्विजलेट भी एक प्रकार डिजिटल फ्लैशकार्ड है। इसके माध्यम से नवीन फ़्लैशकार्ड निर्माण के साथ–साथ पूर्वनिर्मित कार्ड का भी प्रयोग किया जा सकता है।

अन्य टूल्स में गूगल ट्रांसलेट का प्रयोग त्वरित अनुवाद एवं शब्दकोश की जानकारी के लिए किया जाता है। हिंदी कीबोर्ड ऐप का प्रयोग हिंदी भाषा में टाइपिंग के अभ्यास के लिए किया जाता है।

कुछ प्रचलित पॉडकास्ट एवं ब्लॉग जैसे कि "Hindi Language and Culture" तथा "Learn Hindi with Fun" आदि हिंदी सीखने के अनुभव को प्रभावशाली और आनंदमय बना सकते हैं।

इस प्रकार देखा जाए तो हिंदी शिक्षा के लिए पारंपरिक साधनों के साथ अनेक तकनीकी साधन भी उपलब्ध हैं जो कम खर्च में समय एवं स्थान की सीमाओं को अतिक्रमित कर अहर्निश (24X7) हिंदी शिक्षण का कार्य कर रहे हैं।

❑❑❑

संत कबीर तथा समर्थ रामदास स्वामी के विचारों के माध्यम से तनाव प्रबंधन कौशल का विकास : तुलनात्मक अध्ययन

प्रो. सुनील बाबुराव कुळकर्णी 'देशगव्हाणकर'
मराठी एवं हिंदी भाषा के चर्चित साहित्यकार एवं अनुवादक। संप्रति : निदेशक, केंद्रीय हिंदी संस्थान, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नयी दिल्ली एवं राष्ट्रीय सिंधी भाषा विकास परिषद, नई दिल्ली।

वंगीशा रोहिदास सरोदे
शोधार्थी, बाबासाहेब आंबेडकर मराठवाड़ा विश्वविद्यालय, संभाजी नगर

आधुनिक समय में तनाव एक मुख्य स्वास्थ्य समस्या बन गया है। रोजमर्रा की जिंदगी में जहाँ मनुष्य मशीन से भी अधिक गति से दौड़ना चाहता है वहाँ इस तरह की समस्या व्यक्ति को और भी असहज, बेचैन, अस्थिर और व्याकुल बना रही है। इस तरह की नकारात्मक मानसिकता का परिणाम शरीर पर हो रहा है। हृदय रोग, मधुमेह, चिंता, अवसाद जैसी शारीरिक तथा मानसिक समस्याओं से घिरा व्यक्ति शांति ढूँढ रहा है।

संत साहित्य और तनाव प्रबंधन कौशल

तनाव एक ऐसी मानसिक बीमारी है जो हमारे जीवन के सारे पहलुओं को प्रभावित करती है। ऐसे में संत साहित्य जो अनंत काल से भारतीय समाज का मार्गदर्शन कर रहा है, महत्त्वपूर्ण धारा बन गया है। मनुष्य के मन की उदासी, आपाधापी और तनाव के बीच संतों ने अक्सर हमें संतुलित जीवन कैसे जिएँ, इसका मार्गदर्शन किया है। मानवीय मूल्य जैसे प्रेम, करुणा का महत्त्व बताकर अनासक्त मानसिकता को कैसे बढ़ावा दे सकते हैं, यह बताया है। समाज में व्यक्ति एक साथ कई भूमिका निभा रहा होता है। इन भूमिकाओं का वहन करते–करते वह थक जाता है। यह थकावट ही अवसाद का कारण बन जाती है। जीवन का उद्‌देश्य कहीं–न–कहीं वह खोने लगता है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि एक पल ऐसा भी आता है जहाँ वह स्वयं को ही खो देता है। यह वह स्थिति है जिसे तनाव की चरम सीमा कहा जा सकता है। ऐसे में संत साहित्य विशेष रूप से संत कबीर तथा समर्थ रामदास स्वामी के विचारों में निहित तनाव प्रबंधन कौशल अस्थिर मन को स्थिर, आसक्त को अनासक्त, मोह से त्याग की ओर प्रेरित तथा संसार की अनित्यता का ज्ञान करवाता है।

 ISSN 0523-1418

संत कबीर के विचारों में तनाव प्रबंधन कौशल

सुखिया सब संसार है खाए अरु सोवे।
दुखिया दास कबीर है जागे अरु रोवे।[1]

संत कबीर ने संसार में रहने वाले सुखी व्यक्ति की व्याख्या की है। ऐसे लोग जो अपने आप को सुखी मानते हैं, क्या वे सही अर्थ में सुखी हैं? खाना–पीना तथा सोना ही उनका जीवन है। अर्थात् ऐसे लोग बेहद अंधकारमय जीवन जी रहे हैं। अज्ञान से ग्रसित ऐसी मानसिकता वाले लोग सुख की न सही परिभाषा जानते हैं न अर्थ। यहाँ संत कबीर ईश्वर के प्रति समर्पण और विश्वास की भावना में सच्चा सुख खोजते हैं। वे दुखी हैं संसार में रहने वाले लोगों को देखकर, जो केवल भौतिक वस्तुओं में सुख खोज रहे हैं। संत कबीर चाहते हैं संसार में रहने वाला हर व्यक्ति मुक्तिपथ को समझे। इस समझदारी की ओर कदम बढ़ाना भी जीत का आरंभ है। हम अक्सर अपने जीवन भर इस खोज में भटकते रहते हैं कि कहीं तो सुख प्राप्त हो, शांति मिले, ईश्वर के दर्शन हों। तनाव हमें इस भाँति बेचैन कर देता है कि लगता है तुरंत इसका हल निकले और फिर हमारी भटकन आरंभ हो जाती है। कबीर के अनुसार यहाँ–वहाँ भटकने से अच्छा है, हम अपने आप को देखें। अपनी नकारात्मक मानसिकता को बढ़ावा न दें। सकारात्मकता के साथ हर संकट का सामना करें। यही तनाव प्रबंधन कौशल का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। यदि हम मन और शरीर दोनों को अलग–अलग रूप में पहचान लें तो सांसारिक सुख–दुख हमें प्रभावित नहीं करेंगे।

कस्तूरी कुंडली बसे मृग ढूंढे बन माहि।
ऐसे घटि–घटि राम हैं दुनिया देखे नाहि।।[2]

मृग का उदाहरण देकर संत कबीर समझाते हैं कि कस्तूरी नामक सुगंधित पदार्थ मृग की अपनी नाभि में विद्यमान होता है, इस बात से अनजान वह वन में घूमता रहता है। उसे लगता है कि खुशबू उसके भीतर से नहीं बल्कि बाहर से आ रही है। मनुष्य का भी ऐसा ही स्वभाव है, उसमें ईश्वर रूपी गुण समाए हैं पर वह तीर्थ स्थानों में भटकता रहता है। इस भटकने में तनाव की व्यापकता अधिक बढ़ जाती है। संत कबीर का मानना था कि आपकी वाणी, आपका विचार, आपका व्यवहार ही आपको ऊँचा बनाता है। यदि हमारा व्यवहार संतुलित हो और हम किसी का मन न दुखाएँ तो हम तो सुखी होंगे ही, औरों को भी सुख देने में सफल होंगे। हम जो देते हैं, वही तो लौटकर हमारे पास आता है। व्यक्ति यदि अहिंसा, क्षमा, धैर्य, संतोष, सादगी आदि को अपने जीवन का आधार बनाए तो सच्चा सुख सहज प्राप्त होगा। जो है, उसमें संतुष्ट रहना ही तो सुख है। असंतोष ही मनुष्य के जीवन को दुख में डाल मोह–माया, लालच से लिप्त हो बेचैन होने का कारण बनता है। निःसर्ग का नियम है कि जहाँ आरंभ है, वहीं अंत भी है। इस नियम को जो जी लेता है, वह तनाव से मुक्ति पाकर

ही रहेगा।

कबीर केवल राम कहि, सुधि गरीबी झालि।
कूड बडाई कूड़सी, भारी पड़सी काल्ही।।[3]

संत कबीर भक्तों को सलाह देते हैं कि राम नाम स्मरण करने से सुख प्राप्त होगा। संसार सुख में केवल दुख ही मिलेगा। सुख के प्रति आसक्त रहकर कामनाओं में ही जीवन बीतेगा।

कबीर सेरी संकड़ी, चंचल मनवा चोर।
गुण गावै लैली न होइ, कछु एक मन में और।।[4]

कबीर तनावमुक्त पथ का मार्गदर्शन करते हैं। उनके अनुसार यह सच है कि परमात्मा तक ले जाने वाला मार्ग मुश्किल है। मन बेहद चंचल तो है ही, वह लोभी भी है। लोकलज्जा से वह भगवान की भक्ति का ढोंग करता है पर असल में वह कई वासनाओं में लिप्त रहता है। यही कारण है कि कामनाओं में भरा पड़ा वह कभी भी अपने–आप को सुखी और संतुष्ट नहीं पाता।

मन के मते न चालिये, छाड़ी जीव की बाणी
ताकू केरे सूत ज्यों, उलटी अपूठा आणि।।[5]

यहाँ संत कबीर व्यक्ति को बता रहे हैं कि मन आवेग में आकर कई गलत कर्म करता है। इसलिए हमें मन की बात नहीं सुननी चाहिए। संसार में ऐसे कई जीव हैं जो मन के पीछे अर्थात् मन की बात सुनकर चलते रहते हैं। मनुष्य को मन में किसी भी तरह के संकल्प–विकल्प को उठने नहीं देना चाहिए और मन को वश में रखना चाहिए।

समर्थ रामदास स्वामी के विचार और तनाव प्रबंधन

समर्थ रामदास स्वामी महाराष्ट्र में रहने वाले कवि तथा समर्थ संप्रदाय के संस्थापक हैं। राम तथा महावीर हनुमान को अपना उपास्य मानकर उन्होंने कड़ी तपस्या की। अत्यंत सरल तथा सहज शब्दों में उन्होंने संतुष्ट जीवन कैसे जिएँ, इसका मार्गदर्शन किया। हर व्यक्ति को श्रवण, मनन तथा अध्यात्म, परमार्थ में समय बिताना चाहिए, ऐसा उनका कहना था। उन्होंने लिखा है कि विकारों से ग्रसित मन अपनी शुद्धता खो देता है। यदि व्यक्ति विकारों से ही दूर रहे तो शायद तनाव उसके आस पास भी ना आ पाए।

मना वासना दुष्ट कामा न ये रे।
मना सर्वथा पाप बुद्धि नको रे।।
मना सर्वथा नीति सोडु नको हो।
मना अंतरी सार विचार राहो।।[6]

इस तरह समर्थ रामदास स्वामी ने 'मनाचे श्लोक' ग्रंथ में मानवी मन को उपदेश दिया है। मनुष्य के आचार तथा विचार किस तरह प्रेरित होते हैं, मन किस तरह चंचल

है तथापि वह विकार ग्रस्त भी उतनी ही जल्दी हो जाता है, इसका विश्लेषण किया है। यदि मनुष्य भक्ति कर परमार्थ अपनाता है तो मन को नियंत्रित करना भी सहज हो जाता है। समर्थ रामदास स्वामी की रचनाओं की गहराई में सरल, सहज जीवनयापन तथा संतुष्ट जीवन जीने के बारे में बताया गया है। सामाजिक जीवन जीते–जीते व्यक्ति कई गलत कर्म करता है। सत्कर्म और दुष्कर्म का अंतर न समझते हुए गलत को सही और सही को गलत मानने लगता है। इस दुविधा भरी मानसिकता में बेचैन हो एकाग्रता खो देता है। इसलिए मनुष्य को सावधान करते हुए वे कहते हैं–

मना सज्जना भक्ति पंथेचि जावे।
तरी श्री हरि पाविजेतो स्वभावे।
जनी निंद्य ते सर्व सोडूनि दयावे।
जनी वंद्य ते सर्व भावे करावे।।[7]

इसके अलावा समर्थ रामदास स्वामी ने ऐसे कई श्लोकों की रचना की है जिसमें मन को वशीभूत कर व्यक्ति को परमार्थ में लगने की बात कही है। संसार में जो भी निंदनीय है, उसका त्याग कर वंदना करने योग्य बातों को अपनाना चाहिए।

गणाधीश जो ईश सर्वा गुणांचा।
मुळारंभ आरंभ तो निर्गुणाचा ।।
नमूं शारदा मूळ चत्वार वाचा ।
गमू पंथ अनंत या राघवाचा ।।1।।[8]

देवता गणेश सभी में अग्रसर हैं, गुणों से ओतप्रोत हैं। इनसे यदि हम जुड़ गए तो अपने भीतर के गुणों को भी बढ़ावा मिलेगा। माँ सरस्वती की अर्चना करना सर्वश्रेष्ठ है। भगवान श्रीराम को पाने के लिए भी हम प्रयास करेंगे अर्थात् सारे देवताओं के सद्गुणों को अपनाकर परमार्थ में कदम रखेंगे।

प्रभाते मनीं राम चिंतीत जावा।
पुढें वैखरी राम आधीं वदावा ।।
सदाचार हा थोर सोडूं नये तो ।
जनीं तोचि तो मानवी धन्य होतो ।।3।।[9]

दिन की शुरुआत श्रीराम के दर्शन से हो। अर्थात् प्रयास हो कि दिन का आरंभ ही सत्य वचन से हो। सत्य का चिंतन–मनन ही आध्यात्मिक संसार की नींव है। सदाचार व्यक्ति के चरित्र को अधिक बल देता है। ऐसे लोग ही मनुष्य के रूप में आदर्श कहे जाते हैं। औरों के प्रति मन में दुष्ट भाव न हो। पापयुक्त मन जो गलत सोचता है, किसी काम का नहीं। नीतिमत्ता जीवन का अलंकार होना चाहिए।

मना पापसंकल्प सोडूनि द्यावा।

मना सत्यसंकल्प जीवीं धरावा।।
मना कल्पना ते नको वीषयांची।
विकारें घडे हो जनीं सर्व ची ची ।।5।।[10]

संकल्प करें तो केवल सत्य का करें। व्यक्ति अक्सर इंद्रिय सुखों में ही लिप्त रहता है। उसे समझना चाहिए कि यह सब अनित्य है।

नको रे मना क्रोध हा खेदकारी।
नको रे मना काम नाना विकारी।।
नको रे मना सर्वदा अंगिकारू।
नको रे मना मत्सरू दंभ भारू।।6।।[11]

जीवन में कोई भी कर्म ऐसा न करें जिससे पछतावा हो। अपने मन को विकारों से दूर रखें। मन में न किसी के प्रति मत्सर हो और न ही द्वेष।

मना श्रेष्ठ धारिष्ट जीवी धरावे।
मना बोलणे नीच सोशीत जावे।।
स्वये सर्वदा नम्र वाचे वदावे।
मना सर्व लोकांसि रे नीववावे ।।7।।[12]

धैर्य अर्थात् धीरता से कार्य करें। लोकस्वभाव से विचलित न हो। नम्रतापूर्ण व्यवहार को धारणकर औरों को भी सुख दें।

इस तरह इन दोनों संतों की रचनाओं में निहित तनाव प्रबंधन कौशल वर्तमान समय में वरदान है। तनाव के कारण व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक तथा व्यावहारिक संतुलन बिगड़ जाता है। संत साहित्य में अनासक्ति, अनित्यता का पाठ पढ़ाया जाता है। ईश्वर के प्रति समर्पण, आत्मज्ञान, सत्संग, नाम स्मरण, सेवा, करुणा तथा सरल जीवन से भौतिक वस्तुओं के प्रति आकर्षण कम हो जाता है। इस तरह संत कबीर तथा समर्थ रामदास स्वामी के विचारों में एक अनमोल खजाना है जो जीवन के हर मोड़ पर हमारा मार्गदर्शन करता है। मानवीय तनाव प्रबंधन के लिए कई गहरे और व्यावहारिक उपाय मौजूद हैं। इनके द्वारा रचित दोहे, साखी, श्लोक तनावरहित जीवन जीने की कला सिखाते हैं।

विचारों की समानता

समर्थ रामदास स्वामी ने जहाँ मन को प्रमुख कहा है, वहीं संत कबीर ने भी मन को ही नियंत्रण में रखने की बात कही है। संत कबीर उत्तर प्रदेश में रहने वाले हैं तो समर्थ रामदास स्वामी महाराष्ट्र के जालना जिले में स्थित गाँव जामखेड़ से हैं। दोनों ही संतों के विचारों को अपनाने पर पता चलता है कि दुखों से मुक्ति का ज्ञान या, यूँ कहिए, अनुभूति की कोई सीमा नहीं है। यह अनुभव सार्वकालिक, सार्वजनीन है। संसार में बसा हर कोई तनाव का सामना करने का प्रयास कर रहा है। तनाव

प्रबंधन कौशल को बढ़ाने हेतु परमार्थ को अपनाना सबके हित में है। फिर वह रास्ता दुनिया के किसी भी प्रदेश, प्रांत से गुजरकर क्यों न निकलता हो। आखिर इसका उद्‌देश्य केवल और केवल मानसिक शांति और तनाव से मुक्ति है।

संदर्भ सूची–

1. The Hindi Academy - https://www.thehindiacademy.com
2. Navbharat Times - https://navbharattimes.indiatimes.com
3. कबीर ग्रंथावली–डॉ. श्यामसुंदर दास, पृष्ठ क्र.132
4. वही पृष्ठ क्र. 133
5. वही पृष्ठ क्र. 132
6. मनाचे श्लोक–समर्थ रामदास स्वामी, गोरखपुर प्रकाशन, पृष्ठ क्र. 5
7. वही पृष्ठ क्र. 5
8. वही पृष्ठ क्र. 5
9. वही पृष्ठ क्र. 5
10. वही पृष्ठ क्र.6
11. वही पृष्ठ क्र.6
12. वही पृष्ठ क्र.6

अन्य संदर्भ ग्रंथ

1. कबीर–आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी
2. कबीर ग्रंथावली–डॉ. श्यामसुंदर दास
3. श्री दासबोध–श्री समर्थ रामदास स्वामी, भट आणि मंडली, बुधवार पेठ, पुणे
4. मनाचे श्लोक– श्री समर्थ रामदास स्वामी
5. जीवन जीने की कला–सत्यनारायण गोयनका, विपश्यना रिसर्च इंस्टीट्‌यूट, इगतपुरी
6. मन बनाएँ ऊर्जावान–गौर गोपाल दास
7. Stop overthinking -Nick Traton, पेंग्विन प्रकाशन

❑❑❑

रामदरश मिश्र की कविताओं में प्रकृति–चित्रण

डॉ. आलोक रंजन पांडेय

एसोसिएट प्रोफेसर हिंदी विभाग,
रामानुजन कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

हिंदी साहित्य को प्रकृति के प्रति संवेदना एवं प्रकृति का उपमान के रूप में प्रयोग संस्कृत साहित्य से परंपरास्वरूप प्राप्त हुआ। समय और भाषिक परिवर्तन के साथ ही प्रकृति के प्रति देखने का नजरिया भी बदलने लगा। जिस प्रकार प्रकृति को द्विवेदी युग में देखा जाता था, उस प्रकार छायावाद के वक्त नहीं। जहाँ पहले चित्रण में इतिवृत्तात्मकता थी, वहीं कालांतर में वह आश्रय के रूप में प्रयोग होने लगी। इसी क्रम में आगे बढ़ते हुए जब प्रगतिशील आंदोलन चला तो पुनः प्रकृति चित्रण हुआ लेकिन वह अब मजदूर और किसानों के पक्ष में खड़े होकर प्रकृति को देखने के नजरिये से हो रहा था। इस प्रकार भिन्न–भिन्न रूप में प्रकृति का काव्य में चित्रण होने लगा। रामदरश मिश्र की कविताएँ इस परंपरा में अगली कड़ी का कार्य करती हैं। उनकी कविता में प्रकृति अनेक रूपों में व्याप्त है। उनके लिए प्रकृति क्या थी, इस विषय में वे कहते हैं, "लेकिन मैं तो उस गाँव की बात कर रहा हूँ जिसमें यह शक्ति थी और जहाँ से मैंने जीने की शक्ति, जीवन के प्रति आस्था और मूल्य प्राप्त किए हैं, प्रकृति से जूझने की शक्ति और उससे रस ग्रहण की सहृदयता पाई है। यह मेरी ठोस जमीन है जो मुझमें और मेरे लेखन में रही है, या मैं और मेरा लेखन जिस पर रहे हैं।"[1] यह कथन ही उनके प्रकृति के संग साहचर्य को दिखाने के लिए पर्याप्त है। प्रकृति कविता में उसके बचाव के लिए तो आती ही है, साथ ही अनेक रूपों में भी आ सकती है।

रामदरश मिश्र की कविताओं में प्रकृति के जो विभिन्न स्वरूप मिलते हैं, उनमें से कुछ ऐसे हैं जिनमें वह प्रकृति से ही माँगते हैं बजाय ईश्वर के। वह अपनी इच्छा उसी प्रकृति के प्रति प्रकट करते हैं जैसे–

"ओ वसंत की हवा।
कंठ यह गीतों से भर दो
कि जड़ नीरवता को स्वर दो

शाखाओं के संग आया
मैं हिम–रातें पीता
शाखाएँ ये फूल बन गईं
मैं रीता का रीता
रीती आँखों में फूलों के
दीप–दीप धर दो
माँगता शून्य गुलमोहर दो"[2]

यह जो इच्छा है, वह प्रकृति से उन्मुख है। वे प्रकृति को ही रचना का स्रोत मानते हुए उसी की उर्वर भूमि से रचना एवं रचना में गीत से भरे स्वर भी माँगते हैं।

कवियों ने रात्रि का जो चित्रण किया है उसमें रामदरश जी के यहाँ एक अलग शैली देखने को मिलती है–

"चाँदनी यह
जो बिखरती थी जवानी की फसल पर डहडही हो
ढारती थी अमृत झर–झर पुष्प–शैशव पर
आज.........
बंद ऑफिस में
मेज पर माथा झुकाए
थकी सी मुस्कान रह–रह बाँचती है
मैं नहीं हूँ?"[3]

इस प्रकार व्यक्ति के पास चाँदनी का आना और उसका आना भी किस तरह मानो गाँव की पगडंडियों से वह आ रही हो। जो यहाँ फसलों पर फैली दिखती है और फूलों पर शरद पूर्णिमा समान अमृत उड़ेलती है, वह एक ऑफिस की मेज पर पहुँचकर एकाएक अपनी भाव–भंगिमा में परिवर्तित होकर अलग स्वरूप ले लेती है जिससे एक कंट्रास्ट–सा उत्पन्न होता है।

रात के बाद हम उनके यहाँ धूप के चित्रण को भी इसी प्रकार से एक अलग रूप में देख सकते हैं–

"देखो
धूप में टहकते इस फूल को देखो
यह तुम्हें बाँधेगा नहीं
तुम्हारी आँखों को तरावट देगा
आँखों में रेत भरकर
रेगिस्तान से नहीं लड़ा जा सकता"[4]

इस प्रकार यह कविता धूप से नज़रें चुराने को रोकती है। वह प्रकाश के साथ

आगे बढ़ने को कहती है। रेत आँखों में भरकर रेगिस्तान से लड़ने का बिंब एक सुंदरता और चमत्कार से भरता है साथ ही प्रकृति के साथ साहचर्य को भी दिखाता है। यह जो प्रकृति का साहचर्य है और उसके साहचर्य से मनुष्य को मिलने वाली प्रेरणा है, वह कवि के यहाँ अनेक स्थानों पर दिखाई देती है। जैसे एक स्थान पर वे कहते हैं—

"अभी भी आँखों को खींचते हैं
फूल, पत्ते, मौसम, ऋतुएँ
और मैं उनमें संवाद करता—करता
महकने लगता हूँ
अभी भी प्राणों में उतर आती है
* * * * *
नदी—सा भाने लगता है
अभी भी कानों में गूँज उठता है
हवा, पानी और चिड़ियों का संगीत"[5]

ऐसे स्थानों पर कवि का तादात्म्य प्रकृति के साथ स्थापित होता है और वह स्वयं प्रकृतिमय होने लगता है। इस प्रकार की कविताएँ मिश्र जी की जीवन शक्ति हैं जिसके विषय में इस लेख के पूर्वार्ध में बताया गया है। इसी तादात्म्य की शृंखला को अगर आगे बढ़ाएँ तो अनेक रूपों में वह दिख सकती है। वे एक स्थान पर लिखते हैं—

"यह वायवीय आकाश
तुम्हारा पिता हो या न हो
यह धरती तुम्हारी माँ है
यह जो तुम्हें अन्न दे रही है पानी दे रही है
तुम्हारी रगों में एक ही खून की रवानी दे रही है
तब तुम्हें लगेगा कि
तुम सब एक ही दर्द को जीते हुए
एक ही सपना देखते हुए
सगे भाई हो"[6]

विश्वबंधुत्व की अवधारणा को मानने के पीछे प्रकृति को एक सार्वभौम कारण के रूप में स्थापित करना और महाभारत से चली आ रही परंपरा को इस ढंग से निर्वाहित करना रामदरश मिश्र से इतर संभव नहीं था। इलियट के शब्दों में कहा जाए तो यह एक इतिहासबोध के साथ—साथ परंपरा का बोध भी है जिसके बिना कवि अधूरा ही है। कवि के यहाँ पर काव्य रचते समय वही गति है जो गणेश की वेदव्यास के साथ महाभारत लिखने के रूपक में आती है यानि साहित्य रचते वक्त कलम न रुके का अर्थ होता है वह तर्क न करने लगे। भावना और संवेदना का स्वच्छंद प्रवाह भी होता

रहे। कवि के यहाँ भी तर्कों का अतिरेक नहीं मिलता, साथ ही वे भावनाओं में बहते भी नहीं। वे कहते हैं–

"मेरे सबसे अच्छे दिन वे होते हैं
जब मैं आज की धरती पर
कल का आकाश रचने वाली
अंगुलियों में होती हूँ"[7]

इस प्रकार हम यह तथ्य अनेक बार उनकी ही कविताओं के माध्यम से सिद्ध कर सकते हैं कि उनके लेखन की शक्ति उन्हें प्रकृति के साहचर्य से ही प्राप्त होती है। वे रचनाशील होते ही तभी हैं जब वे प्रकृति से जुड़ते हैं। हालाँकि वे इस प्रकृति के प्रति चिंतित भी होते हैं। वे सूखे का वर्णन कुछ इस प्रकार करते हैं–

"देख क्षितिज की ओर चिता सी जलती है प्यासी चिनगारी
जलते जीवित प्राण, मचलते धुएँ उठ रहे बारी–बारी
पश्चिम से पूरब तक झक–झक छींट रहा आग समीरण
उन्मुख लोचन कहती 'आ घन' देख रही नभ धरती रानी
भर दो पानी"[8]

इस प्रकार वह चिंतित होकर मनुष्य से इस दुर्दशा को पलटने के लिए जरूरी कार्य करने का भी आह्वान कर रहे हैं और जब ऐसा हो, तभी जीवन चलने की बात करते हैं।

रामदरश मिश्र के यहाँ प्रकृति मानवीय विडंबना और समाज की विसंगतियों को दर्शाने के संदर्भ में भी आती है। वह कहते हैं–

"लगता है
मैं भी कहीं खो गया हूँ इस अनाम जंगल में
अपने में अपने से अलग
जो रह–रहकर पुकारता है
मेरा नाम।"[9]

यहाँ अनाम जंगल एक समाज के प्रतीक के रूप में आता है। वह जंगल जिससे व्यक्ति के अलग होने की संभावना ही नहीं है। वह तो उस कुचक्र में शामिल ही है और वह उन्हें बार–बार पुकारता है यानि बार–बार अपनी गिरफ्त में कर लेता है। व्यक्ति इससे बाहर नहीं जा सकता क्योंकि यह जंगल है जो सघनता एवं भटकाव के अर्थ को भी ध्वनित करता है।

उनके यहाँ कुछ कविताएँ इस ढंग से भी आती है जहाँ पर वह पर्यावरण नष्ट होने के चक्रीय प्रभाव को भी दिखाता है। यह प्रभाव एक श्रृंखला बनाता है जो पुनः प्रकृति के चक्र पर पहुँचकर ही पूरी होती है।

"वह कुल्हाड़ी से काटता है पेड़
उसे पता नहीं कि वह पेड़ नहीं
धीरे–धीरे अपना घर काट रहा है
वह लकड़ियाँ बेचता है
उसे पता नहीं कि वह लकड़ियाँ नहीं
धीरे–धीरे बस्ती के हाथों
अपनी छाँहें बेच रहा है"[11]

यह समस्त मनुष्य के प्रति चिंता है, न केवल किसी एक वर्ग के प्रति। वे इस नष्ट होती प्रकृति को अपने जीवन के पल–पल नष्ट होने की तरह भी देखते हैं–

"पत्ते झर रहे हैं
यायावर हवा उन्हें उड़ाए जा रही है
कहाँ से कहाँ तक.........
उद्यान के आँगन में एक विषण्ण राग बज रहा है
नंगे होते जा रहे हैं पेड़
मैं अपने में खोया हुआ
उदास–उदास सा देख रहा हूँ जीवन का जाना"[12]

यह कितने सरल बिंब का आभास दे सकता है परंतु नंगे होते पेड़ों के साथ ही ये 'उदास–उदास' का आना प्रकृति में पेड़ से पत्ते झड़ने के समान आता है। उनके यहाँ प्रकृति उपर्युक्त रूपों के अलावा प्रतीकात्मक रूप से सामाजिक व्यंग्य का रूप भी धारण करके आती है। 'हम कहाँ हैं' ऐसी ही एक कविता है जिसमें वे कहते हैं–

"हर एक की टोपी के नीचे एक गिद्ध छिपा है
हर एक दूसरे गिद्ध को ललकारता है
और सबके गिद्ध मिलकर बस्ती पर मंडरा रहे हैं
गिद्धों के पंजों में टंगे हुए
बस्ती के लोग छटपटा रहे हैं
वे इन लोगों के बीच गिरते हैं, टूट जाते हैं
और ये लोग
उनकी टूटी हुई टांगें और भुजाएँ
भाँजते हुए आपस में लड़ने लगते हैं
अजीब है"[13]

इस प्रकार यहाँ पर गिद्ध आजादी से पूर्व साहूकार एवं बाद में सरकार के प्रतीक हैं। इस ढंग की कविताओं में वे प्रतीकात्मक रूप से प्रकृति का प्रयोग करते हैं। वे स्वयं को विपक्ष में रखते हुए भी ऐसी कविताएँ लिखते हैं–

"हमारे हाथ में सोने की नहीं
सरकंडे की कलम है
सरकंडे की कलम
खूबसूरत नहीं, सही लिखती है
वह विरोध के मंत्र लिखती है
प्रशस्ति पत्र नहीं लिखती है
हम कठघरे में खड़े हैं खड़े रहेंगे
और कठघरे में खड़े हर उठे हाथ को
अपने हाथ में ले लेंगे"[14]

यह बेचैनी जो उनकी खोई हुई पहचान की है, एक तरफ तो उनके स्वयं के अस्तित्व के बचाव से जुड़ी हुई है, दूसरी तरफ यह राजनीतिक कुचक्र एवं शक्ति के विभिन्न केंद्र बनने पर स्वयं की धूमिल होती अस्मिता को भी बचाव के तरीके दिखा रही है।

इसी प्रकार 'सेमल' कविता भी अपनी क्रांतिधर्मिता के दर्शन को लिए हुए एक महत्त्वपूर्ण रचना के रूप में हमारे समक्ष आती है। इस कविता में कवि कहते हैं–

"प्रिय
तुम आए तो
मैं अपना हाड़–हाड़ फोड़कर
तुम्हारे लिए फूट पड़ा
और मेरा सारा रक्त फूल बनकर दहकता रहा
अब इसमें मेरा क्या कसूर
कि मेरे सर्वस्व–समर्पण को भी
तुम अपनी गंध नहीं दे सके
और औरों का अधूरा समर्पण भी
तुम्हारी दी हुई साँस से महकता रहा"[15]

इस प्रकार की कविताएँ नये बदलाव के माँग की कविताएँ हैं। रक्त–फूल जैसे सेमल पर लगे फूल एक प्रतीक रूप से क्रांति की शुरुआती आग को दर्शाते हैं। कवि इन प्रतीकों से जिस बदलाव की माँग कर रहा है, वह एक अन्य कविता में जाकर मिलती है जिसमें वे लिखते हैं–

"आओ
इस तट पर फिर हस्ताक्षर कर दें
मालूम है कि
इन्हें लहरें फिर बहा ले जाएंगी

लेकिन हम फिर करेंगे हस्ताक्षर
और एक दिन देखेंगे कि
लहरों में बेचैनी छाई है
उनका पेट फाड़कर
उनके माथे पर
हमारे हस्ताक्षरों की जलती पंक्ति उग आई है"[16]

इस प्रकार की कविताओं में छायावादी शिल्प होने के बाद भी पूरी कविता प्रगतिशील धड़े में जा खड़ी होती है, लहरों का यहाँ होना जयशंकर प्रसाद की कविताओं की लहरों की अगली कड़ी है। वह वहाँ रुकी हुई नहीं है। लहर यहाँ स्वयं में प्रगति की सूचक के रूप में आई है। यहाँ पेट फाड़कर जैसे मुहावरे का आना धरती फोड़कर पौधे उगने के साम्य में है जो क्रांतिधर्मिता को दर्शाता है। इस ढंग से यह कविता एक अलग धरातल की बन जाती है। इसी प्रकार बाजार के आने पर वह प्रकृति को उस संदर्भ में भी प्रयोग करते हैं। 'फिर वही लोग' शीर्षक कविता में वे कहते हैं–

"हाँ खड़ा है एक एक सांस्कृतिक नगर
और भीतर की रंगीन गुफाओं में
आज की धुन पर
लड़खड़ा रहा है
एक नंगा प्यासा जंगल
जिसके पौधे पेरिस और न्यूयॉर्क से मंगाए गए थे"[17]

यह कविता भारत में बाजार के आने और संपूर्ण भारतीय समाज और संस्कृति पर उसका प्रभाव छाने की है जहाँ पर सांस्कृतिक त्योहार में भी पेड़ों का स्थान गमले में उगे हुए बोन्साई के पौधे ले लेते हैं और इस प्रकार से संस्कृति की एक मूल अवधारणा का ही पतन हो रहा है। अजय तिवारी इस पर्यावरणीय संकट को इस प्रकार से लिखते हैं, ''आज के पर्यावरणवादी सरोकार ने हमें सचेत कर दिया है कि प्रकृति का विनाश करके मनुष्य भी सुरक्षित नहीं रहेगा। पानी की तंगी, पर्यावरण का प्रदूषण, बढ़ती गर्मी, पिघलती बर्फ आदि मनुष्य समाज के लिए नहीं, ब्रह्मांड के समस्त जीव–जन्तुओं और वनस्पतियों के लिए खतरे हैं।''[18]

इस प्रकार देखा जा सकता है कि रामदरश मिश्र की कविताएँ हालाँकि अनेक पक्षों को स्पर्श करती हैं, फिर भी उन्होंने प्रकृति के चित्रण के माध्यम से जितने पक्षों को प्रतीकात्मक रूप से छुआ है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। वे जहाँ एक ओर प्रकृति की रक्षा की बात करते हैं एवं उसके महत्व को काव्यात्मक ढंग से पिरोते हैं, वहीं वे अपने एकाकीपन को दर्शाने के लिए भी प्रकृति का आलंबन लेते हैं। वे प्रकृति को एक ऐसी सत्ता के रूप में दर्शाते हैं जहाँ से हम अनेक प्रकार के प्रतीक उठाकर समाज की

कुव्यवस्था की भी आलोचना कर सकते हैं। उन्होंने इस चीज को संभव कर दिखाया है। उनके यहाँ प्रकृति निरीह और जड़ नहीं है बल्कि वह मनुष्य के जीवन में हर कदम पर दखल भी देती है। उनकी कविताएँ प्रगतिशील समय से लेकर अभी बाजार के आगमन तक के वक्त में आती हैं। ये सभी कविताएँ प्रकृति–चित्रण के माध्यम से मानव मन के साथ ही राजनीतिक स्वर भी लिए हुए हैं। अतः रामदरश मिश्र हमारे युग के उन कवियों में से एक हैं जो प्रकृति–चित्रण को संवेदना के उस स्तर पर ले जाते हैं जहाँ से वे इसमें स्वयं अर्थों का निर्माण करते हैं।

संदर्भ सूची–

1. नित्यानंद तिवारी, ज्ञानचंद्र गुप्त (सम्पा.) रचनाकार रामदरश मिश्र
2. रामदरश मिश्र, स्मिता मिश्र (सं.), रामदरश मिश्र रचनावली खंड एक, पृ. 239
3. वही, पृ. 124
4. वही, पृ. 122
5. रामदरश मिश्र, स्मिता मिश्र (सं.), रामदरश मिश्र रचनावली खंड दो, पृ. 367
6. वही, पृ. 63
7. रामदरश मिश्र, आम के पत्ते, पृ. 19
8. रामदरश मिश्र, स्मिता मिश्र (सं.), रामदरश मिश्र रचनावली खंड एक, पृ. 61
9. वही, पृ. 10
10. वही, पृ. 437
11. रामदरश मिश्र, स्मिता मिश्र (सं.), रामदरश मिश्र रचनावली खंड दो, पृ. 194
12. रामदरश मिश्र, आम के पत्ते, पृ. 120
13. रामदरश मिश्र, स्मिता मिश्र (सं.), रामदरश मिश्र रचनावली खंड एक, पृ. 493
14. वही, पृ. 456
15. वही, पृ. 384
16. वही, पृ. 462
17. रामदरश मिश्र, स्मिता मिश्र (सं.), रामदरश मिश्र रचनावली खंड दो, पृ. 78
18. रामदरश मिश्र, स्मिता मिश्र (सं.), रामदरश मिश्र रचनावली खंड एक, पृ. 365
19. उषा नायर (सं), पारिस्थितिक संकट और समकालीन रचनाकार, पृ. 128–129

❑❑❑

भारत के संविधान–निर्माण में महिलाओं की भूमिका

प्रो. संध्या वात्स्यायन

पाँच पुस्तकें प्रकाशित तथा कई समाचार पत्रों/पत्रिकाओं में लेख प्रकाशित तीन पुरस्कारों से सम्मानित। संप्रति दिल्ली विश्वविद्यालय के अदिति महाविद्यालय के हिंदी विभाग में शिक्षणरत।

किसी भी देश का संविधान उसकी प्रशासनिक एवं लोकतांत्रिक व्यवस्था, नागरिकों के हित एवं अधिकारों की रक्षा, सरकार की शक्तियों में संतुलन एवं जाँच और सामाजिक न्याय एवं समानता को सुव्यवस्थित बनाए रखने की एक सार्थक परिकल्पना का निर्माण करता है। अंग्रेजी भाषा में 'संविधान' के लिए constitution शब्द का प्रचलन है जिसका अर्थ होता है The constitution of this organisation has been done according to rules.[1] सरल शब्दों में समझें तो संविधान का अर्थ होता है कि एक ऐसा कानूनी दस्तावेज जिसका गठन नियमों के अनुसार किया गया हो जो देश की बुनियादी संरचना का निर्धारण करता हो और जिसके अनुरूप जनता शासित होती हो। एक नवीनतम शासन–व्यवस्था स्वतंत्र होने के बाद यह निर्धारित नहीं कर सकती कि वह शासन–कानून एवं व्यवस्था की संरचना को किस प्रकार बनाए। ऐसे में समय–समय पर चले आ रहे नियम, परंपरा तथा व्यवस्थाएँ आदि के आवरण में जनता को सार्थक रीति से बाँधना होता है और यही नियम–कानून 'संविधान' कहलाता है। 'संविधान' की परिभाषा देते हुए चंद्रकला मित्तल लिखती हैं कि "किसी राज्य की शासन–व्यवस्था के विविध अंगों की रचना, उनके पारस्परिक संबंधों, उनकी शक्तियों, उनके कर्त्तव्यों तथा समूची शासन व्यवस्था की मूल–भावना को निश्चित करने वाले नियमों के संग्रह को संविधान कहते हैं"।[2]

स्वतंत्र भारत को संगठित, संप्रभुत्व तथा बाहरी हस्तक्षेप के निवारण हेतु अपना एक संविधान चाहिए था हालाँकि संविधान की आवश्यकता स्वतंत्रता पूर्व ही फलित हो गई थी। भारत की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर दृष्टिपात करें तो हम पाते हैं कि भारतीय जनमानस लंबे समय से इस्लामी आक्रमण और इस्लामी राजतंत्र से पीड़ित था और इस्लामी शासन के पतन के बाद अंग्रेजी शासन की औपनिवेशिक तथा दमनकारी

नीतियों से शोषित था। मुगलकालीन एवं ब्रिटिश साम्राज्य की कुनीतियों का प्रभाव भारतीय समाज विशेषकर महिलाओं की स्थिति पर अधिक पड़ा। तत्कालीन परिवेश में महिलाओं की स्थिति दयनीय थी और उन्हें शिक्षा का अधिकार नहीं था। महिलाएँ बाल विवाह, सती प्रथा तथा विधवा विवाह आदि अनेक सामाजिक प्रतिबंधों से ग्रसित थीं जिसका निवारण उस समय के महापुरुषों–राजा राममोहन राय, दयानंद सरस्वती, स्वामी विवेकानंद आदि ने किया जिसके फलस्वरूप अंग्रेजी सरकार को इन्हें समाप्त करने के लिए कानून बनाने पड़े। महिलाओं के लिए स्वास्थ्य सेवाएँ भी बहुत अल्प थीं जिसके कारण उन्हें अक्सर प्रसव और अन्य स्वास्थ्य समस्याओं का सामना करना पड़ता था। इन सभी समस्याओं के बावजूद महिलाओं ने औपनिवेशिक काल में सामाजिक और राजनैतिक परिवर्तन के लिए संघर्ष किया और अपने अधिकारों के लिए लड़ाई लड़ी थी। औपनिवेशिक काल में महिलाओं को मताधिकार भी प्राप्त नहीं था। उन्हें यह अधिकार दिलाने के लिए सन् 1917 में डॉ. एनी बेसेंट के निर्देशन में अखिल भारतीय महिला सम्मेलन का गठन किया गया था। सम्मेलन की ओर से श्रीमती सरोजिनी नायडू के नेतृत्व में एक महिला प्रतिनिधि मंडल मांटेग्यू से मिला जिसके परिणामस्वरूप भारत सरकार अधिनियम, सन् 1919 में यह प्रावधान किया गया कि जो प्रांत चाहे वह महिलाओं को मताधिकार दे सकता है जिसके फलस्वरूप भारत सरकार अधिनियम, सन् 1935 में केंद्रीय प्रांतीय व्यवस्थापिकाओं में महिलाओं को भी मताधिकार दिया गया था।[3]

भारतीय संविधान का विकासात्मक इतिहास देखें तो हमें पता चलता है कि सन् 1757 में प्लासी की लड़ाई और सन् 1764 बक्सर का युद्ध हुआ था। इन दोनों युद्धों में अंग्रेजों की जीत हुई और उनका बंगाल पर अधिकार स्थापित हो गया था। बंगाल में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन को अनुकूल बनाने के लिए समय–समय पर अंग्रेजों ने कई एक्ट पारित किए जो भारतीय संविधान के विकास के लिए सहायक बने। इसी दौर में सन् 1774 में रेगुलेटिंग एक्ट पारित किया गया जिसके बाद कलकत्ता में एक सुप्रीम कोर्ट की स्थापना की गई थी।[4] इसके उपरांत कई और एक्ट समय–समय पर पारित हुए किंतु भारतीय संविधान के संदर्भ में सन् 1935 का भारत शासन अधिनियम अति महत्त्वपूर्ण भूमिका रखता है। इसका कारण यह है कि हमारे संविधान का लगभग 60% हिस्सा 1935 के भारत शासन अधिनियम से लिया गया है। इस अधिनियम के द्वारा ही म्यांमार को भारत से अलग कर दिया गया था तथा भारतीय रिजर्व बैंक की स्थापना की गई थी।[5] इसके उपरांत जुलाई सन् 1946 को कैबिनेट मिशन द्वारा भारतीय संविधान निर्माण के लिए संविधान सभा का गठन किया गया था। गठित संविधान सभा में कुल सदस्यों की संख्या 389 थी जिसमें से 292 सदस्य ब्रिटिश प्रांतों से, 93 सदस्य देशी रियासतों से तथा 4 सदस्य चीफ कमिश्नर थे। 9 दिसंबर सन्

1946 को संविधान सभा की प्रथम बैठक संपन्न हुई थी जिसमें सभा के सबसे बुजुर्ग सदस्य डॉ. सच्चिदानंद सिन्हा को सभा का अस्थायी अध्यक्ष नियुक्त किया गया था। किंतु मुस्लिम लीग ने इस बैठक का विरोध किया जिसके बाद 11 दिसंबर सन् 1946 को डॉ. राजेंद्र प्रसाद को संविधान सभा का स्थायी अध्यक्ष बनाया गया था। 13 दिसंबर सन् 1946 को जवाहरलाल नेहरू ने सभा में संविधान का उद्देश्य प्रस्ताव प्रस्तुत किया और इसी के साथ संविधान बनाने की प्रक्रिया शुरू हो गई थी।[6] संविधान सभा में संचालन समिति तथा राष्ट्रीय ध्वज समिति के अध्यक्ष डॉ. राजेंद्र प्रसाद थे तो दूसरी ओर प्रारूप समिति के अध्यक्ष डॉ. भीमराव अंबेडकर तथा प्रांतीय संविधान समिति के अध्यक्ष सरदार वल्लभभाई पटेल और संघीय संविधान समिति के अध्यक्ष जवाहरलाल नेहरू बने थे। संविधान निर्माण की प्रक्रिया के बीच ही 3 जून सन् 1947 को यह घोषणा हुई कि भारत का बँटवारा होगा और भारत विभाजित हो गया जिसके फलस्वरूप 14 अगस्त सन् 1947 को पाकिस्तान बना और 15 अगस्त सन् 1947 को भारत आजाद हुआ। देश के इस विभाजन के बाद संविधान सभा का पुनर्गठन 31 अक्टूबर सन् 1947 को किया गया था। अब संविधान सभा के सदस्यों की कुल संख्या 299 हो चुकी थी जिसमें 229 प्रांतीय सदस्य तथा 70 देशी रियासतों के सदस्य थे। संविधान निर्माण की प्रक्रिया में सभा ने दुनिया भर के संविधान का बारीकी से अध्ययन किया और उसके बाद डॉ. भीमराव अंबेडकर ने भारतीय संविधान का मसौदा तैयार किया था। 26 नवंबर, सन् 1949 के दिन भारतीय संविधान बनकर तैयार हो गया था और संविधान सभा ने इसे पारित कर दिया था। इसीलिए 26 नवंबर, सन् 1949 को संविधान दिवस हर साल मनाया जाता है। फिर 26 जनवरी सन् 1950 को भारत में संविधान लागू कर दिया गया और भारत एक गणतंत्र देश बन गया था। संविधान निर्माण की प्रक्रिया में कुल 2 वर्ष 11 महीने और 18 दिन लगे थे और इसके प्रारूप पर 114 दिन बहस हुई थी। भारतीय संविधान के निर्माण पर कुल मिलाकर 63,96,729 रुपए खर्च हुए थे और जब संविधान बना तो इसमें कुल 22 भाग, 395 अनुच्छेद और 8 अनुसूचियाँ थीं।[7] भारतीय संविधान के मूल ढाँचे में निम्न बिंदुओं को रखा गया।

(1) संविधान का लोकतांत्रिक स्वरूप
(2) संविधान का धर्मनिरपेक्ष स्वरूप
(3) नागरिकों के मूल अधिकार
(4) लोकसभा तथा राज्य विधान सभाओं के वयस्क मताधिकार पर आधारित स्वतंत्र चुनाव
(5) न्यायपालिका की स्वतंत्रता[8]

हालाँकि इस संदर्भ में कुछ राजनैतिक नेताओं तथा विधि–विशेषज्ञों का विचार है कि भारतीय संघात्मक व्यवस्था और संसदीय या मंत्रीमंडल की व्यवस्था को भी

संविधान के मूल ढाँचे का अंग ही समझा जाना चाहिए। दूसरी ओर संविधान सभा में महिलाओं की भूमिका का अवलोकन करें तो यह पता चलता है कि सभा में कुल 15 महिलाएँ थीं जिनमें से 12 महिलाएँ ब्रिटिश प्रांत से संबंधित थीं। इनके नाम हैं अम्मू स्वामीनाथन–मद्रास–भारत स्काउट गाइड की अध्यक्ष, दक्षिणयाणी वेलायुद्धन, दुर्गाबाई देशमुख–मद्रास, हंसा मेहता–मुंबई–महिला समूह अध्यक्ष, कमला चौधरी–उत्तर प्रदेश, लीला राय–बंगाल–बोस द्वारा बनाई गई महिला समिति की सदस्य, मालती चौधरी–उड़ीसा, पूर्णिमा बनर्जी–उत्तर प्रदेश, राजकुमारी अमृत कौर–सेंट्रल प्रोविंस, सरोजिनी नायडू, सुचेता कृपलानी–उत्तर प्रदेश, विजय लक्ष्मी पंडित–उत्तर प्रदेश, बेगम एजाज रसूल–मुस्लिम लीग, रेणुका रे–बंगाल, एनी मसकैरनी–देशी रियासत केरल।[9] इन महिला सदस्यों में से राजकुमारी अमृत कौर का नाम उल्लेखनीय है जोकि एक सच्ची देशभक्त तथा अपने समय की एक प्रसिद्ध सांसद थीं। उनकी अहिंसा में अटूट आस्था थी और उन्होंने महिलाओं तथा समाज के कमजोर वर्गों के उत्थान तथा विकास के लिए निस्वार्थ भाव और पूरी ईमानदारी से कार्य किया था। इन्होंने अपने कल्याणकारी कार्यों द्वारा भारतीय जनमानस पर अमिट छाप छोड़ी। वे अभिजात वर्ग की एक गरिमामयी और संतुलित व्यक्तित्व वाली महिला थीं जिन्होंने अपने समय में पनपी अनेक सामाजिक बुराइयों को दूर करने के लिए निरंतर प्रयास किया था। वे स्वतंत्र भारत के कैबिनेट में पहली स्वास्थ्य मंत्री के पद पर आसीन थीं। कैबिनेट में शामिल होने वाली वे एकमात्र महिला थीं। इन्होंने इंडियन काउंसिल फॉर चाइल्ड वेलफेयर, एम्स–दिल्ली और लेडी इर्विन कॉलेज की स्थापना की थी। राजकुमारी अमृत कौर इंडियन रेड क्रॉस सोसायटी की पहली महिला अध्यक्ष भी रही थीं तथा संविधान सभा में वे मूल अधिकार और अल्पसंख्यकों के अधिकारों के लिए उप–समिति में शामिल हुई थीं। संविधान सभा में वे समान नागरिक संहिता के समर्थन में भी थीं।[10] संविधान सभा में बहुत कम प्रतिनिधित्व के बावजूद महिला सदस्यों ने भारतीय संविधान की संरचना और सामग्री को निर्धारित करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया था। संविधान सभा में हुई बहसें कई तरह से इन महिला प्रतिनिधियों के योगदान से आकार लेती थीं। वैसे तो चर्चा में उनका योगदान लगभग 2% था तथा 15 महिला सदस्यों में से 10 ने सर्वाधिक योगदान दिया जिनके द्वारा लगभग 66494 (छियासठ हजार चार सौ चौरानवे) शब्दों का उत्तम उपयोग संविधान सभा में किया गया था।[11] संविधान सभा की सबसे कम उम्र की सदस्य भी 34 साल की दक्षिणायनी वेलायुद्धन नाम की महिला थीं। दूसरी ओर दुर्गाबाई देशमुख एकमात्र महिला सदस्य थीं जो अध्यक्ष के पैनल में थी। हंसा जीवराज मेहता मौलिक अधिकार उप–समिति, सलाहकार समिति और प्रांतीय संवैधानिक समिति की सदस्य थीं। संविधान निर्माण की प्रक्रिया में महिला सदस्यों द्वारा की गई चर्चा के अध्ययन तथा विश्लेषण से पता चलता है कि वे औपनिवेशिक शासन के कारण

भारत द्वारा झेली गई समस्याओं और भारतीयों खासकर महिलाओं को उनके लिए संविधान में निहित अधिकारों का सार्थक रूप से उपयोग करने तथा महिलाओं को उपलब्ध नए अवसरों से अवगत कराना चाहती थीं। इसी प्रकार हाशिये के लोगों तथा दलितों के सशक्तिकरण को प्रभावित करने वाले सामाजिक मुद्दों को संविधान सभा में उनके द्वारा प्रमुखता से उठाया गया था। सभी महिला सदस्य कठोरतापूर्वक श्रम और मानव तस्करी की रोकथाम, शिक्षण संस्थानों में धार्मिक निर्देशों पर राज्य के नियंत्रण, अल्पसंख्यक अधिकारों, मौलिक अधिकारों के साथ बच्चों के शोषण के खिलाफ संरक्षण और राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांतों के मुद्दों पर अवधारणात्मक वाद–विवाद और बहस करती रहीं। यह भी उत्तम तथा शिक्षाप्रद है कि किसी भी महिला सदस्य ने कभी भी किसी प्रकार के भेदभाव या लिंग या सांप्रदायिक आधार पर अलग निर्वाचन जैसे प्रस्तावों तथा उपायों का समर्थन नहीं किया जबकि सभी महिला सदस्य समाज में व्याप्त लैंगिक अन्याय के बारे में पूरी तरह से जागरूक थीं और उनकी चिंता का केंद्रबिंदु स्वतंत्र भारत में न्याय और समान अधिकार और प्रत्येक भारतीय की स्थिति के निकट था।[12] इन्हीं महिलाओं के सार्थक प्रयास द्वारा भारतीय संविधान में महिलाओं के लिए निम्न सांविधानिक प्रावधान किए गए हैं–

(1) अनुच्छेद–14 – भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14 के अनुसार भारत राज्य क्षेत्र के किसी भी नागरिक को विधि के समक्ष समता अथवा विधियों के समान संरक्षण से वंचित नहीं किया जाएगा। समानता से यहाँ अभिप्राय यह है कि स्त्री तथा पुरुष में किसी भी प्रकार का लिंग भेद नहीं है तथा यह अधिकार समान रूप से दोनों को प्राप्त होगा।

(2) अनुच्छेद–15 – भारतीय संविधान के अनुच्छेद 15 के अनुसार राज्य केवल धर्म, मूल, वंश, जाति, लिंग तथा जन्म स्थान के आधार पर नागरिकों के मध्य कोई भेदभाव नहीं करेगा। भारतीय संविधान में यह स्पष्ट है कि पुरुष एवं महिला को समान अधिकार प्रदान किए गए हैं। साथ ही इस अनुच्छेद के खंड 3 में स्त्रियों के लिए विशेष व्यवस्था भी की गई है।

(3) अनुच्छेद–19 – अनुच्छेद 19 महिलाओं को स्वतंत्रता का अधिकार प्रदान करता है ताकि महिलाएँ स्वतंत्रतापूर्वक भारत राज्य के क्षेत्र में आवागमन कर सकें। किसी भी कार्य से वंचित करना मौलिक अधिकार का उल्लंघन माना गया है।

(4) अनुच्छेद–23–24 – अनुच्छेद 23 और 24 के अनुसार महिलाओं के विरुद्ध होने वाले शोषण को नारी के मान–सम्मान के विपरीत मानते हुए उनकी खरीद–फरोख्त, वेश्या–वृत्ति कराना आदि को दंडनीय अपराध की श्रेणी में रखा गया है। इसके लिए सन् 1956 में 'वीमेन एंड गर्ल्स' एक्ट भी भारतीय संसद द्वारा पारित किया गया ताकि महिलाओं के विरुद्ध होने वाले सभी प्रकार के शोषण को समाप्त किया जा सके।

(5) अनुच्छेद–39 – अनुच्छेद 39 के अनुसार स्त्री को जीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार तथा अनुच्छेद 39 (द) के अनुसार समान कार्य के लिए समान वेतन का अधिकार दिया गया है जिससे उन्हें आर्थिक न्याय की प्राप्ति हो सके।

(6) अनुच्छेद–42 – अनुच्छेद 42 महिलाओं को प्रसूति अवकाश प्रदान करता है।

(7) अनुच्छेद–46 – अनुच्छेद 46 राज्य के दुर्बल वर्गों के लिए शिक्षा तथा अर्थ संबंधी हितों की विशेष सावधानी से अभिवृद्धि करेगा तथा सामाजिक अन्याय एवं सभी प्रकार के शोषण से संरक्षण करेगा।

(8) अनुच्छेद–51 – संविधान के भाग 4 के अनुच्छेद 51 (क) तथा (3) में स्पष्ट रूप से वर्णन किया गया है कि हमारा दायित्व है कि हम हमारी संस्कृति की गौरवशाली परंपरा के महत्त्व को समझते हुए इस प्रकार की प्रथाओं का त्याग करें जो महिलाओं के मान–सम्मान के खिलाफ हों।

(9) अनुच्छेद–243 – अनुच्छेद 243 (द) के (3) के अनुसार प्रत्येक पंचायत के प्रत्यक्ष निर्वाचन से भरे गए स्थानों की कुल संख्या के 1/3 स्थान स्त्रियों के लिए आरक्षित रहेंगे तथा चक्रानुक्रम से पंचायत के विभिन्न निर्वाचन क्षेत्रों में आबंटित किए जाएँगे।

(10) अनुच्छेद–325 – अनुच्छेद 325 के अनुसार निर्वाचक नामावली में महिला एवं पुरुष दोनों को समान रूप से सम्मिलित करने का अधिकार प्रदान किया गया है।[13]

इसके अलावा समय–समय पर महिलाओं के प्रति बढ़ रहे अपराधों की रोकथाम के लिए राज्य नवीनतम अधिनियम पारित करते ही रहते हैं। वस्तुतः लोकतांत्रिक व्यवस्था में प्रतिनिधित्व के दृष्टिकोण से सभी वर्गों की समान भागीदारी सुनिश्चित करना एक सार्थक उद्देश्य होता है। इसलिए कि एक वर्ग को हाशिये पर रखकर न तो संपूर्ण विकास हो सकता है और न ही सामाजिक न्याय और राजनैतिक समानता को व्यवस्थापित किया जा सकता है। राजनैतिक सशक्तिकरण की प्रक्रिया में सभी को समान रूप से प्रतिनिधित्व प्रदान करना तथा किसी भी प्रकार के भेदभाव को नकारते हुए लैंगिक समानता को अपनाना बेहद आवश्यक है। महिलाओं की संख्या दुनिया की आबादी की लगभग आधी है। ऐसे में उन्हें सामाजिक समानता तथा राजनैतिक अधिकारों से वंचित करना एक सुनियोजित अत्याचार से कम नहीं समझा जा सकता।

आज के समय की राजनीतिक व्यवस्था में महिलाओं की भागीदारी उस स्थिति में नहीं है जैसी कि स्वतंत्रता के बाद के दशकों में थी। राजनैतिक क्रियाकलाप दुनिया के इतिहास में एक जटिल कार्य माना जाता है। ऐसे में लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं में महिलाओं की भागीदारी भारत ही नहीं बल्कि पूरे विश्व के इतिहास में उनकी जनसंख्या के अनुपात में कभी भी नहीं रही है। आधुनिक समय में राजतंत्र के पतन और लोकतांत्रिक संस्थाओं के विकास तथा उत्थान ने सेना और पुलिस बल के आधार पर

शासन की खोखली अवधारणा का अंत कर दिया है जिसके परिणामस्वरूप आम नागरिक की राय, उसके विचारों, उसकी स्वतंत्रता तथा उसके अधिकारों आदि को विशेष महत्त्व दिया जाने लगा है। पहले संपूर्ण राजनैतिक व्यवस्था पर समाज के कुछ ही शक्तिशाली लोगों का वर्चस्व और दबदबा था। समय के साथ आम नागरिक की लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं में भागीदारी बढ़ने के कारण राजनीति में महिलाओं की भागीदारी भी बढ़ने लगी जोकि कल्याणकारी राज्य के लिए एक अच्छी बात है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में महिलाओं की बढ़ती सार्थक भागीदारी ने राजनीति की मूल संरचना को परिवर्तित किया जो लैंगिक समानता की ओर महत्त्वपूर्ण तथा उत्तम बदलाव का संकेत है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि भारतीय संविधान के निर्माण में भारतीय महिलाओं ने सार्थक कार्य किया है। हालांकि उनकी संख्या भले ही कम हो किंतु फिर भी उनके द्वारा किया गया कार्य सार्थक तथा उत्तम है। उस समय के जटिल परिवेश में महिलाओं की स्थिति वर्तमान समय जैसी नहीं थी तथा उनकी शैक्षणिक स्थिति भी ठीक नहीं थी। ऐसी स्थिति में जिन महिलाओं ने शिक्षा ग्रहण की, समाज की बुराइयों का विरोध किया, समाज को जागरूक किया; ऐसी महिलाओं के विरल योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। आज स्थिति–परिस्थिति निरंतर बदल रही है, महिलाएँ हर क्षेत्र में कामयाबी की बुलंदी हासिल कर रही हैं तथा राजनीतिक परिवेश भी उनकी सहभागिता और उनके मार्गदर्शन की प्रशंसा कर रहा है और यह सब हमारी उन्हीं महिलाओं के कारण हो रहा है जिन्होंने आजादी की लड़ाई और संविधान–निर्माण में अपना सार्थक सहयोग देकर एक विशिष्ट भूमिका का निर्वहन किया है।

संदर्भ–सूची

(1) सरल प्रशासनिक शब्दावली, सरलीकरण विशेषज्ञ समिति, केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो, राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, भारत सरकार, पृष्ठ संख्या–68

(2) नागरिक शास्त्र के सिद्धांत और भारतीय संविधान, लेखक चंद्रकला मित्तल और नेमिशरण मित्तल, प्रकाशक विद्या भवन, जयपुर, द्वितीय संस्करण, सन् 1962, पृष्ठ संख्या–188

(3) समकालीन भारतीय महिलाओं में आरक्षण का मनोवैज्ञानिक प्रभावः एक विश्लेषणात्मक अध्ययन, शोधार्थी–उर्मि दीक्षित, गाँधी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, उरई–उत्तर प्रदेश, सन् 2002, पृष्ठ संख्या–2

(4) भारतीय संविधान तथा नागरिकता, लेखक अंबादत्त पंत, प्रकाशक सेंट्रल बुक डिपो, प्रयागराज, अष्टम संशोधित संस्करण, सन् 1959, पृष्ठ संख्या–2 और 3

(5) भारतीय संविधान तथा नागरिकता, लेखक अंबादत्त पंत, प्रकाशक सेंट्रल बुक डिपो, प्रयागराज, अष्टम संशोधित संस्करण, सन् 1959, पृष्ठ संख्या–13

(6) नागरिक शास्त्र के सिद्धांत और भारतीय संविधान, लेखक चंद्रकला मित्तल और नेमिशरण मित्तल, प्रकाशक विद्या भवन, जयपुर, द्वितीय संस्करण, सन् 1962, पृष्ठ संख्या–330

(7) भारतीय शासन एवं राजनीति, लेखक डॉ. पुखराज जैन और डॉ. बी. एल. फड़िया, प्रकाशक साहित्य भवन, आगरा, संस्करण सन् 1990, पृष्ठ संख्या–17 और 18

(8) भारतीय शासन एवं राजनीति, लेखक डॉ. पुखराज जैन और डॉ. बी. एल. फड़िया, प्रकाशक साहित्य भवन, आगरा, संस्करण सन् 1990, पृष्ठ संख्या–46

(9) समकालीन भारतीय महिलाओं में आरक्षण का मनोवैज्ञानिक प्रभाव : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन, शोधार्थी–उर्मि दीक्षित, गाँधी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, उरई–उत्तर प्रदेश, सन् 2002, पृष्ठ संख्या–2 और 3

(10) सुविख्यात सांसद मोनोग्राफ सीरीज, राजकुमारी अमृत कौर, प्रकाशक लोक सभा सचिवालय, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, सन् 1993, पृष्ठ संख्या–4

(11) भारतीय राजनीति में महिलाओं की भूमिका : एक अध्ययन, सुरेंद्र सिंह, पूर्व मीमांसा, वॉल्यूम 14, अंक मार्च 2023, ISSN–0976–0237, पृष्ठ संख्या–165

(12) भारतीय राजनीति में महिलाओं की भूमिका : एक अध्ययन, सुरेंद्र सिंह, पूर्व मीमांसा, वॉल्यूम 14, अंक मार्च 2023, ISSN–0976–0237, पृष्ठ संख्या–165

(13) महिलाओं का संवैधानिक अधिकार एवं कानूनों के प्रति जागरूकताः एक समाजशास्त्रीय अध्ययन, क्विस्ट जर्नल, वॉल्यूम 10, अंक 2022, ISSN (ऑनलाइन)–2321–9467, पृष्ठ संख्या–152

❑❑❑

संस्मरण

फादर डॉ. कामिल बुल्के को याद करते हुए

गिरीश पंकज
विभिन्न विधाओं में शताधिक पुस्तकें प्रकाशित,
बीस खंडों में गिरीश पंकज रचनावली प्रकाशित।

फादर कामिल बुल्के— हिंदी के महान पंडित—विद्वान। ऐसा कौन हिंदी प्रेमी होगा जो इस नाम से परिचित न हो। मैं अपने का बड़ा सौभाग्यशाली मानता हूँ कि मैंने उनके दर्शन किए और उनसे बातचीत करने का सुअवसर प्राप्त कर सका। सन 1980 में बिलासपुर में उनसे भेंट हुई थी। रेलवे के किसी कार्यक्रम में वे आमंत्रित थे। मैं एक दैनिक के लिए बातचीत करने उनके पास गया था। जिस आत्मीयता के साथ वे मिले, उसे मैं अब तक नहीं भूल सका हूँ। स्नेह की प्रतिमूर्ति थे बुल्के। संत सरीखा जीवन जीने वाले बुल्के जी ने सन् 1935 में ही भारत की नागरिकता ग्रहण कर ली थी। वे सगर्व कहते थे ''मैं बेल्जियम में पैदा जरूर हुआ लेकिन भारतवर्ष में मेरा पुनर्जन्म हुआ है।'' ये केवल शब्द नहीं हैं, इन शब्दों के पीछे भारतवर्ष की महत्ता भी स्पष्ट है।

1 सितंबर 1909 को वेस्ट क्लैंडर्स (बेल्जियम) में जन्मे डॉ. कामिल बुल्के की शिक्षा लुवेन विश्वविद्यालय, ग्रिगोरियन विश्वविद्यालय तथा इलाहाबाद विश्वविद्यालय में संपन्न हुई। सन् 1935 में जब फादर भारत आकर बसे, तबसे ही उन्होंने हिंदी सीखना प्रारंभ कर दिया। फादर बुल्के ने कई पुस्तकों का सृजन तथा अनुवाद किया है। उनकी पहली कृति थी— 'द सेवियर' जो 1942 में प्रकाशित हुई थी। उसके बाद तो लगातार उनकी कई पुस्तकें प्रकाशित हुईं— द थीम इन न्याय वैशेषिक (1947), टेक्नीकल हिंदी इंग्लिश ग्लॉसरी (1955), अंग्रेज़ी हिंदी शब्द कोश (1968), नया विधान (न्यू टेस्टामेंट का अनुवाद 1977) तथा रामकथा और तुलसीदास (1977) प्रमुख पुस्तकें हैं। सन् 1949 में रामकथा उत्पत्ति और विकास पर आपको डी. फिल उपाधि प्राप्त हुई। सन् 1950 से संत जेवियर कॉलेज रांची में हिंदी एवं संस्कृत के विभागाध्यक्ष रहे। फादर ने कलकत्ता विश्वविद्यालय से संस्कृत मुख्य विषय लेकर सन् 1945 में बी.ए. किया था।

सन् 1974 में भारत सरकार ने फादर की उल्लेखनीय सेवा को देखते हुए उन्हें 'पद्मभूषण' से अलंकृत किया। सही मायने में सोचा जाए तो यह सम्मान 'पद्मभूषण'

का हुआ था। सन् 1958 में स्थापना काल से ही श्री बुल्के बिहार राष्ट्रभाषा परिषद के सदस्य तथा सन् 1972 से केंद्रीय हिंदी समिति के सदस्य रहे। आज डॉ. बुल्के रामायण के महान ज्ञाता तथा हिंदी भाषा के कट्टर हिमायती के रूप में विश्व में प्रख्यात हो चुके हैं। नागपुर और मॉरिशस के विश्व हिंदी सम्मेलन में भारत के प्रतिनिधि के रूप में आपने हिंदी के संबंध में जो विचार प्रस्तुत किए, वे इतिहास के पृष्ठों को नई ताज़गी और खुशबू प्रदान करते रहेंगे।

मुझे वह दिन अब तक याद है जब बुल्केजी से मुलाकात हुई। हिंदी के प्रकांड विद्वान डॉ. कामिल बुल्के बिलासपुर 'हिंदी सप्ताह' का उद्घाटन करने आए थे। हिंदी विषयक तमाम सवालों का गट्ठर लेकर मैं रेलवे रेस्ट हाउस पहुँच जाता हूँ। एक पत्रकार के रूप में अपना परिचय देता हूँ तो बेहद आत्मीयता के साथ कंधे पर हाथ रख कर पूछते हैं–'

''हाँ–हाँ, पूछो।'' डॉ. बुल्के कान में लगे श्रवण यंत्र की आवाज़ थोड़ा तेज़ कर देते हैं।

''आपने हिंदी भाषा कब सीखी?''

''सन् 1935 में! भारतवर्ष में आते ही हिंदी सीखना प्रारंभ कर दिया था। आज भी सीखते रहता हूँ। क्योंकि हिंदी एक महान भाषा है, हालाँकि हिंदी बहुत जल्दी सीखी जा सकती है लेकिन मुहावरों, कहावतों आदि के पूर्ण ज्ञान के बिना हिंदी पूरी सीख चुका हूँ, यह कहना उचित नहीं होगा।''

''क्या हिंदी संयुक्त राष्ट्रसंघ की भाषा बन सकेगी?'' मेरा सीधा सवाल था।

''जब तक हिंदी वाले ईमानदारी के साथ हिंदी का प्रचार तथा उपयोग नहीं करेंगे, हिंदी न तो राष्ट्रसंघ की भाषा बन सकेगी और न ही विश्व भाषा। दुर्भाग्य की बात यह है कि अहिंदीभाषी लोगों ने हिंदी का ज्यादा प्रचार किया है जबकि हिंदी वालों ने इस ओर अपनी पूरी उदासीनता दिखलाई। हिंदी को यदि भारतीय संस्कृति की पूँजी बनानी है तो यह आवश्यक है कि हिंदीभाषी अपनी भाषा पर पूरा अधिकार प्राप्त करें तथा सामाजिक जीवन से अंग्रेजी हटाकर अहिंदी–क्षेत्रों में हिंदी को परिष्कृत रूप में प्रतिष्ठित करें।''

''अंग्रेजी हटाओ सम्मेलन से क्या हिंदी को लाभ मिल सकेगा?''

''ये सब मज़ाक की बातें लगती हैं। बहुत सारे लोग जो अंग्रेजी नहीं जानते, इसलिए विरोध करते हैं। मुझे 'अंग्रेजी हटाओ' आंदोलन में वक्ता के रूप में बुलाया गया, लेकिन मैंने साफ इंकार कर दिया क्योंकि किसी भी भाषा या ज्ञान का विरोध करना हमारी सांस्कृतिक परंपरा के विरुद्ध है। भाषा भगवान का वरदान होती है, उसके प्रति श्रद्धा और आदर का भाव होना चाहिए। अंग्रेजी के प्रति हमें उदार दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। अंग्रेजी का पूर्ण ज्ञान होने से हमें लाभ ही मिलेगा, 'अंग्रेजी

हटाओ' के बजाय 'हिंदी का घर–घर प्रसार करो' यह नारा देना चाहिए।''

''आज भारत के 'तथाकथित' शिक्षित लोग एक ओर जहाँ अंग्रेजी बोलने में गर्व महसूस करते हैं वहीं हिंदी बोलने में शर्म, इसका मनोवैज्ञानिक कारण क्या है?''

''कारण पूरी तरह साफ है। भारत के हिंदी प्रदेश अन्य देश के मुकाबले काफी पिछड़े हुए हैं। इसलिए थोड़ा–सा पढ़–लिख लेने के बाद वे हिंदी में बात करने में संकोच तथा अंग्रेजी में बात करने में गर्व महसूस करते हैं। हीन भाव के वशीभूत होकर अंग्रेजी बोलना भी दुर्भाग्यजनक है। हमें अपनी इसी कमजोरी को जड़ से उखाड़ फेंकना होगा।''

''क्या हिंदी संपर्क भाषा बन सकेगी?''

''भारत में हिंदी संपर्क भाषा बन चुकी है। भारत के अधिकांश गाँवों में हिंदी बोलने समझने वाले लोग विद्यमान हैं। मेरा तो दृढ़ विश्वास है कि हिंदी भाषा की निरंतर प्रगति होती रहेगी। हिंदी के विकास के लिए इस बात का विशेष ध्यान रखना होगा कि हिंदी का सरल एवं स्वाभाविक प्रयोग हो, वाक्यविन्यास सरल होने चाहिए। हिंदी का व्याकरण बन चुका है, इसलिए उसमें परिवर्तन करने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। हिंदी एक समर्थ भाषा है। दुनिया में इसकी तरह सरल भाषा नहीं है। किसी भी विषय का अध्ययन अथवा अध्यापन हिंदी में किया जा सकता है। हिंदी संपर्क भाषा बन चुकी है, वह राजभाषा भी बन सकेगी, लेकिन जब तक देशवासियों के मन में भाषा के प्रति स्वाभिमान पैदा नहीं होगा, हिंदी का भला नहीं होगा।''

''आज हिंदी के विकास की बातें तो की जाती हैं लेकिन मूल भाषा 'संस्कृत' की ओर से ध्यान हटता जा रहा है। क्या यह आरोप सही है?''

''बात तो सही है, लेकिन ऐसा होना नहीं चाहिए क्योंकि शताब्दियों से भारत का मूल चिंतन तो संस्कृत ही है। हिंदीभाषी पूर्ण रूप से तब तक शिक्षित नहीं माना जा सकता जब तक कि वह संस्कृत भी भली–भाँति न जानता हो। संस्कृत को लेकर हिंदी के पारिभाषिक शब्द बने हैं। पारिभाषिक शब्द बनाने में संस्कृत का विरोध नहीं होना चाहिए। मैं तो संस्कृत को पूजनीय माँ के रूप में मानता हूँ, हिंदी को एक गृहिणी तथा अंग्रेजी को नौकरानी, जिसके न रहने से भी एक घर सकुशल गतिमान रह सकता है।''

''विश्व हिंदी सम्मेलन से हिंदी को कितना लाभ मिला?''

''विश्व हिंदी सम्मेलनों से हिंदी विश्वभाषा बन सकेगी, ऐसा नहीं माना जा सकता। नागपुर में आयोजित विश्व हिंदी सम्मेलन के अवसर पर स्थल पर चिपके अंग्रेजी वाक्यों को देखकर मेरा एक मित्र मुझसे कहता है कि ऐसा लगता है हम यूरोप के किसी देश में हैं। वैसे विदेश में हिंदी के संबंध में सम्मेलन द्वारा लोगों को जानकारी अवश्य प्राप्त होती है। हम भीख माँगने जैसी स्थिति में सबसे हाथ पकड़कर कहें कि

'आप हिंदी सीखिए' बल्कि हिंदी को हम इस स्थिति तक पहुँचा दें कि लोग कहने पर विवश हों कि हमको हिंदी सिखाइए। हमें हिंदी किसी पर 'लादना' नहीं है। प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन नागपुर में जब हिंदी को संयुक्त राष्ट्रसंघ की भाषा बनाने हेतु प्रस्ताव पारित किया गया तो मैं यह कहने वाला था कि मात्र इससे काम नहीं चल पाएगा। आज लोकसभा का सदस्य हिंदी में भाषण करने में लज्जित क्यों होता है। इसी तरह अटल बिहारी वाजपेयी ने संयुक्त राष्ट्रसंघ में भाषण तो हिंदी में अवश्य दिया लेकिन इसके पूर्व अपना अंग्रेजी में टाइप किया भाषण सबको बाँट दिया। इससे भारत की प्रतिष्ठा बढ़ी होगी, यह सोचना ठीक नहीं है। आज 'अरबी' भाषा संयुक्त राष्ट्रसंघ की भाषा बन चुकी है क्योंकि इसके पीछे कई देशों का समर्थन रहा जिसमें सीरिया, इराक, मोरक्को आदि देश शामिल हैं। भाषा के प्रति उनका स्वाभिमान काफी प्रबल है।''

''हिंदी के अतिरिक्त आपको कितनी भाषाओं का ज्ञान है?''

''मुझे डच, फ्रेंच, अंग्रेजी, जर्मन, लैटिन, ग्रीक, संस्कृत तथा उर्दू भाषा का ज्ञान है। आजादी के पूर्व उर्दू अच्छी तरह से लिख सकता था, लेकिन बाद में अभ्यास छूटने के कारण आज परेशानी होती है।''

''किन–किन देशों में हिंदी अधिक प्रचलित है?''

''मॉरिशस और फीजी में ज्यादा हिंदीभाषी हैं। दक्षिण अफ्रीका, सूरीनाम में भी हिंदीभाषी हैं। विश्व हिंदी सम्मेलन से देश–विदेश से आए प्रतिनिधि धाराप्रवाह हिंदी न बोल लड़खड़ाती हिंदी बोलते हैं। फिर भी उस देश में हिंदीप्रेमी हैं, जानकर ही हार्दिक प्रसन्नता होती है।''

''हिंदी प्रचारकों एवं हिंदीभाषियों के नाम आपका कोई संदेश?''

''मैं चाहूँगा कि हिंदी वालों को अपने प्रदेशों में शुद्ध, परिनिष्ठित सरल खड़ी बोली हिंदी का प्रचार करना चाहिए और अपने प्रदेश के बजाय अहिंदीप्रांतों में हिंदी का ज्यादा प्रचार करें तथा अहिंदीभाषियों से भाषा संबंधी मामले में काफी नम्र व्यवहार करें। इस बात का पूरा–पूरा ध्यान रखना चाहिए। अपनी भाषा को दूसरी भाषा से श्रेष्ठ नहीं मानना चाहिए। हिंदी में बोलचाल की भाषा में प्रविष्ट हुए उन अंग्रेजी के प्रचलित शब्दों को हटाना नहीं चाहिए जो स्वाभाविक रूप से हिंदी में खप चुके हैं, जैसे कि स्टेशन, जेल इत्यादि।''

''अच्छा फादर! वर्तमान हिंदी साहित्य के सृजन के संबंध में आपके क्या विचार हैं?''

''हिंदी में रचित आज की किताब हो अथवा कहानी; उसकी सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि वह लोगों को समझ में नहीं आती। रचना को जनता के साथ चलना चाहिए। प्रेमचंद जैसे साहित्यकारों से वर्तमान रचनाकारों को प्रेरणा लेनी चाहिए। हिंदी

की आज की कविता में यद्यपि अशांति और विद्रोह प्रतिबिंबित अवश्य है लेकिन वह कविता या अकविता चिरस्थायी नहीं है। जबकि रचनाओं में क्रांतिबोध अवश्य स्पष्ट होता है। 'अज्ञेय' आदि साहित्यकारों की भाषा काफी प्रभावशाली है।''

आज बुल्के जी हमारे बीच नहीं हैं लेकिन हिंदी के उन्नयन के लिए उन्होंने जो कुछ किया, वह कालजयी काम है। बुल्के हम भारतीयों के लिए इस मायने में भी प्रेरणास्पद हैं कि एक विदेशी होकर वे हिंदी के लिए कितना कुछ कर गए और एक हम हैं जो इस देश में पैदा होकर भी अंग्रेजी के गुलाम बने हुए हैं।

भगवान के घर जाऊँगा!

मेरे यह पूछने पर कि ''आपका भावी कार्यक्रम क्या है?'' फादर बुल्के ने बताया "मैं रामकथा का चौथा संस्करण तैयार कर रहा हूँ। 'मानस कौमुदी' पर भी और काम करना है। बाइबल के हुए हिंदी अनुवाद में भी सुधार कर रहा हूँ। इसके बाद 'अंग्रेजी–हिंदी शब्दकोश' पुनः तैयार करना चाहूँगा क्योंकि इन दस वर्षों में कई नए शब्द सामने आए हैं। इस कार्य के पूर्ण हो जाने के बाद भगवान के घर जाने की इच्छा है। सत्तर वर्ष का बूढ़ा तो हो ही गया हूँ न!''

''लेकिन हम तो चाहते हैं आप 100 वर्ष तक ज़िंदा रहें!''

''तुम्हारे मुँह में घी–शक्कर, बेटे।''

फादर कामिल बुल्के से मिलने का उद्‌देश्य पूरा हो चुका था। उनसे मिलकर घर लौटते हुए मेरे कान में उनका यह दृढ़ आह्वान गूँज रहा है– ''हिंदी को भारतीय संस्कृति की पूजा बनाना है।''

निराला भी आ जाएँगे...!

मंत्री जैसे गरिमापूर्ण पद पर रहने के पश्चात् भी यदि एक मंत्री प्रख्यात साहित्यकार पं. सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' के बारे में यह जानकारी न रखें कि वे जिंदा हैं अथवा नहीं, तो काफी शर्म महसूस होगी। इलाहाबाद की एक ऐसी ही घटना सुनाते हुए डॉ. कामिल बुल्के ने एक रोचक वाक्या सुनाया। आज से पाँच वर्ष पूर्व इलाहाबाद में आयोजित साहित्यिक कार्यक्रम में एक मंत्री महोदय आमंत्रित थे। कार्यक्रम में कवयित्री महादेवी वर्मा भी आ गईं। उन्हें देख मंत्री नमस्ते करते हुए माइक पर बोले ''बड़े हर्ष की बात है कि आज इस कार्यक्रम में महादेवी वर्मा पधारी हैं, आशा है 'निराला' भी आ जाएँगे।''

हिंदी की खिचड़ी बोली पर उन्होंने अफसोस जाहिर करते हुए कहा कि हिंदीभाषी बोलचाल में अंग्रेजी शब्दों का अधिकाधिक प्रयोग करके गर्व महसूस करते हैं। इसी तरह की एक घटना डॉ. बुल्के ने सुनाई– ''इलाहाबाद में एक बंद दूकान को देख जब मैंने एक सज्जन से इसका कारण पूछा तो उसने जवाब दिया कि दूकान के प्रोप्राइटर की वाइफ की डेथ हो गई है।''

डॉ. बुल्के ने व्यंग्य करते हुए कहा कि ''यदि आज पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी जीवित होते तो ऐसी खिचड़ी भाषा सुनकर बेहोश हो जाते।''

❑❑❑

यह सर्वमान्य बात है कि नागरी वर्णमाला के समान सर्वांगपूर्ण और वैज्ञानिक किसी दूसरी वर्णमाला का आविष्कार अभी तक नहीं हुआ है। सर्वमान्य से मेरा मतलब उन मनीषियों से है जो निर्विकार चित्त से इस विषय पर विचार कर सकते हैं। वैसे तो अपनी–अपनी वस्तु सभी को अच्छी लगती है। पर यदि वर्णों का उद्देश्य ध्वनि का शुद्ध उच्चारण हो तो संसार की कोई वर्णमाला नागरी का हाथ नहीं पकड़ सकती।

(बाबूराव विष्णु पराड़कर)

साक्षात्कार

स्त्री विमर्श की लड़ाई पुरुषों से नहीं, पुरुषतंत्र से है : सुधा ओम ढींगरा

सुधा ओम ढींगरा

कवयित्री, कहानीकार, उपन्यासकार, पत्रकार, कई महत्त्वपूर्ण काव्य–संग्रह/कैसेट, कहानी–संग्रह और उपन्यास प्रकाशित, विदेश में हिंदी सेवा हेतु कई सम्मान प्राप्त।

प्रो. विशाला शर्मा

10 पुस्तकें प्रकाशित, अनेक पुरस्कारों से सम्मानित, भाषा परामर्श मंडल की सदस्य। संप्रति–औरंगाबाद में चेतना कला वरिष्ठ महाविद्यालय में प्रोफेसर और हिंदी विभागाध्यक्ष।

विशाला शर्मा– स्त्री–विमर्श को आप किन आयामों में देखती हैं?

सुधा ओम ढींगरा– हर वर्ग, हर वर्ण, हर नस्ल, हर संप्रदाय की स्त्रियों की अपनी कुछ विशेष उलझनें, चुनौतियाँ और समस्याएँ होती हैं पर पीड़ा, वेदना और कुछ दुःख सब स्त्रियों के साझा होते हैं। अमीर–गरीब, गोरी–काली, हिंदू–मुस्लिम, दलित–गैर दलित, शहरी–देहाती–सब तरह की स्त्रियों के मर्म साझा हैं। स्त्रियों की देह से जुड़े अपराध, भावहीन, यांत्रिक संभोग, बलात्कार, भ्रूण–हत्या और साफ–सुथरे प्रसव की व्यवस्था का अभाव, पोर्नोग्राफी, विदेशों में बच्चियों का निर्यात, मार–पीट, गाली–गलौज, दहेज, डायन, अम्लघात, सती, वेश्यावृत्ति...देह से जुड़े ये दुख और फिर एक और साझा दुःख कि हर जगह, हर क्षेत्र और हर कसौटी पर उसे कमतर आँका जाना।

सदियों से समाज पुरुषसत्तात्मक समाज रहा है। इस समाज में पल रहे स्त्री संबंधी पूर्वाग्रहों से मुक्ति आवश्यक है। यह विमर्श पुरुषों को दोषी नहीं बल्कि पुरुष सत्तात्मक व्यवस्था को दोषी मानता है, जो उन्हें एक ही बात सिखाती है कि स्त्रियाँ उनसे हीनतर हैं और उनके भोग का साधन मात्र।

स्त्री–विमर्श की लड़ाई पुरुषों से नहीं बल्कि पुरुषतंत्र से है। स्त्री पुरुष के बीच की लड़ाई में दोनों की धुरी एक ही है–परिवार।

यह विमर्श किसी भी तरह से और किसी भी रूप में हिंसक (इंग्लैंड के ग्लोरियस आंदोलन के सिवा), प्रतिशोध पीड़ित नहीं है। इस विमर्श से जुड़ी हुई स्त्रियाँ मानवियाँ हैं जिन्हें न्याय, स्वतंत्रता, समानता और समभाव चाहिए।

विशाला शर्मा– प्रवासी साहित्यकार के रूप में स्त्री– विमर्श को देखने की

आपकी दो दृष्टि हैं। एक दृष्टि जिससे आप भारत की सामाजिक संरचनाओं में संघर्ष करती हुई स्त्री को देखती हैं तो दूसरी दृष्टि जिससे विदेशों में भी भारतीय स्त्री को संघर्ष करते हुए देखती हैं। इन दोनों स्थितियों की मानसिकता के निर्माण में आप क्या महत्त्वपूर्ण मानती हैं?

सुधा ओम ढींगरा– विशाला जी, प्रवासी साहित्यकार के रूप में स्त्री–विमर्श को मैं दो से नहीं, तीन दृष्टियों से देखती हूँ। यहाँ की स्थानीय स्त्री के संघर्ष को मैं नज़रअंदाज नहीं कर सकती। मेरी कई कहानियों में उनका संघर्ष भी झलकता है। हालाँकि यहाँ भी श्वेत, अश्वेत और मैक्सिकन स्त्री के संघर्ष में अंतर है। मैंने कभी किसी विमर्श से प्रेरित होकर या प्रभावित होकर कहानियाँ नहीं लिखीं। प्रवासी लेखक स्वतंत्र विचारों से लिखते हैं, वे तो किसी विचारधारा के तहत भी नहीं लिख सकते। कभी पात्र और कभी विषय स्वयं कहानी लिखवा लेते हैं।

भारत का समाज दोहरी मानसिकता और दोहरे मानदंडों में जीता है, कहता कुछ और है और करता कुछ और। स्त्री विमर्श का झंडा उठाकर चलने वाले लेखकों के अगर घरों में झाँक कर देखें तो उनके घरों की स्त्रियाँ अधिक असुरक्षित होंगी और इसी तरह स्त्री विमर्श का नारा लगाने वाली स्त्रियाँ अपने घरों में एक दबी–घुटी रूढ़िवादी, पारंपरिक महिला का जीवन व्यतीत कर रही होंगी। यह मेरी सिर्फ़ धारणा नहीं है, मैंने ऐसे लेखकों और ऐसी महिलाओं को करीब से देखा है जो इस तरह की दोहरी मानसिकता में जीते हैं। जबकि यहाँ का समाज जिसे हम खुला समाज कहते हैं, आज़ाद विचारों का समाज कहते हैं, आज़ाद सोच का समाज कहते है; ठीक वैसा ही व्यवहार भी करता है। यहाँ कथनी और करनी में अंतर नहीं होता। भारत में जो स्त्री दोहरे मापदंडों में संघर्ष कर रही है, यहाँ भारतीय नारी संघर्ष करते हुए भी अपनी दिशा और दशा स्पष्टतः निर्धारित कर लेती है क्योंकि समाज दोहरी मानसिकता वाला नहीं है। वह अपने अधिकारों की रक्षा भी कर लेती है क्योंकि यहाँ का क़ानून और यहाँ का समाज दोनों उसका साथ देते हैं।

भारत का स्त्री विमर्श जहाँ समाप्त होता है, विदेशों में स्त्री विमर्श वहाँ से शुरू होता है। प्रश्न उठ सकता है कि भारत में यह कहाँ समाप्त होता है और विदेशों में स्त्री विमर्श कहाँ से शुरू होता है ? भारत में तो अभी तक यह भी स्पष्ट नहीं हो पाया कि उनके लिए स्त्री विमर्श देह की आज़ादी है या विचारों की आज़ादी या अधिकारों की आज़ादी। भारत में तो गाँव की महिला की समस्याएँ शहरी महिलाओं की समस्याओं से भिन्न हैं। पढ़ी–लिखी नौकरीपेशा महिलाओं की समस्याएँ भिन्न हैं और घरेलू महिलाओं की समस्याएँ अलग। समाज की दोहरी मानसिकता की वजह से स्त्री विमर्श पूर्णतः स्वरूप नहीं ले पाया है और स्पष्ट नहीं हुआ है। जब तक समाज अपनी सोच को स्पष्ट नहीं करता, स्त्री विमर्श की अवधारणा और उसका स्वरूप भी स्पष्ट

नहीं हो पाएगा। विदेशों में आज़ाद औरत का संघर्ष है। यहाँ समाज की मानसिकता दृश्यमान होने से स्त्री विमर्श का स्वरूप बेहद क्लियर हैं। स्थितियों और परिस्थितियों के अनुसार संघर्ष कठिन हो सकता है, पर रास्ते दुरूह नहीं होते।

विशाला शर्मा– आप अस्मिता को किस रूप में देखती हैं?

सुधा ओम ढींगरा– मैं अस्मिता को नर/नारी के स्वाभिमान, मान और सम्मान के रूप में देखती हूँ। 'अस्मिता' शब्द के संदर्भ में डॉ. नामवर सिंह ने कहा है कि– "हिंदी में 'अस्मिता' शब्द पहले नहीं था। 1947 से पहले की किताबों में मुझे तो नहीं मिला और संस्कृत में भी अस्मिता का यह अर्थ नहीं है। 'अहंकार' के अर्थ में आता है जिसे दोष माना जाता है। हिंदी में 'आइडेंटिटी' का अनुवाद 'अस्मिता' किया गया और हिंदी में जहाँ तक मेरी जानकारी है, पहली बार अज्ञेय ने 'आइडेंटिटी' के लिए 'अस्मिता' शब्द का प्रयोग हिंदी में किया है।" अस्मिता का अर्थ है– पहचान तथा भाषाई अस्मिता से तात्पर्य है– भाषा बोलने वालों की अपनी पहचान। विदेश में रहते हुए भारतीय संस्कृति और हिंदी भाषा हमारी पहचान है और अस्मिता है।

विशाला शर्मा– टॉरनेडो कहानी के संदर्भ में क्या आप स्त्री– विमर्श की शुरुआत स्त्री अस्तित्व की प्रतिष्ठा से मानती हैं?

सुधा ओम ढींगरा– देखा जाए तो स्त्री– विमर्श है ही नारी अस्मिता का संघर्ष, जो अब आंदोलन बन चुका है। नारी सिर्फ हाड–मांस का पुतला नहीं, वह एक इंसान भी है। उसे उसी तरह समझा और परखा जाना चाहिए। उसके स्वाभिमान, मान और अस्तित्व को स्वीकारना बेहद जरूरी है। सामाजिक संरचना में उसे दोयम दर्जे पर रखने का यह मुखर विरोध है। उसकी मानवीय गरिमा को प्रतिष्ठित करने का अभियान है। जिस दिन सामाजिक व्यवस्था उसके अस्तित्व की प्रतिष्ठा की रक्षा करना शुरू कर देगी, जब समाज इन मुद्दों को गंभीरता से लेने लगेगा, जब समाज नारी के सरोकारों के प्रति जागृत हो जाएगा, उस समय स्त्री–विमर्श की उपयोगिता समझ में आएगी अन्यथा यह एक नारा ही रह जाएगा।

पुरुषसत्ता ने आधी आबादी के एक बड़े हिस्से को मानसिक गुलामी के बुने एक ऐसे जाल में जकड़ा हुआ है जहाँ स्त्री अस्तित्व और उसकी प्रतिष्ठा को ही नकारा गया है। आधी आबादी का वह हिस्सा इस घिनौने तथ्य को समझ ही नहीं पा रहा; क्योंकि वह रूढ़ियों, परंपराओं की बेड़ियों में बँधा हुआ है जो पुरुष की मानसिक गुलामी के जाल का ही हिस्सा है। मेरी कहानियाँ विसंगतियों और विद्रूपताओं को दिखाती सरोकारों की कहानियाँ हैं।

विशाला शर्मा– क्या आप 'क्षितिज से परे'– कहानी और स्त्री अस्मिता को एक दूसरे का पूरक मानती हैं?

सुधा ओम ढींगरा– विशाला जी, मैं जब कहानी लिखती हूँ, दिमाग में कोई

विमर्श या स्त्री से जुड़ा कोई भी तत्त्व नहीं होता। कई कहानियाँ तो अपने–आपको लिखवा लेती हैं। 'क्षितिज से परे' ने भी स्वयं को लिखवा लिया। कहानी में छिपे अर्थ ढूँढ़ना आलोचकों और शोधार्थियों का काम होता है, लेखक तो बस लिखता है।

विशाला शर्मा– स्त्री स्वर को स्थापित करने में भारत के संदर्भ में दोहरे मानदंड की मानसिकता है। क्या यह सच है?

सुधा ओम ढींगरा– दोहरे मानदंड ही स्त्री स्वर को मुखर नहीं होने दे रहे। अधिकतर परिवारों में बेटी और बहू के लिए अलग–अलग मानदंड होते हैं, इन्हें लागू करवाने के लिए भी स्त्रियाँ ही होती हैं। कभी संस्कारों के नाम पर, कभी परंपराओं के नाम पर स्त्री ही स्त्री का शोषण करती है। धर्मस्थलों में स्त्री को पूजा जाता है, व्यवहार, समाज और परिवारों में उसका शोषण होता है। भारत की आबादी के हिसाब से बहुत कम परिवारों में परिवर्तन आया है। लड़कियाँ शिक्षित हो रही हैं, आगे बढ़ रही हैं पर सुरक्षित फिर भी नहीं। दोहरे मानदंडों की मानसिकता के कारण ही हर क्षेत्र में अपनी मोहर लगाने के बावजूद स्त्री प्रताड़ित हो रही है और दोषी भी कहलाई जाती है। स्त्री जाति को अपना स्वर स्वयं साधना होगा और दोहरे मानदंडों की मानसिकता से मुक्त होने के लिए एकजुट होकर जागृति लानी होगी।

विशाला शर्मा– समाज स्त्री– पुरुष के संदर्भ में अलग–अलग मानदंडों को स्थापित करता है। क्या आप उन मानदंडों को रेखांकित कर सकती हैं?

सुधा ओम ढींगरा– विशाला जी, समाज के मानदंड तो बाद में शुरू होते हैं, पहले तो घरों के मानदंडों का गणित बिगड़ा हुआ है। भ्रूण हत्या सबसे बड़ा उदाहरण है। लड़की है, पता चलते ही भ्रूण में ही उसकी हत्या कर दी जाती थी। अब गर्भावस्था में लिंग बताना कानूनन अपराध है, तो जन्म के बाद कई परिवारों में लड़की के जन्म के बाद उसका जीना हराम कर दिया जाता है। उसे हर समय एहसास करवाया जाता है कि वह लड़की है और दोयम दर्जे की है। घर के लड़के को अधिक महत्त्व दिया जाता है। परिवारों से उठते मानदंड ही समाज की सोच बनते हैं। समाज क्या है? एक से अधिक लोगों के समुदायों से मिलकर बना वृहद् समूह। लड़के–लड़की को दिया गया घर में असमानता का व्यवहार और संस्कारों तथा परंपराओं के नाम पर दिए गए संकीर्ण मानदंड ही समाज में स्त्री–पुरुष के संदर्भ में अलग–अलग मानदंड स्थापित करने का कारण बनते हैं। अगर किसी घर में आर्थिक संकट है तो लड़के को पढ़ाया जाता है, लड़की की पढ़ाई रोक ली जाती है। विधवा या तलाकशुदा स्त्री के लिए समाज के मानदंड और हैं तथा विधुर या तलाकशुदा पुरुष के लिए समाज के मानदंड और हो जाते हैं। इसके पीछे सदियों से चली आ रही पुरुष सत्ता की मानसिकता है। नारी जाति को दोयम दर्जे का मानते हुए उसे कमतर आँकने के लिए रीति–रिवाजों और परंपराओं का सहारा लेकर इन मानदंडों को

स्थापित किया गया है।

कुछ परिवर्तन हुए हैं–सती प्रथा का अंत हुआ है। आर्य समाज ने विधवा विवाह को प्रोत्साहित किया था, अब कुछ परिवारों में विधवा और तलाकशुदा स्त्रियों के विवाह होने लगे हैं, पर विधुर पुरुष और तलाकशुदा पुरुष को शादी के बाद जितनी आसानी से समाज से स्वीकृति मिलती है, महिला को नहीं मिलती। बलात्कार की शिकार महिला को ही समाज में शर्मिंदगी उठानी पड़ती है। बलात्कारी तो सरेआम घूमता रहता है। यही हाल तेज़ाब से जली लड़की का होता है, दोषी तो सबूतों के अभावों में छूट जाता है और उम्रभर लड़की पीड़ा और समाज की हेय दृष्टि झेलती है। यह दोहरी मानसिकता और अलग–अलग मानदंड ही हैं।

विशाला शर्मा– क्या स्त्री की व्यक्तिगत रूप से पहचान के माध्यम से ही स्त्री अस्तित्व की स्थापना संभव है?

सुधा ओम ढींगरा– आज स्त्री हर क्षेत्र में अपना स्थान बना चुकी है, फिर भी अपने अस्तित्व की स्थापना की लड़ाई लड़ रही है। दिक्कत यह आ रही है कि अभी भी भारत के बहुत से हिस्सों में अज्ञानता का कोहरा है और अशिक्षा का अंधेरा है। वहाँ तो स्त्री को डायन तक बना दिया जाता है। स्त्री स्वयं में बहुत मजबूत है, समस्या यही है कि वह अपनी मजबूती को ही पहचान नहीं पाती। वह सदियों से बेटी, बहन, पत्नी के रूप में ही अपनी पहचान समझती आई है। इन्हीं रूपों के साथ वह इंसान भी है, उसका अपना एक वजूद है, उसका मान–सम्मान है, यह एहसास ही नहीं कर पाती। ज्ञान की रोशनी, शिक्षा और उच्च पदों पर आसीन होकर अगर वह एहसास कर भी ले तो कर कुछ नहीं सकती। सदियों से परिवार और समाज का ढाँचा ऐसा रहा है, स्त्री को इंसान समझा ही नहीं जाता। उसके अस्तित्व का कोई महत्त्व नहीं स्वीकारा जाता। ऐसी बात भी नहीं कि स्त्रियों ने कोशिश नहीं की पर पुरुष सत्तात्मक माहौल में बेहद चुनौतियों का सामना करते हुए कइयों को भारी कीमत चुकानी पड़ी। अगर परिवारों में सब स्त्रियाँ एक दूसरे का साथ दें तो समाज की सोच और मानसिकता में परिवर्तन लाया जा सकता है। सबसे बड़ी चुनौती तो महिलाओं की स्वयं से है, घर और समाज में महिला ही महिला का साथ नहीं देती।

विशाला शर्मा– 'उसका आकाश धुंधला है'– की सुहानी सक्षम होकर भी अपने अस्तित्व की रक्षा करने में स्वयं को असमर्थ पाती है। इसका मुख्य कारण आप क्या मानती हैं?

सुधा ओम ढींगरा– सुहानी के चरित्र से यह बताने की कोशिश की गई है कि कई बार सक्षम से सक्षम व्यक्ति भी कमजोर पड़ जाता है, जब उसका दिल टूटता है या प्रेम में धोखा होता है। कई लोग शारीरिक तौर पर मजबूत होते हैं पर भीतर से बेहद भावुक, अति संवेदनशील। ऐसे लोग दिल से सोचते हैं, कठिन परिस्थितियों

में बुद्धि और विवेक का प्रयोग नहीं करते। भावनाओं के सहारे ही पूरा जीवन नहीं काटा जाता। किसी के लिए जीवन रुकना नहीं चाहिए, पर कई अति भावुक लोग बस जीवन को यादों के सहारे ही काट लेना चाहते हैं। सुहानी के विपरीत सुरभि पतली–दुबली लड़की है, शारीरिक तौर पर सुहानी की तरह सौष्ठव नहीं पर मन से, इच्छाशक्ति से बहुत दृढ़ है। सुहानी प्रेम में धोखा खाने के बाद अपना आत्मविश्वास खो देती है; जिससे उसकी इच्छाशक्ति कमज़ोर पड़ जाती है। परिस्थितियों से मुकाबला करने की हिम्मत ही नहीं जुटा पाती। हालात से निकलने और नये रास्ते तलाशने के लिए न वह कोशिश करती है, न दिमाग की खिड़कियाँ खोलती हैं। बस प्रेमी के धोखे और अतीत की यादों को ही जीवन बना लेती है। अस्तित्व की रक्षा करने में स्वयं असमर्थ इसलिए है; क्योंकि उसने अपना अस्तित्व ही मार डाला था। सुहानी जैसे चरित्रों को किसी आत्मीय द्वारा माहौल और सोच से निकलने की जरूरत होती है, जो सुरभि करती है।

विशाला शर्मा– स्त्री के अस्तित्व की स्थापना हेतु कब तक पितृसत्तात्मक समाज को दोष दिया जाता रहेगा? क्यों सक्षम स्त्री आज भी अपने अस्तित्व की रक्षा करने में असमर्थ नजर आती है?

सुधा ओम ढींगरा– विशाला जी, जैसे कि मैंने पहले प्रश्न के उत्तर में कहा है कि सदियों से पारिवारिक और सामाजिक ढाँचा और उनकी मानसिकता ऐसी बन चुकी है कि स्त्री के स्वतंत्र अस्तित्व को स्वीकारा नहीं जाता। अगर स्त्री उनके द्वारा स्थापित मानदंडों, मर्यादाओं और सीमाओं में रहते हुए अपना कार्य करती है तो वह उन्हें स्वीकार्य होती है। जहाँ वह स्वतंत्र रूप से अपने अस्तित्व की रक्षा करने की कोशिश करती है, वहीं पुरुष सत्ता से अधिक स्वयं स्त्रियाँ ही उसके खिलाफ खड़ी हो जाती हैं। इसके लिए सक्षम महिला भी अपने अस्तित्व की रक्षा करने में असमर्थ नजर आती है क्योंकि घर–परिवार और समाज में स्त्री ही स्त्री का साथ नहीं देती। सक्षम महिलाओं को अपने अस्तित्व की रक्षा और स्थापना के लिए बहुत संघर्ष करना पड़ रहा है। जरूरत है पुरुष से पहले स्त्रियों को शिक्षित करने और उन्हें उनके अधिकारों के प्रति सचेत करने की। स्त्रियों का पुरुषसत्ता की पैरवी करने और अपनी ही जाति का साथ न देने का सबसे बड़ा कारण आर्थिक निर्भरता है। आर्थिक के साथ–साथ वह मानसिक गुलामी की भी शिकार है। घर की इकाई में स्त्री मजबूत हो जाए तो समाज में परिवर्तन आने की संभावना है, तब सशक्त स्त्री भी अपने अस्तित्व की रक्षा में समर्थ होगी।

विशाला शर्मा– क्या आप 'मर्यादा और संस्कार' को स्त्री अस्मिता के स्थापित करने वाले मूल्यों के विरोध में देखती हैं जैसा कि 'उसका आकाश धुंधला' है कि सुहानी करती है?

सुधा ओम ढींगरा— अपने मन का जीवन साथी ढूँढ़ना गलत नहीं। वही सुहानी करती है। यह बात अलग है कि जिस प्रेम की खातिर वह विद्रोह करती है, उसी में धोखा खाती है। 'मर्यादा और संस्कार' के नाम पर जब स्त्री अस्मिता को रौंदा जाता है तो समय की माँग भी यही होगी कि उनमें परिवर्तन की जरूरत है।

विशाला शर्मा— क्या भारतीय स्त्री विमर्श और पाश्चात्य स्त्री विमर्श की अवधारणा भिन्न—भिन्न है?

सुधा ओम ढींगरा— भारतीय स्त्री विमर्श और पाश्चात्य स्त्री विमर्श की अवधारणा भिन्न नहीं है। अंतर है देशों के हालात, परिस्थितियों, समाज की सोच और मानसिकता का। भारत की सभ्यता तकरीबन 5000 साल पुरानी है। पुरातन सभ्यताओं का एक इतिहास होता है, साथ ही सदियों पुरानी परंपराओं, मान्यताओं ने जीवन—मूल्यों को प्रभावित किया हुआ होता है जिससे कई बार रूढ़िवादी सोच समाज में पनपकर उस समाज की मानसिकता बन चुकी होती है। यही मानसिकता स्त्री विमर्श की स्थापना और विकास में आड़े आती है। अमेरिका की उम्र सिर्फ 245 साल की है। नई परिकल्पना, नई सोच का देश है। आजाद मानसिकता वाला समाज है। कानून और समाज स्त्री का सहायक है।

विशाला शर्मा— 21वीं शताब्दी में 'बेघर सच' जैसी कहानी के माध्यम से आप स्त्री के किस सच को समाज के समक्ष लाना चाहती हैं?

सुधा ओम ढींगरा— विशाला जी, शताब्दी कोई भी हो, भारत में आज भी लड़की अपने ससुराल में दूसरे घर की ही मानी जाती है। मायके में भी लड़की को पराये घर की ही कहा जाता है। उम्रभर लड़की अपने लिए एक घर की तलाश करती रहती है जिसे वह अपना कह सके। इसी कड़वे सच को मैं समाज के समक्ष लाना चाहती थी। 21वीं शताब्दी में ही मैं यह कहानी लिख सकती थी, जिसके अंत में मुख्य पात्र रंजना पुरुष के बिना अपना घर बनाती है और पूरी कायनात में अपना अक्स देखती है और प्रकृति सक्षम रंजना के साथ हो लेती है, जिसका अभिप्राय है कि पुरुषसत्ता के विरुद्ध एक सक्षम स्त्री ने अस्मिता की रक्षा कर अपने अस्तित्व की स्थापना की है।

भारत आज कितनी भी तरक्की कर ले, पश्चिम की नकल कर ले, लोग पश्चिम के गुणों को ग्रहण नहीं कर रहे, पश्चिम के अवगुणों को ही ले रहे हैं। अमेरिका में स्त्री को भी इंसान समझा जाता है। लड़के—लड़की में भेदभाव नहीं माना जाता। ससुराल में सास और बहू की समान इज्जत होती है। कोई बहू जलाई नहीं जाती। ससुराल में किसी लड़की को सास की सत्ता का सामना नहीं करना पड़ता।

विशाला शर्मा— 'और आँसू टपकते रहे' कहानी भारत की ही नहीं बल्कि पूरे विश्व की असहाय स्त्री की कहानी के रूप में सामने आती है, इस समस्या का

समाधान आप कैसे देखती है?

सुधा ओम ढींगरा– यह आदिकाल से चली आ रही समस्या है। इसकी रोकथाम के लिए बहुत–सी संस्थाएँ और लोग पूरे विश्व में कार्य कर रहे हैं। पर यह समाप्त नहीं हो सकती। पुरुष सत्ता का कामातुर होना, लोलुप होना और महिलाओं की तस्करी से धन कमाने की प्रवृत्ति को जड़ से समाप्त करना दुष्कर कार्य है। आसानी से पैसा कमाने के चक्कर में बहुत सी लड़कियाँ व शादीशुदा स्त्रियाँ कॉलगर्ल या एस्कॉर्ट सर्विसेज में स्वयं ही आ रही हैं। देह व्यापार में धकेली गई मजबूर स्त्रियों को तो निकालने की कोशिश की जा सकती है पर स्वेच्छा से आई स्त्रियों का क्या किया जाए? युवा पीढ़ी में यह प्रवृत्ति और भी बढ़ रही है।

विशाला शर्मा– क्या आप मानती हैं कि आर्थिक रूप से स्वतंत्र स्त्री 'स्त्री अस्मिता' की रक्षा करने के लिए सक्षम है?

सुधा ओम ढींगरा– बिलकुल सक्षम है, अगर परिवार और समाज उसका साथ दे। सक्षम स्त्री को परेशानी तब आती है जब परिवार तो साथ देता है, समाज नहीं देता और कई बार दोनों नहीं देते।

विशाला शर्मा– आपकी कहानियों में स्त्री विमर्श के अनेक पक्ष हैं जो आपकी रचनाशीलता के परिचायक हैं। आप कहानी के इन विविध पक्षों को किस प्रकार जोड़ती हैं?

सुधा ओम ढींगरा– मैं सिर्फ लिखती हूँ। किसी विषय पर कहानी बन जाती है, किसी पर उपन्यास। मैं किसी वाद, विमर्श या विचारधारा के तहत नहीं लिखती, बस लिखती हूँ। कई बार तो पात्र स्वयं लिखवा लेते हैं। कहानी या उपन्यास लिखने के बाद पाठकों के हवाले कर देती हूँ। आलोचक उनमें स्त्री विमर्श ढूँढ़ें, उसके अनेक पक्ष ढूँढ़ें या इन विविध पक्षों को जोड़ा कैसे हैं, ढूँढ़ें। उनकी खोज।

विशाला शर्मा– क्या आपने भी अपने अनुभवों को लेखन में स्थान दिया है?

सुधा ओम ढींगरा– ज्यों–ज्यों अनुभव बढ़ते हैं, लेखन में परिपक्वता आती है। अनुभवों को लेखन में स्थान दिया नहीं जाता, स्वाभाविक तौर पर आ जाता है।

विशाला शर्मा– आम आदमी का दर्द समझने के लिए संवेदनशील होना जरूरी है। क्या लेखक का संवेदनशील होना आवश्यक है?

सुधा ओम ढींगरा– निःसंदेह संवेदनशील व्यक्ति ही दूसरे के दर्द को महसूस कर सकता है। यह भी माना जाता है कि लेखक अति संवेदनशील प्राणी होता है या शायद अति संवेदनशील होने से ही वह लेखक होता है।

विशाला शर्मा– पश्चिमी देशों में नारी ज्यादा स्वतंत्र तथा अपने अधिकारों के प्रति सजग दिखाई देती है। यह स्थिति भारत में क्यों नहीं है?

सुधा ओम ढींगरा– क्योंकि भारत के परिवारों की सोच और मानसिकता वैसी नहीं जैसी पश्चिम के लोगों की है। भारतवासी पश्चिम का पहनावा, खान–पान,

त्योहारों को तो अपनाना चाहते हैं पर वहाँ की कार्यप्रणाली, सफाई, ईमानदारी, सबको एक समान समझना, कोई ऊँच–नीच नहीं और ऐसी सोच नहीं अपनाना चाहते जो मस्तिष्क की खिड़कियाँ खोलती हैं। भारत के लोग दोहरी मानसिकता में जीते हैं। सजगता कहाँ से आएगी?

विशाला शर्मा– स्त्री विमर्श को लेकर आपने कई कहानियाँ लिखी हैं। आपकी पसंदीदा कहानी कौन–सी है और क्यों?

सुधा ओम ढींगरा– विशाला जी, मैंने कहानियाँ लिखी हैं जैसे कि मैं पहले भी कह चुकी हूँ स्त्री विमर्श आप जैसे आलोचकों ने ढूँढ़ा है। इस माँ को अपने सब बच्चे प्यारे हैं, कोई विशेष पसंद का नहीं।

विशाला शर्मा– समाज में घटित घटना से कहानी बनती है किंतु कहानी सिर्फ घटना नहीं होती। उसमें आत्मा लेखक की होती है। आप इस बात से कितना सहमत हैं?

सुधा ओम ढींगरा– मैं एक पत्रकार भी रही हूँ। मेरे विचार में समाज में घटित घटना समाचार बनती है और समाचार बनाती है। घटना के साथ जब कल्पना मिलती है, तब कहानी का जन्म होता है।

विशाला शर्मा– दो देशों की संस्कृति को एक साथ प्रस्तुत करते हुए आपको किस परेशानी का सामना करना होता है। क्या पूर्वाग्रह से ग्रसित होने की सोच से बचते हुए न्याय–संगत तर्क के साथ चलना आपको कठिन नहीं लगता?

सुधा ओम ढींगरा– बेहद कठिन और चुनौतीपूर्ण लगता है। आपने दुखती रग पर हाथ रख दिया। सबसे बड़ी चुनौती आती है जब कहानी का कोई पात्र दो संस्कृतियों के टकराव से पैदा हुए तनाव के अंतर्द्वंद्व से गुजरता है। दोनों देशों के जीवन–मूल्यों और दर्शन की भिन्नता में अगर थोड़ा सा झुकाव भारतीयता की तरफ हो जाता है तो कहा जाता है कि पुरानी बात है नया कुछ नहीं, पूर्व–पश्चिम का अंतर है। जबकि यह सायास नहीं होता, स्वाभाविक और अनायास होता है। यहाँ हर भारतीय अपने भीतर एक भारत लेकर चलता है। यही हमारी अस्मिता और पहचान है। पात्र की मनःस्थिति और परिस्थितियों को कुशलता से वर्णित करने के बावजूद उसे समझा नहीं जाता। बस पूर्वाग्रहों से ग्रसित सोच के अंतर्गत देश से बाहर लिखे जा रहे साहित्य पर प्रतिक्रिया दे दी जाती है। अगर यहाँ की विद्रूपताओं, विसंगतियों को लेकर विदेशी पात्रों के साथ कुछ रचा जाता है तो कह दिया जाता है कि पाठक वर्ग तादात्म्य कैसे बनाए? जब विदेशी साहित्य को पढ़ा जाता है तो उसे कैसे समझा जाता है? अब अगर पूर्व अनुभवों और स्मृतियों में रचे–बसे पात्र आपसे कुछ लिखवा लें तो कहानी पढ़कर नामी साहित्यकार तक, जो भारत में बैठकर विदेशी जीवन पर कहानियाँ लिखते हैं, कहने लगते हैं कि जिस देश में रह रहे हो, अगर वहाँ का भोगा हुआ यथार्थ नहीं लिखा तो इसका अर्थ है आपने उस देश को स्वीकारा नहीं। हम आप

से वहाँ की कहानियाँ चाहते हैं। हम कलम के सिपाही हैं और साहित्यिक मोर्चे पर हिंदी साहित्य को एक नये भावबोध, नये सरोकार, एक नयी व्याकुलता, बेचैनी तथा एक नये अस्तित्व बोध व आत्मबोध से समृद्ध करने के लिए डटे हुए हैं। डॉ. कमल किशोर गोयनका जी, जिन्होंने प्रवासी साहित्य पर बहुत काम किया है, ने हमारे साहित्य में निहित इन अनुभूतियों का वर्णन किया है।

विशाला शर्मा— विदेश में रहकर भी आप हिंदी के प्रचार–प्रसार हेतु सजग हैं। आने वाले समय में विश्वमंच पर हिंदी का भविष्य कैसा होगा? अपना मत व्यक्त कीजिए।

सुधा ओम ढींगरा— विशाला जी, विश्वमंच पर तो हिंदी का भविष्य बहुत उज्ज्वल है। विचारणीय स्थिति भारत की है जहाँ सरकारी स्कूलों को छोड़कर प्राइवेट स्कूलों में हिंदी का एक शब्द बोलने पर भी बच्चों को पाँच रुपये का जुर्माना हो जाता है। हिंदी अध्यापक का सबसे कम वेतन है और स्कूल की असेंबली में हिंदी वालों को स्थान नहीं दिया जाता। ऐसे स्कूलों में बच्चे हिंदी सिर्फ हिंदी कक्षा में बोल सकते हैं। आने वाले समय में भारत में हिंदी की स्थिति क्या होगी! यह सोचने वाली बात है; जहाँ युवा पीढ़ी में अंग्रेज़ी बोलना स्टेटस सिंबल बन चुका हो।

❑❑❑

धीरे–धीरे साहित्यकार तभी बड़ा होता रहता है, जितना वह छोड़ता जाता है। साहित्यकार इस मायने में एक गहरा संन्यासी होता है। जिस तरह से जीवन के सब झूठे आवरणों को उतारकर सच्ची आत्मा बाहर निकलती है, वैसे ही साहित्य के शब्दों की सच्चाई तभी उद्भासित होती है, जब हम नकली आवरणों से छुटकारा पाते हैं।

— निर्मल वर्मा

यात्रा–वृत्तांत

मेरी लद्दाख की रोमांचक यात्रा

संजय गोस्वामी

हिंदी विज्ञान संबंधी 500 से अधिक लेख प्रकाशित। विज्ञान क्षेत्र में कई सम्मान प्राप्त। संप्रति–सह–सचिव, हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद।

मैं कई दिनों से लद्दाख जाना चाह रहा था। लेकिन हर बार प्लान बनता और फेल हो जाता। यह कई दिनों से सपना था जो अब पूरा होने जा रहा था। इस बार हमने लेह लद्दाख के लिए 20 दिन का प्लान बनाया जिसके लिए हमने पूरी तैयारी की और फेसबुक पर रोड ट्रिप ग्रुप जॉइन किया। हमने अपने दोस्तों और परिवारों से भी बात की जो लेह लद्दाख गए थे कि हमें क्या सामान ले जाना चाहिए? अगर हम कार से जाते हैं, तो हमें उसमें क्या सामान ले जाना चाहिए? हमें क्या खाना चाहिए? हमने उनसे ऐसे कई सवाल पूछे। फिर हमने अपना मेडिकल चेकअप करवाया। लद्दाख जाने का हमारा सपना सच होने जा रहा था, इसलिए हमने बहुत अच्छी तैयारी की थी। हमने 30 अप्रैल 2024 को सुबह 8 बजे सड़क मार्ग से यह यात्रा शुरू की। हम अपनी इनोवा विस्टा कार में ठाणे (मुंबई शहर) से निकले। मैं, मेरी पत्नी और हमारा बेटा अपने सपने को पूरा करने के लिए एक चुनौतीपूर्ण यात्रा पर निकल पड़े। हमने एनएच 48 के ज़रिए ठाणे से उदयपुर तक 737 किलोमीटर की दूरी (14 घंटे में) तय की। अहमदाबाद से वडोदरा तक का सफ़र बहुत बढ़िया रहा। एनएच 48 पर हमें बहुत ज्यादा ट्रैफिक मिला लेकिन हम नेशनल एक्सप्रेस वे–1 से बहुत आसानी से निकल गए। अगले (दूसरे) दिन हम उदयपुर से जयपुर (397 किलोमीटर – 7 घंटे) के लिए निकले।

सफर बहुत खूबसूरत रहा। स्वर्णिम चतुर्भुज परियोजना का सड़क वाला हिस्सा देखने लायक है। तीसरे दिन हमने जयपुर से पठानकोट (707 किलोमीटर – 12 घंटे) की यात्रा की। यह रास्ता बहुत खूबसूरत था। चौथे दिन हम पठानकोट से श्रीनगर के लिए निकले। इस रास्ते पर जम्मू से श्रीनगर तक सड़क का काम चल रहा था, इसलिए काफ़ी परेशानी हुई। यहाँ एक चेनानी नाशरी सुरंग आती है जो 9.28 किलोमीटर लंबी है और जिससे उधमपुर पहुँचने में कम से कम डेढ़ से दो घंटे का

समय बचता है। इस रोड ट्रिप में हमने कई अद्भुत नजारे देखे जो हमारी आँखों में बस गए हैं। जब हम जम्मू से श्रीनगर जा रहे थे तो हमारा एक अच्छा अनुभव हुआ जिसे मैं आपके साथ शेयर करना चाहूँगा। हम कार के टायर में हवा चेक करने के लिए एक पेट्रोल पंप पर उतरे, वहाँ एक बूढ़े अंकल थे। हमने उनसे कार में हवा चेक करने को कहा। अंकल ने हमसे पूछा, आप कहाँ से आए हैं? जैसे ही हमने कहा– मुंबई से, तो वे बहुत खुश हुए और बोले कि मेरा बेटा भी मुंबई में है। उनका बेटा वहाँ आया हुआ था। उन्होंने उसे बुलाया और हमारा उससे परिचय कराया और कहा कि आज आप मेरी तरफ से चाय पिएँगे, वे हमें एक चाय की दुकान पर ले गए और उससे अच्छी चाय बनाने को कहा, बिस्किट निकाले और हमें पैसे देने लगे। अंकल का यह प्यारभरा व्यवहार हमारे दिलों को छू गया। पाँचवें दिन हम श्रीनगर से कारगिल के लिए निकले, हमें जोजिला दर्रा पार करके कारगिल पहुँचना था। लेकिन हम चेक पोस्ट का समय चूक गए जो कि सोनमर्ग से कारगिल के लिए सुबह 6 बजे से 8 बजे तक का है। फिर हमें उस दिन सोनमर्ग में ही रुकना पड़ा। हमारे साथ और भी कई पर्यटक फँसे हुए थे। हम सभी सोनमर्ग से लेह जाने के लिए मंजूरी का इंतजार कर रहे थे। यह स्थिति जोजिला दर्रे पर भारी बर्फबारी और बर्फ पिघलने के कारण थी। बीआरओ (सीमा सड़क संगठन) लगातार सड़कें साफ करने की पूरी कोशिश कर रहा था। अगले दिन हम फिर सोनमर्ग से कारगिल के लिए चेक पोस्ट पर पहुँचे लेकिन उस दिन भी सभी निराश थे क्योंकि कारगिल से जोजिला तक ट्रैफिक एकतरफा था। सोनमर्ग से 7वें दिन हमने सुबह 5 बजे (तापमान शून्य डिग्री से नीचे) चेक पोस्ट पर अपनी कार पार्क की और सुबह 6 बजे जोजिला पार कर ग्रेटर हिमालयन रेंज में 11,650 फीट की ऊँचाई पर स्थित शानदार जोजिला दर्रे का हमने दौरा किया।

कारगिल युद्ध स्मारक भारतीय सैनिकों के अदम्य साहस की याद में कारगिल दर्रे में बनाया गया एक युद्ध स्मारक है। नामिका दर्रा, फोटुला दर्रा, लामासुरू मठ, मून लैंड स्पॉट, स्नो लावर स्पॉट, सिंधु के संगम का आनंद लिया, मैग्नेटिक हिल, गुरुद्वारा पत्थर साहिब के जादू का अनुभव किया और शाम तक लेह पहुँच गए। 8वें दिन हम सुबह 7 बजे निकले और लेह में दर्शनीय स्थलों की यात्रा शुरू की। लेह पहाड़ों से घिरा एक खूबसूरत शहर है। हम यहाँ की संस्कृति से बहुत प्रभावित हुए। यहाँ का मौसम तरोताजा करने वाला है। यहाँ घूमने के लिए कई जगहें हैं जिनमें हॉल ऑफ फेम भी शामिल है जो भारतीय सेना द्वारा भारत–पाक युद्ध में मातृभूमि की रक्षा करते हुए अपने प्राणों की आहुति देने वाले बहादुर सैनिकों की याद में बनाया गया एक संग्रहालय है। यह सब देखकर हमारी आँखों में आँसू आ गए। फिर हम शांति स्तूप गए जहाँ बुद्ध की अद्भुत मूर्तियाँ और पवित्र पुस्तकें संरक्षित हैं। यह दुनिया का सबसे ऊँचा शांति स्तूप है। नौवें दिन हमने लेह पैलेस (थ्री इडियट्स मूवी का

स्कूल ऑफ रिसर्च), थिकसे मठ, हेमिस मठ का दौरा किया। लेह पैलेस में आपको पूरे शहर के साथ–साथ आसपास के इलाकों का भी मनोरम दृश्य देखने को मिलता है। थिकसे मठ एक खूबसूरत जगह पर स्थित है। समुद्रतल से करीब 3600 मीटर की ऊँचाई पर स्थित इस मंदिर में भगवान बुद्ध की 15 मीटर ऊँची प्रतिमा है जो लद्दाख की सबसे बड़ी प्रतिमा मानी जाती है।

हमने दसवाँ दिन बड़ी मुश्किल से गुजारा। सुबह से ही हम चुनौतियों का सामना कर रहे थे। मौसम की स्थिति ठीक नहीं होने और खारदुंग ला दर्रे पर भारी बर्फबारी होने के कारण हम खारदुंग ला दर्रे से हुंदर के लिए निकले। बारिश हो रही थी, हम उसके करीब पहुँच गए लेकिन टायरों के लिए बर्फ की जंजीरों के बिना हमें आगे बढ़ने की अनुमति नहीं दी गई। हम 17,000 फीट नीचे लेह लौट आए और एयरपोर्ट रोड स्केलजांगलिंग के पास एफसीआई गोदाम से टायरों के लिए दो बर्फ की जंजीरें बनवाईं जिसके लिए हमें 5000 रुपये खर्च करने पड़े। बर्फ की जंजीरों के साथ हम शाम 5 बजे फिर खारदुंग ला के लिए निकल पड़े क्योंकि हमें सूचना मिल चुकी थी कि हमें हुंदर जाने की अनुमति दी जाएगी। हमने शाम 07:30 बजे तक इंतजार किया, लेकिन हम निराश होकर वापस आ गए। भारी बर्फबारी के कारण किसी को भी जाने की अनुमति नहीं थी। ग्यारहवें दिन हम पैंगोंग झील के लिए निकले। यह समुद्रतल से 4,200 मीटर (13,800 फीट) से अधिक की ऊँचाई पर स्थित है। इस झील तक पहुँचने के लिए हमने चांग–ला दर्रे से होकर जाना चुना।

चांग–ला दर्रे में भारी बर्फबारी हो रही थी। टायरों पर बर्फ की जंजीरों के बिना गाड़ी चलाना मना था। टायरों पर जंजीरें होने के बावजूद हमारी गाड़ी फँस गई। लेकिन वहाँ मौजूद सैनिकों ने हमारी बहुत मदद की, उन्होंने गाड़ी निकाली और हम आगे बढ़ गए। पैंगोंग पहुँचते ही हमारी सारी थकान दूर हो गई क्योंकि हमें ऐसा लग रहा था जैसे हम स्वर्ग में आ गए हों। वहाँ का तापमान–7 डिग्री था। हम झील को जितना भी देखें, हमारा मन संतुष्ट नहीं हुआ। हम रात को पैंगोंग से बहुत दूर दरबुक गाँव में रुके। 12वें दिन हम दरबुक से निकलकर कारगिल पहुँचे, तब हमें पता चला कि भारी बर्फबारी और हिमस्खलन के कारण लेह से निकलने के सभी रास्ते बंद हो गए हैं (यानी लेह–श्रीनगर 5 दिनों के लिए बंद हो गया है और लेह–मनाली पूरे सीजन के लिए खुला नहीं है)। हमारे कार्यक्रम के अनुसार हमें मनाली से निकलना था। चूँकि लेह–मनाली सड़क खुलने की कोई संभावना नहीं थी और लेह–श्रीनगर सड़क पिछले पाँच दिनों से हिमस्खलन के कारण बंद थी, इसलिए हमने लेह से निकलने का फैसला किया क्योंकि हमारा लक्ष्य 20 मई तक मुंबई पहुँचना था। हमने देखा कि श्रीनगर जाने के लिए कई लोग पिछले पाँच दिनों से कारगिल में फँसे हुए थे, उनमें से कई की फ्लाइट छूट गई थी, कई कश्मीर घूमने से चूक गए थे।

13वें और 14वें दिन एडवाइजरी के अनुसार सोनमर्ग–कारगिल यातायात को सोनमर्ग से छोड़ा जाना था। हमें पता चला कि उसके बाद वाहन कारगिल पहुँचेंगे, कारगिल से वाहन श्रीनगर के लिए छोड़े जाएँगे, इसलिए हम कारगिल के लिए निकल पड़े और मिनमर्ग में दोपहर 2 बजे चेक पोस्ट पर लाइन में खड़े हो गए। हमने रात 8 बजे तक निकासी का इंतजार किया, लेकिन चूँकि हिमस्खलन के कारण जोजिला दर्रा बहुत साफ नहीं था, वाहन देर रात मिनमर्ग पहुँचे, चेक पोस्ट ट्रैफिक पुलिस ने हमें चेकपोस्ट छोड़ने के लिए कहा। चूँकि उस क्षेत्र में जंगली भालुओं का खतरा था, सभी वाहन पास के एक गाँव में वापस आ गए क्योंकि वहाँ 100 से अधिक वाहनों में लोग थे, होटल में रहना और खाना एक समस्या थी। हमने अपनी गैस और खाद्य सामग्री ले ली थी ताकि हम अपने भोजन की व्यवस्था कर सकें। हम सुबह 6:30 बजे चेक पोस्ट पार कर गए। उसी दिन अनंतनाग में सेना और आतंकवादियों के बीच गोलीबारी हो रही थी, इसलिए सेना के काफिले को गुजरने देने के लिए वाहनों को रोक दिया गया था। हम अनंतनाग में थे जिससे हमारी आगे की यात्रा में देरी हुई।

सड़क की हालत भी बहुत खराब थी। इस कारण हम जम्मू और आगे लुधियाना के रास्ते में भारी ट्रैफिक के बीच उधमपुर में चेनानी नाशरी सुरंग से गुजरे। हम रात 8 बजे लुधियाना पहुँचे। सोलहवें दिन लुधियाना से जयपुर (542 किमी) (9 घंटे) हाईवे पर होटल हवेली में नाश्ता करने के बाद हम जयपुर के लिए निकल पड़े। चूँकि हमें कारगिल से श्रीनगर जल्दी जाना था इसलिए हमारे पास दो दिन अतिरिक्त थे इसलिए हमने जयपुर में रुकने का फैसला किया। हम शाम 6 बजे जयपुर पहुँचे। सत्रहवाँ/अठारहवाँ दिन जयपुर दर्शनीय स्थल, मेरठ पैलेस, नाहरगढ़ किला (जहाँ राजा मानसिंह द्वारा निर्मित दुनिया का सबसे बड़ा किला स्थित है), जयगढ़ किला, सिटी पैलेस, हवा महल, जंतर मंतर, अल्बर्ट हॉल संग्रहालय, पन्ना मीना का कुंड, बिड़ला मंदिर और बापू बाजार में खरीदारी करते हुए जयपुर होटल पहुँचे। उन्नीसवें दिन हम जयपुर से उदयपुर (397 किलोमीटर – 8 घंटे) गए। अजमेर दरगाह, नाथद्वारा (आस्था की प्रतिमा) के दर्शन किए जहाँ शिव की सबसे ऊँची प्रतिमा 369 फीट है। फिर हम रात 8 बजे होटल पहुँचे। 20वें दिन हम उदयपुर (731 किलोमीटर) (14 घंटे) से रात 8 बजे ठाणे पहुँचे। हालाँकि हम अपनी यात्रा पूरी नहीं कर पाए। खराब मौसम के कारण हम लद्दाख में कई स्थल नहीं देख सके, फिर भी यह एक साहसिक यात्रा थी। बर्फ पर सबसे ऊँची सड़क पर टायरों पर बर्फ की जंजीरों के साथ गाड़ी चलाने का अनुभव। हमने इस यात्रा का भरपूर आनंद लिया और जीवन में इसका अनुभव किया। अगर आप लद्दाख की यात्रा के बारे में सोच रहे हैं तो ज़रूर जाएँ। आप अपनी यात्रा को रोमांचक भी बना सकते हैं।

❑❑❑

ओड़िया कहानी

नर्ककुंड

संजय पण्डा

एक कविता–संग्रह और दो कहानी–संग्रह प्रकाशित। 2024 का केंद्रीय साहित्य अकादमी युवा पुरस्कार तथा 2020 कादंबिनी पुरस्कार।

अनुवाद : कृष्ण कुमार अजनबी

ओड़िया और हिंदी के अनुवादक। हिंदी में सात पुस्तकें, ओड़िया में अनूदित तेरह किताबें और हिंदी में अनूदित चौदह किताबें प्रकाशित। विभिन्न संस्थाओं से सम्मानित।

राम प्यारी! कम हियर।

सिर पर लाइट हाऊस के अग्रांश की भाँति टोपी पहने हुए व्यक्ति ने पुकार लगाई...एक गहरे हरे रंग की शर्ट पहने उस केबिन के पास खड़े हुए आदमी को। उसने जरा ठहरने का इशारा किया तो वह केबिन के पास खड़ा रहा।

कुछ देर बाद फिर से उसने पहले की भाँति पुकार लगाई– अरे एल.डी..! इस बार वह आदमी लाल गमछे को देख जैसे कोई साँड रौंदते हुए आता है, वैसे गुस्से से दौड़ता हुआ आ गया।

–अरे...पंडा जी! कितनी बार मैंने मना किया है, सार्वजनिक रूप से मुझे मेरे गुप्त नाम से न पुकारा करो।

–तुम्हें अगर राम प्यारी नाम अच्छा लगता है तो फिर पहले क्यों नहीं सुना तुमने और फिर तुम उस टूटी केबिन के पास यूँ लुढ़क क्यों रहे थे? और फिर वहाँ की वह बदबूदार मूत्र की गंध..! उफ...! जानते हो ? पूरे मार्केटभर के लोग वहाँ जाकर पेशाब करते हैं।

उस आदमी ने जरा शर्ट की कॉलर उठाकर अपना सीना फुलाकर कहा– यही तो तुममें और मुझमें फर्क है! तुम जानते हो वहाँ सब पेशाब करते हैं और मैं जानता हूँ वहाँ कुछ और ही होता है।

–कुछ और का मतलब?

–अभी आते समय मुझे अंदर से खुसुर–पुसुर की आहट सुनाई दी।

–तो क्या हुआ? कोई किसी से पेशाब करते हुए बतिया रहा होगा मोबाइल पर। आदमी तो अब टॉयलेट में भी मोबाइल पर बातें करता रहता है।

प्यारी ने एक राज खोलने की मुद्रा में कान के पास आकर चुपके से कुछ कहा तो पंडा जी सुनते ही बंदर के जैसे तिलमिलाकर उछलने लगे।

–इम्पॉसिबल (असंभव)! यहाँ तो मैं कब से बैठा हूँ। देख नहीं पाता क्या?

तभी प्यारी ने खिलखिलाकर उस केबिन की ओर उँगली दिखाई। सही बात है, वाकई उस केबिन से निकल आया एक जोड़ा... युवक और युवती..!

–पंडा जी! तुम अगर ऐन वक्त में नहीं टपके होते तो आज मैंने उन्हें रंगे हाथों पकड़ लिया होता।

–इस बीच एकाएक वह युवक बाइक पर सवार होकर कहीं गायब हो गया और वह युवती उसी रास्ते से होती हुई आ रही थी; जहाँ गुलमोहर के चबूतरे पर बैठकर ये दोनों चर्चा कर रहे थे। युवती जरा करीब आई तो पंडा ने आहिस्ता से अपना जंघा सहलाकर कहा– अच्छा प्यारी! यह लड़की शायद इसी शहर की है?

–पंडा जी! इसी शहर क्या! यहीं सामने ...जो आटा चक्की के पास पीले रंग की बिल्डिंग है, उसी घर की है। छत पर खड़ी होकर अक्सर वह गपियाती रहती है।

पंडा जी मुँह फाड़कर प्यारी को ताकते रह गए। वे मन में सोच रहे थे...कैसा अद्‌भुत जासूस है! नाम तो ठीक है। लोकल जासूस प्यारी मोहन। इसी समय प्यारी ने उसी युवती को जानबूझकर छेड़ते हुए कहा–मुखड़ा भले गोरा क्यों न हो...आज केबिन के पीछे मुँह तो काला हो गया। और वह युवती उस छेड़खानी को समझ गई शायद। तभी वह दस–बारह कदम तक प्यारी की ओर गुस्से भरी नजरों से देखती हुई चली गई।

–देख तो रहे हो पंडा जी! इसे कहते हैं... चोरी... ऊपर से सीनाजोरी... थोड़ी देर और होता तो रंगे हाथ पकड़ता फिर...?

उसका ध्यान हटाने के लिए पंडा ने दूर से हाथ के इशारे पर पहचान कराते हुए कहा –प्यारी! उस आदमी को देखकर तुम्हारा जासूसी आइडिया क्या कहता है..? यानि कि वह आदमी किस चरित्र का होगा? उसने कुछ देर उस आदमी का निरीक्षण किया। उम्र पंडा के सामने ही होगी। अर्थात् अपने से दस–बारह साल बड़ा। मध्यम–सा चेहरा। पोशाक परिधान से अत्यंत गरीब–सा लगता परंतु अजीब किस्म का... काली पड़ती हुई सफेद धोती के साथ आस्तीन कटा हुआ अँगरखा। आँखों पर हीरो माफ़िक काला चश्मा। शराब की दुकान से बाहर निकलते हुए तेज कदमों से आगे बढ़ रहा था। हाथों में थी शराब की एक शीशी और पॉलीथिन की एक पुड़िया। चखना के लिए ही होगा... कुछ न कुछ..!

–आदमी कतई गरीब नहीं हो सकता। जरूर कुछ राज छुपा है। दाल में कुछ काला है। फटे पुराने कपड़े पहनकर नंगे पैर चलता हुआ आदमी भला इतनी महँगी या कीमती शराब कैसे खरीद सकता है?

–हो सकता है वह किसी और के लिए ले जा रहा हो?

पंडा जी इस बात पर सहमत नहीं हुए तो प्यारी ने इसे साबित करने हेतु उससे

बाजी लगा ली। समय समय पर इन दोनों के बीच इसी तरह की बाजी कई बार लगती रहती है। जो हारता है उसे दो प्लेट अण्डा चॉप देना होता है जिसे दोनों मिल–बाँटकर खाते व खिलाते हैं। प्यारी पिछले साल किसी तरह ग्रेजुएशन करके फिलहाल एकदम बेरोजगार फालतू बैठा है। घर से खाना खाकर दिनभर यहीं टहलता फिरता है। लेकिन लड़के–लड़कियाँ, प्यार–व्यार, शादी–ब्याह, तलाक, सैक्स, बलात्कार, मर्डर आदि घटनाओं पर उसकी पैनी नजर होती है। इन सब पर उसकी एक खास टिप्पणी हुआ करती है। शाम के समय पंडा जी के साथ इन सबकी चर्चा करता है। पंडा जी उच्च शिक्षित व मध्यम आयु वर्ग के हैं। रिश्वत नहीं दे पाने के कारण उन्होंने एक अच्छी खासी सरकारी नौकरी खो दी है। बाजार में दो–चार दुकानें किराये पर दे रखी हैं। बस, इतनी ही उनकी कमाई है। वरना वे फक़त बेरोजगार ही हैं।

थोड़ी सी दूरी बनाकर दोनों उस व्यक्ति के पीछे–पीछे चलने लगे। वह आदमी भी लंबे–लंबे कदमों से बाजार का आखिरी छोर लाँघ रहा था। कुछ देर बाद वे दोनों एक अंधी गली में दाखिल हुए जिसकी बदनामी के चलते एक अलग–सी पहचान बन गई थी उस शहर में। ये बात उन दोनों को भली–भाँति ज्ञात थी। लेकिन वे कभी इसके अंदर आए हुए नहीं थे। वह व्यक्ति सीधे आगे की ओर बढ़ता जा रहा था। अब की बार वह एक टिन की छतवाले मकान में घुस गया। पंडा जी ने प्यारी के हाथ खींच लिए।

–क्या... और आगे जाना उचित होगा?

–इतनी दूर जब आ ही गए हैं तो देखते हैं... क्या होता है? प्यारी ने बिना संकोच के जवाब दिया।

दोनों उस मकान तक पहुँचे और दरवाजे के पास सिमटकर अंदर की बातें सुनने की कोशिश करने लगे। इस बीच अंदर से सुनाई दिया...

–अंदर आ जाओ...दरवाजा खुला है।

पंडा जी जरा झिझक गए। प्यारी के इशारे से वे समझ गए कि वह कहना चाहता है कि.... मैं हूँ न...जरा भी परेशान मत होना। फिर कान में फुसफुसाकर कहा – डरने की कोई बात नहीं है। कई लोग यहाँ आ रहे हैं... जा रहे हैं। वे हमें भी ग्राहक समझ रहे होंगे। मैं कई बार आने की सोच तो रहा था पर आ नहीं पाया था। आज जब मौका आ ही गया है तो देखा जाए!

इन सब चीजों में प्यारी की गहरी दिलचस्पी है, ऐसा आसानी से अंदाजा लगाया जा सकता है। लेकिन बेचारे पंडा जी बेवजह फँस गए हों, ऐसा महसूस कर रहे थे। दोनों दरवाजा खोलकर अंदर दाखिल हुए। अंदर जाकर देखते हैं तो एकदम छोटा सा बंगला। दो–चार कुर्सियों के साथ पानी से भरा एक बर्तन रखा हुआ है। दीवार

पर धूल जमी नब्बे के दशकों की कुछ सिने तारिकाओं की अधनंगी तस्वीरें स्टीकर की भाँति चिपकी हुई थीं। अच्छे से अंदाजा न हो सके, ऐसे ही सस्ते ब्रांड की रूमस्प्रे की महक नाक में प्रवेश कर रही थी। बंगले से सटे होस्टलनुमा कमरे में कुछ चीजें थीं जो स्पष्ट दिखाई नहीं दे रही थीं। पंडा जी बेहद डरे सहमे हुए लग रहे थे।

—प्यारी...! मुझे कुछ अच्छा नहीं लग रहा है। चलो...निकल चलते हैं... मैंने हार मान ली है... ऐसा ही समझो...भले तुम।

पंडा जी की ऐसी हालत देख, जरा निराश होकर उसने कहा — आप तो हमेशा कुछ नया करते समय काली बिल्ली की भाँति रास्ता काट ही देते हैं...खैर. .. जाने दो फिर, चलते हैं... लेकिन ऐसे तो जा नहीं सकते न !..प्रतीक्षा करो। वह जितना रुपये कहेगा... हम इस तरह मोलभाव करेंगे कि वह हमें यहाँ से भगा देगा। समझे..?

इस बीच दोनों के मन से बाजी वाली बात पूरी तरह से उतर गई थी। वे चाहते थे कि यहाँ से निकलने के लिए सिर्फ एक बहाना चाहिए। चूँकि उन्हें ये सब बातें बिल्कुल असहज—सी लग रही थीं। लेकिन प्यारी की नस—नस में एक अजीब सी सिहरन महसूस होने लगी थी। वह क्रमशः व्यग्रातुर हो रहा था। मन ही मन किसी नई चीज की तलाश में मानो दिल में किसी आधुनिक सुंदर ग्लैमर युवती की झलक दिखाई दे रही हो। बिल्कुल अपने कॉलेज की निचली बैंच वाली लड़की जैसी मिनी स्कर्ट में आती... उन्नत उरोज...होंठ के नीचे काला तिल। जिसने एक बार बुरी तरह उसकी जूती से पिटाई कर दी थी। फिर भी रोज सपने में वही आती रही है हर बार आधी रात के वक्त... एक उत्तेजना बनकर। प्यारी यही सोच रहा था... बिल्कुल वही या फिर उसकी जैसी किसी और का आज साथ मिलेगा।

कोई पुराना ग्राहक होगा यह धारणा उनके मन से हट गई थी; जब वह आदमी अंदर से निकलकर सामने रखे टेबल पर शराब निकालकर पीने लगा और फिर मोलभाव शुरू कर दिया। जिस शराब को वह कुछ देर पहले लेकर आया था। हालाँकि वह पुड़िया पास में नहीं थी। वह बिना चखना के सहारे भी आसानी से पी रहा था। उसने उनकी ओर देखे बिना ही पूछा— दो लोग हो ?

प्यारी ने पंडा जी को आँख मारकर उस आदमी से कहा— जी हाँ।

—घर कहाँ है ?

—इसी शहर में..।

—पाँच हजार।

पूर्व निर्धारित योजना के मुताबिक प्यारी ने पंडा जी से पाँच सौ रुपये देने का इशारा किया। पाँच हजार जो कह रहा है, वह घटते घटते जरूर दो—ढाई हजार में आ सकता है। इसीलिए यह एकदम से राजी न होने वाली बात थी। लिहाजा उन्होंने

हिचकते–झिझकते हुए मोलभाव करना शुरू कर दिया।

–देखो भइया! हमारे पास इससे ज्यादा नहीं है। पाँच सौ से एक रुपये भी ज्यादा नहीं।

उस आदमी ने गुस्से में आकर तीखी नजरों से उन दोनों को कुछ समय देखा और फिर कहा– यह कोई साग–सब्जी की दुकान है जो चले आए अपनी रंगत दिखाने..?

–तो फिर हम चलते हैं..? इतना कहकर पीछे मुड़ते ही उसने पुकारा–सुनो... तुम्हारी दिक्कत मैं समझ सकता हूँ। साला..बीवी से दिल भरता नहीं है। तुम्हें लौटा देने से मुझे अभिशाप लगेगा... पाप लगेगा। लाओ, जो कुछ भी रखे हो।

पंडा जी ने प्यारी की ओर एक असंतोष भरी नजरें फेरीं। वह व्यक्ति इस बीच शराब पीकर फिर से बाहर जाने की तैयारी कर रहा था। जाते वक्त कह गया– जब मन भर जाए तो चले जाना...

प्यारी ने पंडा जी को मुँह फुलाए बैठे देख पास आकर भींचते हुए कहा– यहाँ से जाने के बाद मैं तुम्हें अपने हिस्से का दो सौ पचास रुपये दे दूँगा।

–क्या कहा? तुम्हारा हिस्सा..! मतलब...?

–अच्छा चलो...पूरे पाँच सौ रुपये ले लेना। लेकिन नाराज मत होना। यहीं बैठे रहो। मैं ये गया और आया।

पूरे पैसे मिल जाएँगे सुनकर वे जरा खुश दिखे। प्यारी अंदर चला गया। वैसे भी वह बहुत बेसब्र था। पहला कमरा खाली था तो दूसरे में कदम रखा। हाँ, शायद यही है। ज्यादा कुछ सजावट नहीं थी। कमरे में नीले रंग की चटाई पर एक महिला बैठी हुई थी। वह महिला दीवार से टिककर कागज की पुड़िया में से कुछ खा रही थी। पतला सा चेहरा। लंबे से मुखड़े पर नाक हल्की बड़ी थी। वह प्रौढ़ सी लग रही थी। ....तो फिर क्या यही है...?..दहलीज पर खड़े होकर चारों ओर नजरें फेरते हुए वह अपनी कॉलेज क्रॉस के साथ मिलानकर बहुत निराश हुआ मन ही मन। उसकी सारी उत्तेजना पारे के समान एकाएक नीचे उतरती चली गई। अचानक आँखों से ओझल होता हुआ एक और नजारा देख वह मर्माहत हुआ। नजारा यह था कि उस महिला का पेट असामान्य रूप से फूला या उभरा हुआ था जैसे कि वह गर्भवती है। प्यारी क्या करे..? यह सोचते समय उस महिला ने खाने पर से अपना ध्यान हटाकर आदेश देने जैसा इशारा कर कहा– अंदर आ। यहाँ बैठ मेरे पास।

–आ..!...प्यारी को बड़ा अचरज हुआ ऐसे संबोधन और व्यवहार से! वह समझ नहीं पा रहा था कि यह... आ...उसे तुच्छ या हेय दृष्टि से या फिर खुद को उम्रदराज समझकर कहा गया था। वह यंत्रवत् दो कदम आगे बढ़ा और चटाई पर जाकर बैठ गया। उसके मन में उभरी इस भावना ने उसे दया और नफरत दोनों के बीचोबीच

खड़ा कर दिया था।

आदतन अपनी जिज्ञासा के वशीभूत होकर क्या कुछ पूछना चाहता था.... तो क्या....?

—बड़ी जोर से भूख लग रही थी तो उसका लाया नाश्ता खा रही थी। थोड़ी देर रुक...

—नहीं... मैं कह रहा था...उसने दोहराया।

—हाँ, हो जाएगा... कभी निराश होकर लौटने नहीं दूँगी...वैसे भी रोज पाँच—छह ग्राहकों का दिल भरती हूँ।

—नहीं... मैं पूछ रहा था... वो क्या है कि...तुम्हारा पेट...

—अबे...हरामखोर..! मैं उसी पेट की ही तो बात कर रही हूँ... तब से... मैं क्या नहीं जानती कि तू क्या कहना चाहता है..? साला... सारे मर्द एक जैसे होते हैं। तुम्हारी नजर किसी औरत पर पड़ते ही सिर्फ बदन के सारे उभरे हुए अंग—प्रत्यंग दिखाई देते हैं।

वह एकदम से चुप्प हो गया। स्कूल में गणित के सूत्र नहीं बताने पर डाँट खाने जैसा। बकर—बकर कर दूसरों का दिमाग चाटने वाला प्यारी आज आज्ञाधीन छात्र की तरह एक वेश्या के सामने यूँ बैठा हुआ है। यह देखने पर पंडा जी को बहुत हँसी आती। कॉलेज के दिनों में ... पेटेंट मेडिसिन...(फकीर मोहन सेनापति का प्रसिद्ध नाटक) खेलते समय वह स्वयं उस्मान तारा की भूमिका में था। अहा..! कितनी सेवा, कितना प्रेम था उसमें। पराया मर्द होने पर भी वह कितनी आत्मीयता और अपनेपन से खुद को परोसा करता था। याद है उसे। नाटक सिखाते समय सर ने कितनी खूबसूरती से उसे सिखाया हुआ था यह सब। वह चाहता था कि कभी न कभी वहाँ जरूर जाएगा और उसका लुत्फ़ उठाएगा। लेकिन यहाँ तो सब कुछ उल्टा हो रहा है।

महिला ने उसके चेहरे को गौर से देखा और फिर धीमी आवाज में कहा— यह आठवाँ महीना है। तबीयत वैसे भी अच्छी नहीं रहती। कब क्या हो जाए...पता नहीं। क्या करूँ? तुम्हारी भूख मिटाने पर ही हमारा पेट भरेगा। छोड़ो इन सब बातों को। अच्छा.. यह बता... यह तेरा पहला मर्तबा है शायद..?

सिर झुकाए आहिस्ता सिर हिलाकर गिरगिट की भाँति अपनी हामी भरी उसने।

—अच्छा...! तभी तो शांत है...? वरना दो—चार बार आने के बाद तो लकड़बग्घा जैसा टूट पड़ेगा। है न रे, छोकरे..?

—जी नहीं...मैं फिर कभी नहीं आऊँगा... मुझे कुछ नहीं चाहिए... मैं अब यहाँ से चला जाऊँगा... उसकी आँखों से और बातों से नफरत की बू तैरती आ गई। पता नहीं क्यों... उसका दम घुटने लगा था। वह कुछ भी नहीं चाहता था वास्तव में। वह अपने

आपको धिक्कारने लगा था। क्या वह इतना जलील होकर संबंध बना पाएगा..? वह भी आठ महीने की गर्भवती के साथ..? और जो कि उम्र में भी उससे काफी बड़ी है..? नहीं... कतई नहीं। उससे नहीं होगा। उसे नर्क क्या है, नहीं पता। पंडा जी से उसने कई बार सुना है कि पापी लोग किस तरह नर्क में पतित होते हैं। उसे ऐसा प्रतीत हो रहा था कि उस समय वह उस नर्क में सशरीर हो। उसकी तो अब खैर नहीं...?!

यदि आग में जलने का शौक नहीं है तो फिर आग के सामने यूँ बैठे रहने का कोई मतलब नहीं है।

—फूट यहाँ से... महिला ने उसे दुत्कार कर कहा।

मानसिक रूप से वहाँ से चले आने के लिए खुद को तैयार कर उसने महिला से कहा— आप क्या इसी तरह इस नर्ककुंड में सारी उम्र यूँ बिता देना चाहती हैं? कभी नहीं सोचा कि साफ–सुथरी–सी जिंदगी को तसल्ली से जी लें? यानि मेरे कहने का सीधा–सा सवाल यह है कि क्या आपने इस नर्क से निकलकर एक अच्छा इंसान बनने की कभी कोशिश नहीं की...?

बात पूरी होने से पहले ही उसने उत्तेजित होकर कहा— साला ...कमीना...तो क्या हम इतने गंदे इंसान हैं रे..? और तुम लोग साले अच्छे इंसान हो ? अगर इतने अच्छे हो तो फिर इतनी सुबह–सुबह इस अंधी गली में तुम्हारे कदम क्यों चले आते हैं?

कुछ देर और वह बड़बड़ाती रही अस्पष्ट रूप से। शायद गाली दे रही थी। कुछ देर बाद अपने आप शांत होकर उसने धीरे से कहा— तू अखबार पढ़ता है?

—हाँ...

—(क्राइम) अपराध का समाचार पढ़ता है ?

—हाँ

—तो फिर पाँच साल पहले घटित एक विदेशी महिला के कत्ल की बात पता होगी जिसे मीडिया ने... लेमली रेप...के नाम से हाइलाइट किया था।

—हाँ... जिसे पेट्रोल डालकर जला दिया गया था और जिसमें उस समय के गृहमंत्री के बेटे का हाथ था। देशभर में यह खबर आग की तरह फैल गई थी।

—तो तू बहुत कुछ जानता है। उसके बाद क्या हुआ?

—देश की जनता भड़क उठी। कैंडिल मार्च हुआ। रास्ता रोका गया। अपराधियों को गिरफ्तार और मंत्री जी से इस्तीफे की माँग में नारे लगाए गए। महिलाएँ शेरनी की भाँति दहाड़ने लगीं। महिला कमीशन, मानव अधिकार आदि सभी समर्थन में आ गए। और सबसे बड़ी बात सुमालिन नाम की एक एनजीओ–कर्मी ने विधानसभा के समक्ष अपने शरीर में पेट्रोल का छिड़काव कर विरोध जताया था। अगर वह इतना नहीं करती तो शायद उस केस को दबा दिया गया होता।

—अच्छा..अच्छा... उसके बाद...?

—पुलिस ने गिरफ्तार किया। सबसे बड़े वकील ने बिना फीस लिए केस लड़ा और केस जीत भी गए। लेमली टैनिस को न्याय मिला। मंत्री ने इस्तीफा दिया। उनके बेटे समेत तीनों अपराधी अभी जेल में हैं।

—उसके बाद...

—उसके बाद क्या हुआ ?

—कुछ नहीं..! अच्छे लोगों की कहानी यहाँ समाप्त होती है। हा... हा... हा.! वह पागलों की भांति हँसने लगी...

—तेरी कहानी जहाँ खत्म होती है वहाँ से मेरी कहानी शुरू होती है। तुझे अभी भी पता होगा कि वह मंत्री का बेटा किस जेल में है। अपराधी को पकड़ने वाले हिम्मती पुलिस वाले अब प्रमोशन पाकर असिस्टेंट कमिश्नर बन गए हैं। और वह वकील बार एसोसिएशन के प्रेसिडेंट। लेकिन तुझे पता नहीं होगा कि सुमालिन अभी कहाँ है ?

—अर्थात्....?

प्यारी ने शक की निगाह से उसे देखा। तो क्या यही सुमालिन है ? यह कैसे संभव है? इतने साल पहले टीवी पर देखी हुई उसकी एक दो झलक से वह याद नहीं कर पा रहा था...उसका चेहरा—मोहरा। ऐसी एक हिम्मती लड़की भला कैसे बन सकती है नर्क की...?

महिला ने खुद उद्घोषणा की।

—मैं ही सुमालिन हूँ। वही सुमालिन जिसने अन्याय के खिलाफ आवाज उठाकर अपनी जिंदगी को दाँव पर लगा दिया था। जिसका मंत्री पद चला गया, वह मेरे पीछे पड़ गया। पुलिस बिक गई। वकील भी बिक गया और मुझे बना दिया गया अंधी गली की वेश्या..! तुम्हारी दुनिया के सारे अच्छे इंसान मेरे लिए शैतान बन गए। उन अच्छे इंसानों के हस्ताक्षर अब भी मेरे बदन पर ताजे निशान जैसे बने हुए हैं। एकदम तरोताजा जिन्होंने मेरे निषिद्ध अंगों पर किसी एक ऐसी अभिशप्त रात में निशान लगाया था। अधजले सिगरेट की लौ अब भी मेरे बदन पर और सीने में दस्तावेज की भाँति तरोताजा है। देखेगा..? देख सकेगा? तेरी उस अच्छी दुनिया के बड़े—बड़ों के खूनी कारनामे...?

तुझसे हो पाएगा तो... आ...मैं खोल दे रही हूँ अपना जिस्म तेरे सामने...देख ले जी भर के... सिर्फ वही लोग ही नहीं, बलात्कार के विरोध करने वाले कैंडिल मार्च में शामिल कई अच्छे—अच्छे लोग भी यहाँ आते हैं.. आ रहे हैं... और आते रहेंगे भी...

निस्तब्ध... सन्नाटा...छा गया...

प्यारी के पास शब्द नहीं थे। वह लौट जाए या फिर वहीं बैठा रहे...यह तय नहीं कर पा रहा था। सुमालिन ने आँसू पोंछकर कहा— चल, चल छोकरे! फूट यहाँ से.

..अपनी अच्छी–खासी दुनिया में लौट जा। फिर किसी दूसरी सुमालिन जैसी वेश्या को गलत कहने से पहले एक बार मेरे इस दर्द को समझने की कोशिश करना।

और याद रख... यही मेरा मंदिर है जिसने मुझे अपना लिया है जिसे विरोध करने वाले अक्सर नर्ककुंड कहते हैं।

प्यारी ने मारे शर्म के सिर नीचा किए आगे कदम बढ़ाया। वह मन ही मन गुणा–भाग कर रहा था कि उसे यहाँ पहुँचाने में उसका कितना हाथ है?! वह स्वयं कितना गुनहगार है? चूँकि वह उन लोगों के मुखौटे उतार नहीं पाएगा; जिन लोगों ने यह नर्ककुंड बनाया हुआ है। वह पूछ भी नहीं पाएगा उनको... जो इस नर्ककुंड में घी डालने का काम कर क्यों आए थे..!

पर वह खुद अपने आपसे तो पूछ सकता है कि वह क्यों आया था यहाँ इस नर्ककुंड में..?

बैठे–बैठे परेशान हो चुके पंडा जी उठकर खड़े हुए और करीब से उन सिने नायिकाओं की तस्वीरों को गौर से निहारने लगे।

अचानक प्यारी को लौटते देख एक उत्साह मन में उतर आया था; शायद यह पूछने के लिए कि आज की अनुभूति कैसी रही...?

❑❑❑

खुसरो दरिया प्रेम का,
उल्टी वा की धार।
जो उतरा सो डूब गया,
जो डूबा सो पार।।

– अमीर खुसरो

मलयालम कहानी

सिलाई

अजिजेष पच्चाट्ट
मलयालम कहानीकार। दो कहानी–संग्रह, एक उपन्यास और एक संस्मरण प्रकाशित। कई महत्त्वपूर्ण पुरस्कार प्राप्त।

अनुवादः डॉ. सुमित पी.वी.
मलयालम से अनुवाद कार्य। आठ पुस्तकें प्रकाशित। संप्रति–केरल के महाविद्यालय में अध्यापनरत

सुबह के छह बजे हमें सूचना मिली कि खदान के पास रबड़ के बागान में लगभग पाँच से आठ दिन पुराना एक शव पड़ा है।

तहसीलदार शराफुद्दीन पी.के. ने जो लोकेशन भेजी थी, उसी के मुताबिक जब हम वहाँ पहुँचे तो करीब पाँच–साढ़े पाँच मीटर लंबे सड़े हुए माँस वाले हड्डी के टुकड़े जमीन को गले लगाने की मुद्रा में पड़े थे।

पुलिस उन लोगों को नियंत्रित करने के लिए संघर्ष कर रही है जो बदबू के कारण निकलने से कतरा रहे हैं।

उस समय तक अधिकारियों ने जगह–जगह से तिरपाल और कपड़े जुटाकर पोस्टमार्टम के लिए एक अस्थायी आड़ तैयार कर ली थी। वहाँ के प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र से मदद के लिए आया जूनियर लड़का जब शरीर के हाथ वाले हिस्से की जाँच करने लगा तो मतली के साथ अगले दरवाजे की ओर भागा।

अचानक मुझे अपने सेवाकाल की पहली उल्टी याद आ गई। एमबीबीएस के बाद, मैंने लगभग दो वर्षों तक हाउस सर्जन के रूप में काम करने के बाद एमडी किया था। अगले ही साल कूनोलमाड प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र में ज्वाइन किया था। ड्यूटी के चौथे दिन, बड़ी भारी बारिश हो रही थी। अस्पताल पहुँचने पर कारीपुर पुलिस टीम मेरा इंतज़ार कर रही थी।

समस्या अज्ञात लाश ही है। चूँकि यह पहला अनुभव था, इसलिए मलप्पुरम से एक वरिष्ठ डॉक्टर को साथ लेकर घटना–स्थल की ओर रवाना हुआ। अबकी लाश ज्यादा सड़ी हुई एक झाड़ियों में छिपा कर रखी हुई मिली! जब हम सौ मीटर की नजदीकी पर पहुँचे, सुबह का नाश्ता अंदर जाने की तुलना में चार गुना तेजी से बाहर आया। इसीलिए तय किया कि उल्टी करने गए लड़के का इंतजार न किया जाए और लगभग सब कुछ मैंने अकेले ही किया।

 ISSN 0523-1418

पोस्टमार्टम और उसकी रिपोर्ट तैयार करने के बाद जब मैं घर लौटा तो दस बज चुका था। पहले मैंने सोचा कि घटनास्थल से सीधे अस्पताल जाऊँगा। फिर उस सोच को बदल कर नहाकर काली चाय पीकर जाने का निश्चय किया।

कल जब दो पोस्टमार्टम केस को बाकी छोड़कर देर से निकल रहा था तो अटेंडर हमीद ने मुस्कुराते हुए पूछा था– 'सर, कल जल्दी आएंगे न?'

'जल्दी–जल्दी तो कहते हैं, क्या इन सब कार्यों का कोई समय होता है! देखते हैं..' जब मैं उबलती चाय की ओर देख रहा था तब फोन बजा तो पहले मुझे लगा हमीद ही होगा। देखा तो वह मंजिमा थी।

'कहाँ, अस्पताल में हो?'

'नहीं। आज सुबह ही बाहर एक केस था। क्या हुआ?'

'नहीं, वैसे कुछ भी नहीं...'

मैं जानता था कि उसने ऐसे ही फोन नहीं किया था, 'तुम बताओ तो।'

मेरी आज्ञा पर झिझकती हुई वह बोलने लगी। 'मैं कल माँ के पास गई थी।' अचानक कुछ देर के लिए हमारे बीच कहीं से एक गहरी खामोशी आई और सीना तान कर खड़ी हो गई। चूल्हा बंद कर चाय में चीनी डालते वक्त वह फिर कुछ कहने लगी।

'छोड़ो यार, माँ अब हमारे साथ कब तक रहेंगी। तुम जरा वहाँ तक जा नहीं सकते...?'

'ठीक है, मैं जाऊँगा...'

'कब से तुम यह बात कह रहे हो? और कुछ नहीं तो बेचारी ने हमें पाल–पोस कर बड़ा करने के लिए बहुत कष्ट उठाया है, कम से कम तुम उस बात को तो याद कर सकते हो?' हमेशा की तरह उसकी आवाज में तीन साल बड़ी होने का भाव झलक रहा था।

'मैं भी पिछले कई सालों से हमें बड़ा करने का विवरण सुन रहा हूँ।' हमेशा के विपरीत मुझे भी गुस्सा आया।

उसे यह बात समझ में आई। 'मैं कहती नहीं हूँ, तुम मुझसे कहलवा रहे हो। नहीं तो कब तक ऐसे अकेले रहोगे... जीतू, तुम सच में जानते हो कि समस्या क्या है? तुम अभी भी उन बीते दिनों को याद करके जी रहे हो!'

'इतना लंबा समय हो चुका। मैं कभी आप लोगों को याद दिलाने आया? नहीं, है ना... कृपया मेरे साथ भी आप सब वैसा ही व्यवहार करें।'

मैंने पहली बार बिना उसकी मर्जी के फोन काट दिया। जब मैंने चाय चखी तो बड़ी खराब लगी। उस पूरी चाय को वॉश–बेसिन में डाल दिया। सुबह–सुबह सारा मूड खराब हो गया।

जब मैं अस्पताल पहुँचा तो स्थिति लगभग वैसी ही थी। पिछले दिन की, दो लाशों का पोस्टमार्टम समाप्त होने तक एक फांसी से मौत और दो दुर्घटना के मामले

आए। सभी युवा लोग!

शाम को ड्यूटी के बाद दिमाग को जरा ठंडा करने के लिए मैं क्लब गया। संयोग से शिनोई को वहाँ देखा तो थोड़ी राहत महसूस हुई। आमतौर पर मैं घर के अलावा क्लब में नहीं खाता हूँ। आज तो बस किसी सोच के साथ इधर चला आया। बातचीत आगे बढ़ कर मंजिमा के फोन तक पहुँच गई।

'यार, मेरी भी यही राय है जो उसने कही। तुम्हें जल्द से जल्द जाकर अपनी माँ से मिलना चाहिए। तुम्हारे किसी पुराने प्यार के खिलाफ थीं तो भी माँ तो माँ हैं न।'

'गलती तो मेरी ही है। मुझे तुम जैसे लोगों से यह सब बताना ही नहीं था।'

शिनोई हँसा। ''एक बात पूछूँ, तुम्हारी माँ के विरोध की वजह से वह तुम्हें छोड़ गई थी, है न...''

'अगर माँ की तरफ से वह शुरुआती प्रतिरोध न होता, तो शायद...'

'कुछ भी नहीं होता। वह तुम्हारे साथ नहीं आ सकती थी। तब भी माँ को दोषी ठहरा रहे हो। तुम्हारी शादी सबसे ज्यादा माँ चाहती हैं। यह मत भूलना।'

'ठीक है। एक और साल बाद मैं पचास बरस का हो जाऊँगा।' मैंने उसकी ओर देखा और खुद का मजाक उड़ाया।

अचानक माहौल खामोश हो गया। शिनोई ने झागदार बियर को देखा और थोड़ी देर के लिए चुप हो गया। 'तुम मुझे और बीजी को देखकर कुछ सीखने की कोशिश करो। हम दोनों के प्रेमी थे। तो क्या हमारे साथ कुछ गड़बड़ है? तुम अभी भी उस धोखेबाज़ के बारे में सोच रहे हो। सबसे बड़ी समस्या भी यही है।'

उसकी धोखेबाज पुकार सुनकर बड़ी भारी गाली मुँह में उभर आई थी। ठीक समय पर पैथोलॉजी विभाग के प्रोफेसर सी.एस. राजशेखरन वहाँ आ गए तो मैंने गाली को उसी रूप में निगल लिया। शिनोई बड़ी भव्यता के साथ उठा क्योंकि राजशेखरन सर उसके गुरु हैं।

'अरे। खाने–पीने के दौरान अपने बाप दिख जाएँ तो भी खड़े होने की कोई जरूरत नहीं है। कैरी ऑन।' बड़े ही खुशमिजाज अंदाज़ से वे शिनोई के गाल छूकर, ऐसा कहते हुए दो टेबल दूर जाकर बैठ गए। हमारे चारों ओर केवल उनके शरीर से निकले किसी विदेश–निर्मित इत्र की गंध मात्र बड़ी संजीदगी से रह गई।

शिनोई ने उनकी ओर देखा और वापस वहीं बैठ गया। 'अगर जीना है तो उनकी तरह। न कोई प्यार, न कोई लड़की और न ही कोई बदमाशी। यहाँ कोई प्यार के साथ जिंदगी से खेल रहा है। अरे यार, तुम उसे ढूँढ़ते हुए कौन–कौन सी दुनिया में गए। इतने समय में कम से कम एक बार तुम्हें ढूँढ़ती हुई कभी वह आई? नहीं।'

उसने मेरा उपहास किया। 'साले, तुम्हें बता दूँ। मैं तुम्हारी पुरानी प्रेमिका को वैयक्तिक रूप से तो नहीं जानता। फिर भी, जो कहानियाँ तुमने अक्सर सुनाई हैं,

उनके अनुसार वह बड़ी कायर है।'

'यह तुम्हारा निर्णय है। किसी के द्वारा उसे दोषी ठहराना मुझे बिल्कुल पसंद नहीं है।'

'और नहीं तो क्या! अपने शरीर के बाल काटने से डरती थी न? तब जाकर वह मेडिकल प्रवेश परीक्षा लिखकर घास काटने निकली थी!'

जब यह सुना तो लगा कि वहाँ ज्यादा देर बैठना ठीक नहीं होगा। ऐसा लगता था मानो हम हाथ में स्टेथोस्कोप लेकर पैदा हुए थे। जब मैं अपने गुस्से पर काबू नहीं रख सका तो तीसरा लार्ज एक ही बार में खत्म किया और तेजी से उठ गया।

'अरे, यह गुस्सा सड़क पर जाकर किसी पर उतारेगा तो कल मुझे ही तुम्हारा पोस्टमोर्टम करने की नौबत आएगी। बता रहा हूँ, ऐसा मत करना।' बेहिचक ऐसा कहते हुए शिनोई ने गिलास उठाया और अपने होठों से लगा लिया।

'कोई दिक्कत न होगी, हमीद मुझे ले जाएगा...।'

कार में बैठते समय दिमाग में पूरा शिनोई की कही हुई बात थी। यह बिल्कुल सही है कि कभी भी जीवन के किसी रहस्य दूसरे को न बताएँ। कब और कैसे उसका गलत नतीजा हमें भुगतना पड़ेगा, यह हम कह नहीं सकते। मैं लंबे समय तक बिस्तर पर सीधा होकर लेटता रहा। फिर फोन उठाया और गैलरी खोली। मोबाइल के एकमात्र गुप्त फाइल का पासवर्ड उसका नाम था।

शाइनी कुरियन।

असल में शाइनी मेडिकल कॉलेज के छात्रों के लिए फिल्म अभिनेत्री भानुप्रिया सरीखी थी। उसकी बड़ी चौड़ी आँखें थीं। अच्छा नृत्य करती थी, बड़ी सुंदर कविता प्रस्तुत करती थी, चित्र भी अच्छा बना लेती थी। इतना ही नहीं, शाइनी प्रैक्टिकल परीक्षा के दौरान बहुत ही अच्छे ढंग से बेहोश भी हो जाती थी। दोस्तों को उसकी बेहोशी की कोई फिक्र नहीं थी। लेकिन मेरे साथ ऐसा नहीं था, बड़ा दुख लगता था। शाइनी की ग्यारहवीं बेहोशी के बाद हम कॉलेज के दक्षिणी कोने पर बड़े पेड़ के नीचे बैठे थे। पास ही उगे शंख–पुष्पों के बीच से गौरैयों के चहकने की आवाज।

'मंजीत, मुझे शेविंग सेट से अपने प्यूबिक हेयर शेव करने में भी डर लगता है। उस तरह की छुरी लेकर मैं दूसरों को कैसे चीर–फाड़ सकती हूँ!'

सुनते ही मैं अचानक हँस पड़ा।

उसे यह थोड़ा अजीब लगा। 'यह मैंने मजाक के लिए नहीं कहा था। मैं अपने परिवार के आग्रह पर एमबीबीएस करने आई हूँ। क्या तुम्हें पता है, दुनिया में कितने बच्चे अपनी इच्छा के विपरीत का विषय सीखने के बाद मानसिक समस्याओं से पीड़ित रहते हैं? मेरे लिए इतना काफी है कि किसी तरह इस सिरदर्द को पूरा कर यहाँ से बच कर निकलूँ।'

उसकी आँखें भर आईं तो मुझे भी दुख लगा।

'ऐसा मत कहो...' हल्के पतले काले बालों वाले उसके हाथ को मैं प्यार से छूने लगा तो उसने अपना हाथ खींच लिया।

थोड़ी शर्मिंदगी के साथ मैंने पेड़ की ओर देखा। उस पर तो कौवे के घोंसले और उसके ऊपर छोटी सिल्ही के घोंसले हैं। उन घोंसलों के अंदर से पक्षी शावकों की अपरिपक्व किलकारियाँ गूँजती हैं...

'तब तो हमें उस डर से छुटकारा पाना होगा...' आखिरकार, कहीं छुए बिना मैंने कुछ कहकर पूरा किया।

उस घटना के तीसरे दिन उसे लेकर मैं मुर्दाघर पहुँचा। सुरक्षा गार्ड को आधी बोतल शराब या थोड़ी सी पेथिडीन देने पर चाबी हमारे हाथ में दे दी। मुझे यकीन था, अगर मैं शाइनी को मुर्दाघर जाने की बात कहता तो वह नहीं आती। इसलिए उसे पंजाबी हाउस फिल्म की कहानी बताकर हॉस्पिटल के अंदर बरामदे से होते हुए वहाँ लाया। जब शाईनी को पता चला कि मुर्दाघर के अंदर खड़ी है तो वह काँप उठी और चारों ओर देखकर मेरे पीछे आकर छुपने लगी।

'डरो मत', मैंने उसे आश्वस्त किया। फिर उसके कान में फुसफुसाया : 'मरने वाला व्यक्ति आखिरी बार यहीं बात कर सकता है। थोड़ा और स्पष्ट कहूँ तो मृतकों का अंतिम इकबालिया बयान यहीं पर होता है। यहाँ से निकल जाने पर वे हमसे कुछ नहीं कह सकते।'

उसकी तेज़ साँस जमे हुए वातावरण में छटपटाई। मुर्दाघर में हमेशा मौत की गंध और शांति की ठंडक की गंध होती है। विशाल हॉल के टेबल पर कतार में पड़ी लाशें... हालाँकि उन सब लाशों को ढंककर रखा गया था तो भी मैंने उन सभी पर नज़र दौड़ाई, फिर एक जो मुझे पसंद आई, उसे मैंने छुआ और धीरे से उसका सफेद कपड़ा खींच निकाला। जैसी उम्मीद की गई थी, वह पूरे शरीर पर बालों वाला पुरुष था। मैंने पहले से ही अपने कोट की जेब में सुरक्षित रखी छुरी निकाली और उसकी ओर मुड़ा। छुरी देखकर वह डरती हुई काँपने लगी। उस खूबसूरत माथे पर पसीना बह निकला और उसकी काली–धब्बेदार ठुड्डी कांपने लगी।

'अरे मेरी प्यारी शाईनी, इन लाशों में से कोई एक भी उठकर तुम्हारी गर्दन को नहीं पकड़ेगी।'

'मुझे लाशों से डर नहीं है, मंजीत।'

'मुझे पता है। तुम्हें डर इस बात का है कि छुरी कहीं माँस में लग जाएगी... अगर लग भी गयी तो अब उनसे खून की धारा नहीं बहने वाली। करना हो तो करो, एमबीबीएस के बाद बाहर निकलते समय कम से कम यह कह सकोगी कि अपने बालों को तो साफ करना सीखा है! बस उतना ही।'

बड़ी देर जिद करने पर पहली बार उसने अपनी आँखें बंद कर पैंतीस बरस की लगने वाली लाश के बालों के घने जंगलों में छुरी चलाई। दरअसल कहना यह होगा कि जब मैं हाथ पकड़ कर जबरदस्ती ऐसा कराने की स्थिति पर आया तब वह स्वयं करने को राजी हुई थी। हालाँकि मैं उसका प्रेमी हूँ, फिर भी मेरे छूने की बात पर भी वह बहुत ज्यादा डर जाती थी।

'तो तुमने उसे अभी तक छुआ नहीं...?'

शेबा हैरान थी। पाँचवें सेमेस्टर की परीक्षा के आलस्य के साथ मैं और शेबा हॉस्टल में बीयर पी रहे थे। शाईनी घर चली गई थी। शरारती ढंग से मैंने 'नहीं' के रूप में सिर हिलाया तो उसने अपनी आँखों से मुझे डराया।

'तो फिर तुम दोनों के बीच कैसा प्यार है? मूर्ख कहीं के! इंसानों की गरिमा को नष्ट करने निकले हैं।' उसने बीयर की बोतल का आखिरी घूँट पी लिया और मुँह से कुछ आवाज निकालते हुए अपने सिर को कुर्सी के पीछे की ओर डाल दिया।

'प्यार का मतलब छूना है?'

'नहीं, प्यार का मतलब चाटना है। हट.... साले।' उसके हाथ से बीयर की बोतल गिर गई और आवाज हुई।

छुट्टी के बाद आई शाइनी के साथ मैंने शेबा की नोक–झोंक साझा की। उस दिन कॉलेज में केवल हम दो ही थे। क्लास के सभी लोग प्रदीप सर के गृहप्रवेश में गए थे। शाईनी को हल्का बुखार था। इस बहाने उसकी देखभाल करने और उसे कॉफी पिलाने के लिए मैं उसके साथ रहा।

'शादी से पहले मैं उसके लिए तैयार नहीं हूँ, मंजीत। हमारा धर्म इसकी इजाजत नहीं देता। प्लीज, मुझे माफ कर दो।'

उसके जवाब ने मुझे थोड़ा चिंतित कर दिया। उस समय मैं पूछना चाहता था कि हम दो धर्म के हैं तो एक कैसे हो सकते हैं? उसकी रूढ़िवादी पारिवारिक पृष्ठभूमि पर चिंतित होने पर वह मेरी ओर देखकर अचानक वह 'शुक्रिया' कह कर मुस्कुराई। मुझे हतप्रभ खड़े देखकर उसने अपने मेलावर रंग के चूड़ीदार का पिछला हिस्सा नीचे कर दिया और बायाँ हाथ बाहर निकालकर धीरे से ऊपर उठाकर दिखाया।

चिकनी और चमकदार बगल!

बालों को साफ की हुई उस खूबसूरत त्वचा को बड़े प्यार से मैंने देखा। मैं उसे खुशी से दबाकर चूमना चाहता था और धीरे, बिल्कुल धीरे, अपने होंठों से उस बगल पर एक तस्वीर खींचना चाहता था।

'तुम इस जगह को एक बार छू लोगे।' मेरी सोच को जैसे पकड़ते हुए उसने कहा और चूड़ीदार के अंदर वापस हाथों को डालते हुए अपनी बड़ी आँखों को शरारत से घुमाया।

'सर, बड़ी देर से फोन बज रहा है।' जब वह अपनी यादों से जगा तो जूनियर लड़का बजता हुआ फोन पकड़कर पास खड़ा हुआ मिला। स्क्रीन पर माँ का नंबर।

मैंने गुस्से से उसे देखा। प्रोफेसर सी.एस. की दूसरी बहन की सबसे छोटी संतान है। फोरेंसिक सर्जन बनने में रुचि रखता है तो उन्होंने मेरे और शिनोई के हवाले कर दिया था।

'मेरे फोन का जवाब देना तुम्हारा काम है?'

वह थोड़ा घबराते हुए कहा – 'नहीं सर, बॉडी खुल गई है। वह भी कहने आया था।'

मैंने फोन जेब में डाला और कैबिन से ऑपरेशन टेबल की ओर चला। टेबल पर बॉडीब्लॉकिंग लगाकर खोली गई एक युवती की छाती। उम्र तीस के करीब है। अपने सेवाकाल में यह पहली बार दस महीने के गर्भ की सभी कठिनाइयाँ झेलता ऐसा मृत शरीर मेरे सामने आया। मैंने सोचा कि पहले बच्चे को बाहर निकालकर उसकी जाँच करूँगा। दस्ताने पहने और छुरी को पेट से नीचे की तरफ खींच लिया। ऐसा लगता था कि भरा हुआ गर्भाशय से बाहर कुछ छलक जाएगा। इसलिए बच्चे को बाहर निकालने में थोड़ी कठिनाई भी हुई। गर्भजल का भयंकर प्रवाह हुआ। एक स्वस्थ पूर्ण विकसित लड़के का भ्रूण। सिर पर प्रचुर मात्रा में बाल जो गीले होने के बावजूद स्पष्ट दिखाई दे रहे थे। मैंने उसके चेहरे को सहलाया.. पहली बार मैं किसी बच्चे के चेहरे को इस तरह सहला रहा था।

वह थोड़ा सा हिला?

नहीं, जेब में फोन वाइब्रेट हुआ। जरूर माँ ही होंगी।

अचानक मेरे दिमाग में एक छब्बीस साल की युवती द्वारा दो साल की लड़की को उठाकर तेज़ बारिश में पुल की रेलिंग पकड़कर ऊपर चढ़ते हुए आत्महत्या करने की तैयारी करने का दृश्य घूम गया। ठीक समय पर उसके गर्भ में सबसे नवीनतम संकुचन शुरू हुआ कि मानो सामने की नदी ही मिट गई। चक्कर आने पर माँ और वह अबोध बच्ची दोनों खिलौनों की तरह पुल की रेलिंग से सड़क पर गिर पड़े।

मैंने टेबल पर पड़ी युवती के चेहरे को एकटक देखा और हाँफने लगा। युवती की शक्ल मेरी माँ की शक्ल से मिलती–जुलती है! फ़ोन बजता रहता है। अचानक सीने में दुःख का एक छोटा–सा टुकड़ा लहरा उठा और मैं फूट–फूट कर रोने लगा।

'बस एक मिनट...' जूनियर लड़के को उतना ही कहकर मैं बाहर निकला।

केबिन में जाकर दस्तानों को निकालकर हाथ धोया। माँ ने अब तक फोन करना बंद नहीं किया। भरी आँखों को हाथ के पिछले भाग से पोंछकर फोन उठाकर धीरे से कान से लगा लिया। भारी सन्नाटा। असमंजस में हूँ कि क्या कहूँ।

'बाबू...' आखिरकार दूसरी ओर से माँ ने आवाज दी।

मुझे ऐसा लगा जैसे पोस्टमार्टम टेबल पर बेसुध पड़ा बच्चा जोर–जोर से रो रहा हो।

'मैं कल आऊँगा, माँ...' मुझे अचानक कुछ इस तरह कहने का ही मन किया।

'सच...?' माँ पूछ रही हैं।

जब मैं बच्चा था, तब 'अपनी माँ को दुनिया में सबसे ज्यादा प्यार करता हूँ–कहने पर वह जो सवाल करती थीं, वही सवाल। मुझे यकीन था कि माँ को अब विश्वास नहीं हुआ है। अंदर से सिसकी का एक झोंका बड़ी तेजी से बाहर आने लगा और वह ग्रासनली में ही फिसल कर गिर पड़ा।

'जी हाँ, सच...' मैंने आश्वासन दिया तो आवाज़ लड़खड़ा गई।

'बेटा, मुझे माफ कर दो...उस समय माँ से गलती हो गई थी।'

दूसरी ओर से कराह सुनाई दी। कई बरसों से दबे हुए दुःख का कुल योग। मुझे नहीं पता कि माँ ने फोन काट दिया या फिर फोन अपने आप बंद हो गया।

जीवन में पहली बार मैं मुर्दाघर में बैठकर चुपचाप रोया। दस मिनट तक उसी तरह बैठने के बाद फिर मैं टेबल के पास चला गया।

रात को जब घर पहुँचा, तो मुझे ऐसा महसूस हुआ मानो कोई चीज जो लंबे समय से पूरे शरीर को बांध रखकर दबाव डाल रही थी, वह ढीली होकर गायब हो गई है। बेहद ख़ुशी का एहसास।

अगली सुबह हमेशा से पहले मैं उठ गया। टहलना रद्द कर दिया। नाश्ते में नूडल्स तैयार किया। मुझे पता था, मेरे वहाँ जाने के आश्वासन पर कितना भी थकावट हों, माँ वह सब कुछ बना लेंगी जो मुझे पसंद है। यह दुनिया की सभी माताओं और बच्चों के बीच का एक रसायनशास्त्र है।

शेविंग कर नहाया और कुछ देर तक आइने के सामने खड़ा रहा। पहली बार, धड़कते दिल के साथ मैंने अपने सिर और मूँछों पर धावा बोलने वाले सफेद बालों को देखा। निश्चित रूप से माँ से मिलने पर तो सबसे पहले वह उम्र बढ़ने के बारे में ही बात करेंगी। किसी तरह छुपाना होगा... डाई की तलाश में जाने का समय नहीं है। अंततः मेज पर काली बॉल पॉइंट कलम दिखी तो अपने दस्ताने वाले हाथ से उसका निब खोलकर स्याही को छुआ और उसे सफेद बालों पर तेजी से लगाया।

सबसे नया कपड़ा पहनने का मन किया। मैंने अलमारी की तलाशी ली तो पता चला कि उसमें नया कुछ भी नहीं है। आम तौर पर समारोहों में नहीं जाता हूँ। पोस्टमार्टम टेबल पर पहुँचते समय स्वाभाविक रूप से कोई और बन जाता हूँ। यदि किसी समारोह या कार्यक्रम में जाना हो तो कमरा छोड़कर स्नान करना होगा। नहीं तो मृत्यु की गंध लेकर जिंदा लोगों के पास कैसे जा सकता हूँ?! नहा लेने पर तो टेबल के पास जाना भी पसंद नहीं है। इस प्रकार समारोहों में शामिल न होने और बाहर न जाने की आदत–सी हो गई। अलमारी में से सबसे नया लगने वाला कपड़ा लेकर पहना और निकलने लगा तो शिनोई का कॉल आया।

'यार...' उसकी पुकार में कुछ गड़बड़–सा लगा।

'क्या हुआ...?' मैं सांसें रोक कर उसके शब्दों का इंतज़ार करता रहा।

'बीजी को अचानक ब्लॉक की समस्या हुई है। स्थिति थोड़ी गंभीर है।'

'तब?'

'हम लोग तुरंत वेल्लोर शिफ्ट हो रहे हैं। तुम जरा जल्दी जाकर ड्यूटी संभाल लेना।'

'यह अच्छा हुआ कि तुमने जल्दी फोन कर लिया। मैं अपनी माँ के पास जाने ही वाला था।'

'यार, और कोई रास्ता नहीं है। सुबह ही टेबल पर दुर्घटना का मामला रिपोर्ट किया है। उसके बादवालों में यदि कोई जटिल केस नहीं है, तो तुम जूनियर डॉक्टर को चार्ज देकर जा भी सकते हो। मैं फोन काट रहा हूँ...।'

कुछ कहने से पहले फोन बंद हुआ। कुछ समझ नहीं आ रहा था कि क्या करूँ, फोन हाथ में पकड़कर मैं कुछ देर तक वहीं खड़ा रहा। फिर माँ का नंबर लगाया। कहूँगा कि फिलहाल थोड़ी देर हो जाएगी। लेकिन कितनी बार डायल किया तो भी माँ का नंबर पहुँच से बाहर था।

मंजिमा को फोन किया तो उसने भी नहीं उठाया। रास्ते में भी उन दोनों से बात करने की मैंने लगातार कोशिश की। लेकिन फोन कभी लगा ही नहीं। बारी–बारी से उन्हें फोन कर रहा था तो अस्पताल पहुँचने का पता ही नहीं चला।

हस्ताक्षर करने के बाद मुर्दाघर पहुँचा और बाहर की ओर देखा, तो कुछ लोग आंगन में एकत्रित थे। उनमें से किसी–किसी का चेहरा जाना–पहचाना लग रहा था। यदि आप मुर्दाघर के प्रांगण में शव का इंतजार करते परिवार के सदस्यों और रिश्तेदारों पर गौर करेंगे तो आपको मृत्यु की मूल प्रकृति का अंदाजा लग जाएगा। उनकी जानकारी के बगैर उनका चेहरा कई सारी बातें बुलंद कर देगा।

जब मैं केबिन पहुँचा तो जूनियर लड़का वहाँ नहीं था।

'सर, एक्सटर्नल जांच प्रोफेसर सी.एस. ने की है। तब तक संदेश आ गया कि राउंड्स के लिए डॉक्टर नहीं है। वह जल्द ही लौट आएँगे।' सभी उपकरणों को तैयार कर हमीद ने यह विवरण देते हुए पूछा। 'मैं साथ रहूँ?'

'नहीं।' मुझे उसमें कोई दिलचस्पी नहीं थी। हालांकि हमीद आधा सर्जन ही है। हमारे चार्ज लेने से पहले कई डॉक्टर अपना कार्य आधा या फिर तीन–चौथाई उसी से करवा लेते थे।

'कोई स्त्री है, सर। सुनने में आ रहा है कि उसने बिना जाने–समझे गाड़ी चलाई थी। देखने पर पता चल जाएगा।'

'मुझे भी अहसास हो रहा है कि मामला पेचीदा है।' मैंने जेब से फोन उठाया

और हमीद को दे दिया। माँ का फोन आ सकता है। कह देना कि अत्यावश्यक सर्जरी है, जल्द ही मैं पहुँच जाऊँगा।

दस्ताने पहनकर मैं कमरे में चला गया। बाहरी जाँच के बाद फिर कपड़े उतारकर शारीरिक जांच करनी होगी। उसके बाद ही पोस्टमार्टम यानी ऑटोप्सी की ओर बढ़ेंगे। जब मैं टेबल के पास पहुँचा तो जैसा हमीद ने कहा था, मेज पर आवश्यक सारे उपकरण और बर्तन कतार पर रखे गए थे।

हाथ में कैंची लेकर मैंने साड़ी पहनकर खून से लथपथ लेटी उस महिला के चेहरे की ओर देखा।

बड़ी–बड़ी आँखें जो सिर के घातक घाव के नीचे खुली हैं!

अचानक मेरा पूरा शरीर कमजोर होने लगा! एक बार फिर ध्यान से देखा। नाक, होंठ, ठोड़ी पर तिल... मैं गिरने से बचने के लिए मेज को कसकर पकड़ा। हाथ से कैंची छूट गई और वह फर्श पर गिर गई। किसी तरह अपनी सिसकियों को नियंत्रित करने के लिए संघर्ष करता हुआ मैं पास की कुर्सी पर गिरता हुआ सा बैठ गया।

मेरी आँखों में अंधेरा छा गया और समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करूँ। ऊपर की तरफ देखता हुआ वहीं कुर्सी पर सीधा लेटा रहा। जीवन में पहली बार मुझे हमेशा के लिए मुर्दाघर से बाहर भाग निकलने का मन किया।

कार्यालय को सूचित करके कहीं भाग निकलना ही होगा। पूरी ताकत लगाकर मैं तेजी से उठा। जल्दी से बाहर निकलने लगा तो सहसा पीछे से आवाज सुनाई दी, 'मंजीत'। मैं चौंककर पलटा।

वह टेबल के ऊपर उठकर बैठी हँस रही है! अब उसके माथे पर थोड़ी देर पहले का बड़ा घाव नहीं है।

'तुम मुझे छोड़ कर जा रहे हो क्या?' वो आँखें भरी हुई हैं! मैंने ध्यान से देखा। 'तो तुम जानना नहीं चाहते हो कि मेरे साथ क्या हुआ? अगर किसी ने मुझे मार डाला हो तो?'

मुझे अपने अंदर बहुत बुरा महसूस हो रहा था। वह हँसती जा रही है।

'उस दिन तुमने कहा था– यही वह जगह है जहाँ मुर्दे आखिरी बार बात कर सकते हैं। याद नहीं?' वह रुक गई। 'वह सच है मंजीत, यहाँ से चले जाने के बाद हम किसी से बात नहीं कर पाएँगे।'

तब तक जमा की गई सारी शक्ति ख़त्म हो गई। मैंने अपना सिर जोर से हिलाया। पैरों के थककर गिर जाने से बचने की कोशिश करता हुआ मैं धीरे–धीरे टेबल तक पहुँचा। सूखे गले के साथ मृतावस्था में लेटी शाईनी के मुलायम बालों वाले हाथ को मैंने गौर से देखा।

'मुझे जरा छू लो मंजीत...' फिर से उसकी आवाज।

तसल्ली देते हुए मैंने उसके सिर को धीरे से सहलाया। उसने नीले रंग की गेंदे के फूल वाली साड़ी पहन रखी थी। खून से सनी हुई उस साड़ी को मैंने धीरे से उतार दिया। गुलाबी स्कर्ट की रस्सी खींचते समय हाथ अनजाने में काँपने लगे। दाहिनी ओर थोड़ा टेढ़ा कर लाल ब्लाउज और गुलाबी रंग की ब्रा को काटकर निकाला। फिर आगे न बढ़ पाने के कारण मैं कुछ देर के लिए चिंतित होकर सिर झुकाकर खड़ा रहा। आखिरकार जब मैंने कैंची सफेद अंडरवियर पर रखी, तो मेरी दृष्टि बिखरकर चौड़ी हो गई।

उसके बिना बालों वाले गुप्त अंग!

मैंने दोनों कंधों को सीधा कर जल्दी से अपनी भरी आँखें पोंछीं। आगे और पीछे की ओर पलटकर उसके शरीर पर लगी चोटों और घावों को ध्यान से देखा और रिपोर्ट दर्ज किया। पेट के निचले हिस्से पर सिजेरियन के लंबे निशान को बड़े दुःख और उससे भी अधिक प्यार से सहलाया।

मैंने उसके पूरे शरीर को पोंछकर साफ किया और टेबल पर ही मशीन पर उसका वजन मापा। सिर उठाकर बॉडी ब्लॉक को गर्दन के पीछे रखने लगा तो कितना भी संयमित रहने के बावजूद मेरे भीतर से एक चीख़ फूटकर बाहर निकली। मजाक रूप में अपने बड़े स्तनों के बारे में वह कहती रहती थी कि हमारे बच्चों को पेटभर दूध पिलाने के लिए मैं इसे सुरक्षित ले चल रही हूँ, वे स्तन अब मुझसे रूठकर दुख के कारण दोनों तरफ झुके हुए हैं।

उसकी चमकती छाती की ओर देख कर मैंने 'स्केलपेल' हाथ में ली। जम गए छाती के माँस से नाभि तक मैंने छुरी खींची। हमारे प्यार की तरह जो पाँच साल एक था, अब उसका शरीर दो हिस्सों में बँट गया। छुरी को सावधानी से दोनों तरफ की त्वचा में खींचा और धीरे–धीरे अंदर की ओर फाड़ा। आंतरिक अंगों को एक–एक करके उठाया। प्यार से देखने पर उसे बेहद सुंदर बनाने वाला दिल, न दिखाई देने पर तड़पता जिगर, बड़े प्यार से बाँटकर खाने वाले भोजन को पचाती आँतें... उस तरह हर एक अंग की बड़ी सतर्कता से जाँच की गई।

गुड़हल डालकर उबाले गए नारियल तेल की खुशबू उसकी घनी जुल्फों से आ रही थी। बाएँ कान के पीछे से शुरू कर सिर के ऊपरी हिस्से से दाहिने कान की त्वचा तक छुरी से काट कर खींचते समय मुझे लगा कि अब तक खोल कर रखी अपनी आँखों को उसने दर्द के कारण बंद कर दिया। जब खोपड़ी को काटने के लिए आरा मशीन इधर–उधर घुमाई तो मैंने उस चेहरे की ओर देखा तक नहीं। जब मस्तिष्क और तंत्रिकाओं की सावधानीपूर्वक जाँच की जा रही थी तो कई बार मुझे ऐसा महसूस हुआ जैसे मेरे कई रूप उसके मस्तिष्क में छिपे हुए हैं।

टेबल पर आने वाले मृत शरीर को सिलकर जिंदा इंसान के जैसा वापस करना

किसी रोगविज्ञानी की पूर्णता होती है। मैं उसे बहुत अच्छी तरह जानता था। इसलिए सिलाई करना बिल्कुल आसान भी था। टांके लगाने के बाद मैंने टेबल साफ किया और उसका शरीर भी पोंछा। बालों में कंघी की। पाउडर लगाया।

ब्रेकअप के बाद सिर्फ एक बार किसी अनजान नंबर से उसने जो संदेश भेजा था, वह अचानक मुझे याद आया। मैं उसी संदेश के कारण उसकी तलाश में सऊदी गया था। वह संदेश तो मुझे हृदयंगम था।

'मंजीत, मैं एक बार एक दिन के लिए ही सही, तुम्हारे साथ रहने आऊँगी। लेकिन तब प्यार करते समय छूने नहीं देती थी, कहकर तुम मुझे गले लगाने से इंकार मत कर देना।'

मेरी आँखें बहुत ज्यादा जल रही थीं। मुझे लगा कि मैं अब नहीं रोऊँगा तो मर ही जाऊँगा। मैं उसके दोनों गाल पकड़कर चुपचाप रोया। फिर उसे आराम से टेबल के दाहिने ओर सरकाकर लिटाया। फिर टेबल के बाईं ओर की खाली जगह पर चढ़ कर मैं लेट गया और जीवन में पहली बार उसे अत्यधिक प्यार से गले लगाया। नकाब हटाया और पहली बार मैंने उसके गाल को चूमा।

उस वक्त मुझे ऐसा लगा जैसे मेरे सीने में कोई फूल खिल रहा हो... मैंने एक हाथ से अपना सीना और दूसरे हाथ से उसको जोर से पकड़ा।

ऐसे कि कोई उस पकड़ को छुड़वा न सके...

अप्रत्याशित रूप से बाहर बारिश होने लगी। जो लोग लाशों का इंतजार कर रहे थे, वे जल्दी से सिर पर हाथ रखकर मुर्दाघर के बरामदे के अलग–अलग हिस्सों में चढ़ कर खड़े हुए। हवा के बड़े झोंके से बिजली कट गई। कहीं से ऑटोमैटिक जनरेटर के शुरू होने की आवाज और रोशनी एक साथ आई।

बड़ी देर बाद भी दरवाजा नहीं खोले जाने पर अटेंडर हमीद धीरे से उठकर दरवाजे के पास आया।

'मंजीत सर...' उसने दरवाजा खटखटाया और अंदर की ओर ध्यान दिया।

'अरे मंजीत सर... कोई समस्या....?'

जवाब न मिलने पर वह बार–बार दरवाजे को खटखटाता रहा।

✶ **स्केलपेल**– सर्जिकल चाकू

✶ **बॉडीब्लॉक**– शव परीक्षण के दौरान शव के नीचे रखा जाने वाला लकड़ी या रन का ब्लॉक।

❑❑❑

हिंदी कहानी

हमज़मीन

राजनारायण बोहरे

पाँच कहानी–संग्रह और तीन उपन्यास प्रकाशित। कई पुरस्कारों से सम्मानित। संप्रति–स्वतंत्र लेखन

बाबू हरकचंद का ज़िंदगी भर का विश्वास एकाएक ढह गया। वे जब से म्युनिसपिल कमेटी की नौकरी में आए थे, ऐसा कभी नहीं हुआ था। उन्होंने अपनी सारी ज़िंदगी शान से गुजारी है। बाज़ार में कभी किसी व्यापारी ने उनकी बात नहीं टाली। लेकिन आज सेठ गहनामल ने उनके विश्वास को एक ही झटके में गहरा तोड़ दिया।

जब उनकी म्युनिसिपल–कमेटी के पास चुंगी नाके लगाने का अधिकार हुआ करता था तब कमेटी में हरकचंद जी ऐसी कुरसी पर थे कि वे नाकेदारों के कामकाज पर सीधे निगाह रखते थे। महसूलवसूली का काम उनके ही पास था। इसी वजह से कस्बे के सारे व्यापारी उनका खास ख्याल रखा करते थे। उन्होंने भी इस कस्बे के हर व्यापारी पर खूब अहसान किए हैं।

चोरी–छिपे पूरा ट्रक भरके माल लाए दुकानदारों को फाइल से संबंधित कागज–पत्तर कई बार बताए हैं जिनके कारण दुकानदारों पर हजारों रुपये महसूल लग सकता था। जानकारी मिल जाने पर दुकानदारों ने कागज–पत्तर में लिखी चीजें अपने यहाँ दर्ज कर लीं। सो दुकानदारों के हजारों रुपये बच गए, पर बदले में हरक बाबू ने कभी किसी से कोई अपेक्षा नहीं की। जिसने जो दिया, प्रेम से ले लिया। नहीं दिया तो भी कोई पच्चड़ नहीं की। हाँ, इन सब कामों की वजह से बाजार में उनका इतना सम्मान जरूर था कि वे यदा–कदा बाजार से निकलते तो दुकानदार उन्हें आवाज देकर बुला लेता और खूब मान देता। खुद उठ के उन्हें अपनी गद्दी पर बिठाता और नाश्ता–चाय–पान के बिना आने न देता। वे जब घर–गृहस्थी की कोई चीज खरीदते, मुँह से माँग के कोई उनसे सामान का मोल न लेता। फिर भी वे न मानते, कम–ज्यादा थोड़े बहुत दाम देकर ही उठते।

कुछ बरस पहले सरकार ने सड़क यातायात को बिना बाधा चलने देने के लिए जब कुछ सुधार किए, तो सबसे पहले म्युनिसिपैलिटी के चुंगी–नाके बंद कर दिए। अब सरकार को क्या पता कि म्यूनिसिपल कमेटी के लिए नाके कितने जरूरी हैं? जरूरी

क्या, हरक बाबू यह मानते हैं कि वे तो प्राणवायु थे, इन कमेटियों के लिए। नाके क्या बंद हुए, नगरपालिका वालों के दिन फिर गए। बुरे दिन आ गए– कर्मचारियों के भी और संस्थाओं के भी।

नाकेदारों और किरानियों के सारे जलवे खत्म हो गए। पहले बज़ट कम होना शुरू हुआ, फिर दफ्तर में दरिद्रता के नजारे प्रकट हुए। घिसे–पुराने परदे, फटे मेजपोश, आधा–अधूरा उजाला और दिन में आने वाली चाय के घटते कपों से बाहर के लोग भी अंदाज़ा लगाने लगे कि म्युनिसिपल कमेटी की माली हालत इन दिनों पतली हो चली है। फिर तनख्वाह बँटना अनियमित हुआ और वेतन न मिलने का क्रम कई–कई माह तक चलने लगा।

भीतर–ही–भीतर हरकचंद ने अनुभव किया कि वे दुकानदार जो हरकचंद को अपना परिजन और आदरणीय माना करते थे, यकायक उनसे कन्नी काटने लगे हैं। चाय–पान की दुकान पर कोई व्यापारी खड़ा होता और हरकचंद वहाँ पहुँच जाते, तो वहाँ खड़ा आदमी आँख बचा के वहाँ से खिसक लेता। रास्ते में आते–जाते व्यापारी भी यह कोशिश करते कि हरकचंद से दुआ–सलाम न करना पड़े या तो मुँह फेर के खड़े हो जाते या वहाँ से दबे पाँव किसी गली में खिसक लेते। जैसे नमस्कार कर लेने से कुछ घट जाएगा या लेना–देना पड़ जाएगा।

अब वे घर के लिए कोई जरूरी सामान खरीदने किसी दुकान पर जाते तो दुकानदार नमस्कार तो करता पर उनसे कभी बैठने या चाय–पानी लेने का आग्रह न करता। वे जो चीज खरीदना चाहते या तो सीधे–सीधे दुकानदार बाजार रेट से ज्यादा कीमत बताता, या कह देता कि फलां चीज तो मेरे पास घटिया दरजे की है, आपके लायक नहीं है। मजबूर हरकचंद वह चीज़ दुकानदार के बताए ऊँचे दाम में खरीद लाते। सौदेबाजी या मोलभाव उन्होने जिंदगी में कभी नहीं किया था, दुकानदार खुद ही पहले उन्हें वाज़िब दाम लेकर चीजें देते रहे थे, सो वे अब भी उनसे मोलभाव नहीं करते थे। लेकिन चीजें महँगी आती तो घर पर पत्नी चिनमिन करने लगती थी। व्यापारियों का बदला हुआ रूप देखकर हरकचंद को बड़ा दुख हुआ। जिनके लिए वे रात दिन चिंता करते रहे, जिनके लिए अपने विभाग से उन्होंने विश्वासघात किया, वे लोग भी इस तरह आँख फेर लेंगे, ऐसी आशा न थी उन्हें।

नगरपालिका का बजट घटा तो विकास कार्य प्रभावित हुए, नेता जागे। उन्होंने फिर से नाके खोले जाने या म्युनिसिपल कमेटी को ज़्यादा बजट देने की माँग की। नेताओं और संस्थाओं की तमाम लिखा–पढ़ी के बाद राजधानी ने नगरपालिकाओं की फरियाद सुनी। फाइलें पहले धीमे चलीं, फिर दुलकी चाल चलीं और यह खबर जब कस्बों–तहसीलों में स्थित कमेटियों तक पहुँची तो वहाँ से जीवनीशक्ति आना शुरू हुई और फाइलें दौड़ने लगीं। बाद में तो जरूरत पड़ने पर फाइलों ने हवाई सफर भी

किया। अंततः कमेटियों को दुबारा महसूल वसूलने की ताकत दे दी गई। कमेटियों में जोश जाग उठा।

हालाँकि कमेटियों को सिर्फ आयात–निर्यात शुल्क वसूलने की छूट मिली थी। निर्देश आए थे कि वे नाका लगा दें पर किसी वाहन को रोकें नहीं, व्यापारी स्वयं आकर जानकारी देगा। धीरे–धीरे काम शुरू हुआ, मंडी से बाहर जाने वाले माल की जानकारी से लेकर, फैक्ट्रियों से भेजे गए माल की भी जानकारियाँ प्रायः कमेटी में आने लगीं, और हरकचंद ने देखा कि व्यापारियों को भूले–बिसरे संबंध याद आने लगे। अब वे हरकचंद को दुबारा अपना आदमी मानने लगे। फिर वैसा ही मान–सम्मान और फिर वैसे ही संबंध दिखने लगे थे। वे फिर से आत्मीय हो गए। अब वे भूले–भटके किसी दुकान पर पहुँच जाते तो दुकानदार उनका माँगा हुआ माल बाद में देते, चाय–पानी से सत्कार पहले करते।

हरकचंद मन के बड़े साफ थे, उन्होंने बीच के समय में आई दुकानदारों की बेरूखी और अपरिचय को भुला दिया और फिर से सामान्य होकर जीने लगे। सबकी तरह नगरसेठ गहनामल भी जो पिछले कई दिनों से हरकचंद को भुला चुका था, अब ज्यादा आत्मीयता से हरकचंद से मिलने लगा। वे जहाँ भी दिख जाते, गहनामल उनके गले लग–लग जाता, उन्हें खूब सम्मान देता। हरकचंद ने अनुभव किया कि इसका कारण शायद वे कई–कई किराना, कपड़ा और कनफैक्शनरी की दुकानें हैं, जो अपनी जेवर दुकान के अलावा गहनामल के परिजनों ने पिछले दिनों खोली हैं और जिनमें बिना हिसाब–किताब का अनाप–शनाप माल दूसरे प्रदेश से आता रहता है। दूसरा कारण तो गहनामल का शायद वह कारखाना भी होगा जो रोज के रोज ढेरों जालियाँ, दरवाजे, खिड़की वगैरह लोहे का सामान उगलता है और जिसे प्रतिदिन मैटाडोर–टैम्पो में भर के प्रदेश के बाहर भेजा जाता है। लेकिन सब कुछ जानते–बूझते भी हरकचंद ने अपने मन में कोई बात नहीं रखी और वे पूर्ववत गहनामल समेत सबसे प्रेम से मिलने लगे।

अचानक फिर व्यवस्था बदली और पद्धति में परिवर्तन आया। खेत में खड़े बिजूका से वे बेजान नाके भी हट गए। योंकि अब महसूल फिर से दुकानदारों की दया पर निर्भर हो गया था, सो व्यापारियों का व्यवहार भी बदलने लगा था। बस कुछ दिन पहले की ही बात है यह।

तभी यह घटना घटी।

उनके ऑफिस में कई सालों से यह परंपरा थी कि दीपावली के त्योहार के उपलक्ष्य में पूरे स्टाफ को चाँदी के सिक्के उपहार में दिए जाते थे। ये सिक्के पहले तो कमेटी के कमाऊ–पूत नाकेदारों से अनुदान वसूलकर बाजार से क्रय किए जाते थे, फिर नाके बंद हुए और नाकेदार कमजोर हो गए तो उन्होंने हाथ उठा दिए। इस

कारण अभी बाद के बरसों में स्टॉफ के सब लोग मिलजुलकर कुछ चंदा इकट्ठा करने लगे थे और उस एकत्र धन में से एकमुश्त चाँदी के सिक्का खरीद लाया करते थे। इस महीने दिवाली का त्योहार था। दीपावली की अमावस्या महीने के आखिरी सप्ताह में पड़ रही थी और म्युनिसिपल कमेटी घाटे में थी। सो किसी कर्मचारी को एक तारीख को तनख्वाह नहीं मिल सकी। अब स्थिति यह बनी कि बीते हुए कल को ये सिक्के बँटने थे और उस दिन किसी की गांठ में फूटी कौड़ी तक न थी, सो सब चिंतित थे। तब किसी ने सलाह दी कि फिलहाल गहनामल की दुकान से उधारी में सिक्के उठवा लिए जाएँ और उपहार समारोह संपन्न कर लिया जाए। बाद में जब तनख्वाह आ जाएगी तो उधारी चुक जाएगी। अब समस्या यह थी कि गहनामल के पास उधारी का संदेश कौन भेजे? सबने एकमत से निर्णय लिया कि बाबू हरकचंद ही अपने नाम से यह संदेश भेजें तो बाबू हरकचंद ने चपरासी मुन्नालाल को सिक्के लेने गहनामल की दुकान पर भेज दिया था। हालाँकि हमेशा की तरह यूनियन सेक्रेटरी सिंह बाबू ने इस बात का विरोध किया था कि कर्मचारियों के किसी सार्वजनिक काम में किसी व्यापारी का अहसान क्यों लिया जाए। लेकिन उनकी बात किसी ने नहीं सुनी और मुन्ना चपरासी को भेज दिया गया।

मुन्नालाल उल्टे पाँव वापस लौटा। हैरानी से सबने पूछा–काहे मुन्ना, क्या हुआ भाई!

मुन्ना बहुत नाराज था, बोला–'आइंदा कृपा करना। मुझे अपनी बेइज़्ज़ती कराने वहाँ मत भेजना। पचास ग्राहकों के सामने गहनामल ने सिक्के देने से साफ इंकार कर दिया। बोले, हमारे यहाँ उधार नहीं मिलता!'

हरकचंद को काटो तो खून नहीं। भला ऐसा कैसे संभव है! उन्होंने असमंजस की मानसिकता में गहनामल के यहाँ फोन लगाया। फोन पर गहनामल ही मिले। ताज्जुब कि फोन पर भी उनका यही जवाब था– 'माफ करना यार, अपन ने उधारी बंद कर दी है।'

हरकचंद ने समझाने की कोशिश की– 'अरे यार, कौन साल दो–साल के लिए उधारी करना है, दो–तीन दिन में सारा रुपया चुका देंगे। न हो तो मेरे नाम से लिख लो तुम यह रकम। मुझ पर तो विश्वास है न!'

पर गहनामल साफ नट गया 'क्षमा करना भाई, हमने तय किया है कि उधार करना ही नहीं है।'

यह सुनकर बाबू हरकचंद को करारा झटका लगा। वे खड़े न रह सके, टेलीफोन रख के पास रखी कुरसी पर बैठ गए।

सिंह बाबू बगल में खड़े थे, वे सारा माज़रा समझ गए। उन्होंने चपरासी से पानी मंगाया और हरकबाबू से बोले– 'छोड़ो ये उपहार–पुपहार का झमेला। मैं तो बहुत

पहले से कह रहा हूँ कि इस तरह चंदा करके आपस में सिक्के बाँट लेना बिल्कुल उचित नहीं है। काहे का उपहार है यह! ये तो वो ही किस्सा हुआ कि कोई बूढ़ा शेर किसी सूखी हड्डी को चचोरके अपना खून निकाल ले और खून के खारेपन में उसी सूखी हड्डी से निकले खून के स्वाद की कल्पना करके व्यर्थ ही खुश होता रहे।... और दिल छोटा मत करो। हो सकता है गहनामल तुम्हारी आवाज पहचान न पाया हो।'

बाबू हरकचंद का मन पहले तो झटके से बुझ–सा गया था, लेकिन अब सिंह की इस बात ने उन्हें बड़ा दिलासा दिया। उनने शांति से ठंडा पानी पिया और चुप बैठ गए।

कार्यालय के दूसरे लोग सक्रिय हुए। पता नहीं कहाँ से कैसे बंदोबस्त हुआ पर शाम तक सिक्के भी आ गए और बाकायदा बाँट भी दिए गए। हरकचंद शाम को घर लौटे तो उनका उदास चेहरा देखकर, पड़ोसिनों से घिरी बैठी पत्नी तत्परता से उठकर उनके पास आ गई– 'काहे विनोद के पापा, क्या हुआ?'

–'कुछ नहीं' वे उदास बने बोले।

–'नहीं, कुछ तो हुआ है। आप ऐसे कभी नहीं रहते। गली में घुसते ही मोहल्ले पड़ोस के लोगों से बोलते–बतियाते घर आते हो और आज सूटमंतर बने चले आए। तुम्हें हमारी सोंह, सही बताओ! क्या हुआ?'

मजबूर हरकचंद ने गहनामल वाली घटना सुनाई और रुआंसे होकर बोले– मुझे गहनामल के बदल जाने का दुःख नही है, बस इत्ती–सी तकलीफ है कि जिस नौकरी से हमारे पेट भरते हैं, हम इन टुच्चे व्यापारियों के लिए बिना किसी बड़े लालच के, उसी रोजी–रोटी से दगा करते रहे।'

–'काहे की दगा? अरे, आपने कौन कमेटी का लाख दो–लाख का हरजाना कर दिया? बस, केवल हजार, दो–हजार का महसूल ही तो घटा होगा। ये क्यों नहीं सोचते कि तुम्हारी इसी कमेटी के चेयरमैन और बड़े अफसर तो म्युनिसिपल कमेटी के लाखों रुपये डकार जाते हैं।'

–'अरे तुम भी, आदमी को अपना काम देखना चाहिए।'

–'बस अपना ही देखते रहो। दूसरों की तरफ से आँख मूंद लो।'

–'वो नहीं कह रहा।'

–'तो क्या कह रहे हो, चलो ये मन खराब करने की बातें मत करो, उठके हाथ मुँह धोओ, चाय पियो'– कहकर पत्नी ने उनका हाथ पकड़ के उन्हें उठा लिया था। लेकिन हरकबाबू के मुँह पर कल से मुस्कान ऐसी गायब हुई कि लौटी नहीं।

आज भी वे उदास–से बैठे थे।

उनकी कुरसी बड़े हॉल में है। भीतर आने वाले हरेक आदमी की सबसे पहले उन्हीं पर नजर पड़ती है। हर साल सर्दियों में जड़ी–बूटी बेचने के लिए आने–वाले बड़े साफे

वाले आदिवासी सरदार सिंह मोगिया ने यकायक दफ्तर में प्रवेश किया और आते ही जोरदार स्वर में उसने हरक बाबू को संबोधित किया– 'बाबूजी, जै राम जी की!'

फीके से स्वर में हरक बाबू ने अभिवादन का जवाब दिया। फिर जाने किस प्रेरणा से बोल उठे–'आज तुम जाओ भैया, यहाँ किसी आदमी को तनख्वाह नहीं मिली है, सब पैसे–धेले को परेशान हैं। तुम्हारी दवाई कहाँ से खरीदेंगे?'

सरदार मोगिया ऐसे मौके कई जगह झेल चुका, वह हँसते हुए बोला– 'आपसे रुपया कौन माँग रहा है, बाबूजी! हर बरस की तरह इस बार भी पूरी दवाई उधार दे दूँगा, आप चिंता क्यों करते हैं?'

'हर बार सिर्फ महीनेभर की बात होती थी, इस बार त्योहार का समय है सो हरेक के पास खर्च ज्यादा है। अबकी बार चुकारा लंबा खिंच जाएगा।'

'तो भी कोई बात नहीं है, बाबूजी। आप लोग कहाँ भागे जा रहे हैं?' सरदार आज दवा बेचने की कसम खाकर आया था।

'अरे यार, तुम तो पीछे ही पड़ गए।'

'नहीं बाबूजी, आपके बच्चे हैं हम! आप जैसे बड़े लोगों के भरोसे ही तो हमारा सारा कारोबार चलता है। हम तो अरज कर सकते है, पीछे काहे पड़ेंगे!' कहता सरदार विनम्रता की मूर्ति बन गया था।

हरक बाबू फीकी–सी हँसी हँस के बोले– 'दे दे यार जो तुझसे दवा लेना चाहे।'

फिर तो ऑफिस के दर्जन भर से ज्यादा लोगों ने सरदार से जड़ी–बूटियाँ लीं, और वह प्रसन्न मन से पुड़िया बाँधता चला गया। हरकबाबू ने हिसाब पूछा तो पता चला कि कुल मिला के पाँच हजार रुपये की उधारी हो गई है।

वे चौंके–गहनामल से तो सिर्फ हम सिर्फ एक हजार रुपये की उधारी माँग रहे थे, फिर भी उसे विश्वास न हुआ और यह बेचारा खानाबदोश आदमी बिना हिचक के पाँच हजार की उधारी बाँट रहा है।

यह छोटी–सी बात कई वृत्त बनाती हुई उनके मन के ताल में फैलती जा रही थी। और उन्हें ठीक से समझ में आ रहा था कि सेठ गहनामल बाजार में बैठा है, वह हर चीज बाजार की नजर से देखता है। कर्मचारी उसके दोस्त नहीं, टूल हैं, जबकि सरदार जीवन से जुड़ा आदमी है। हम और वह तो हमज़मीन हैं।

मनुष्यता पर उनका यकीन जैसे फिर बहाल हो रहा था।

❑❑❑

हिंदी कहानी

कर्मयोगी

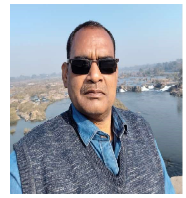

श्यामल बिहारी महतो
स्वतंत्र लेखन।

कामता बाबू को लोग दफ़्तर में गांधीजी कहा करते थे। कंपनी काम के प्रति पूर्ण समर्पित! यह समर्पण की भावना उनके रिटायरमेंट के बाद भी किसी आदत की भाँति कायम रही। अपने कार्यकाल के दौरान शायद ही कभी ऐसा मौका आया हो, जब उन्होंने किसी मजदूर का काम करने से आनाकानी की हो। दूसरों की सेवा की खातिर सदैव तत्पर रहते। सेवा की यह भावना उनके भीतर एक जुनून की भाँति हरदम विद्यमान रहती थी। कोई अंधे से पूछे कि तुम्हें क्या चाहिए? तो निःसंदेह उसका जवाब होगा ''दो आँखें..!'' उसी तरह कोई कामता बाबू से पूछते कि आपको क्या चाहिए तो वे कहते 'काम.. और काम के सिवाय कुछ नहीं..!' चाहे दफ़्तर का पढ़ाई–लिखाई वाला कोई भी काम हो, बेकार बैठकर समय काटना उन्हें आता नहीं था। लेन–देन के मामले में भी वो अनोखे और अजूबे थे! अपने सर्विस जीवन में रिश्वत तो कभी ली ही नहीं उसने, बस यही कहते रहे 'यह पाप है! नाजायज है! दूसरों का गला दबाना है, उनका हक छीनना है..।'

हालाँकि इसी गांधीवादी सिद्धांत को लेकर उनका बड़ा बेटा महेश बाप से खफा–खफा रहता था। दिन भर जाने कहाँ–कहाँ भटकता फिरता और देर रात आकर घर में बाप से लड़ता। दोनों बाप–बेटे के बीच मतभेद कभी कम नहीं हुआ। महेश सदैव उबाल में रहता– 'कोई कुछ करना चाहे तो कैसे करे? इस घर में गांधी की आत्मा जो वास करती है।'

कामता बाबू कसमसाकर रह जाते। उनके लिए सुकून की बात यह थी कि उनका छोटा बेटा नरेश अपनी बी.ए. की पढ़ाई के साथ–साथ एक अखबार के दफ़्तर में प्रूफ रीडिंग का काम भी सीख रहा था। कामता बाबू को अपने इस होनहार बेटे से ढेर सारी उम्मीदें बँधी हुई थीं।

हाँ, तो कामता बाबू जब यह कह रहे होते कि रिश्वत लेना पाप है, दूसरों का हक छीनना है, तो आस–पास के मुस्कुराते चेहरों से अनभिज्ञ होते। जबकि

रिश्वतखोरों के बीच ही हर दिन उनका उठना–बैठना होता। देखना तो तब दिलचस्प होता, जब कोई मलकटा सरदार अपने दंगल का तिमाही बोनस या फिर सीक लीव का पैसा चेक करवाने आता और काम के बदले सौ दो सौ देने लगता तो वो एकदम से उसपर भड़क जाते 'तुम सब मुझे नोट दिखाते हो, कामचोर कहीं के, हमें क्या समझ रखा है, अकाल की ढेंकी..! चल भाग।'

सरदार हँसते हुए भाग खड़ा होता।

तभी कोई कह उठता 'कामता बाबू, आपको इस युग में पैदा नहीं होना चाहिए था।'

कामता बाबू बिना कहे मुस्कुरा उठते थे। लेकिन ऊपरी आमदनी को इस तरह लतियाता देख सेल विभाग का मास्टर बाबू कुढ़–सा जाता था। खखस कर कह उठता–'कामता बाबू, आपको ऐसी जगह नौकरी नहीं करनी चाहिए थी।'

जवाब में कामता बाबू केवल हँस भर देते थे।

निर्धारित समय पर ऑफिस आना और गोंद की तरह दिनभर अपने काम पर चिपके रहना उन्हें बहुत भाता था। कंपनी नियम से सदैव बंधे होते। सर्कुलर से कभी इंच भर भी इधर–उधर होते नहीं देखा गया। जोड़–घटाव के मामले में वो खुद एक कंप्यूटर थे। सालाना बोनस हो या सैलरी, सहकर्मी सब उन्हीं से 'वेरीफाई' करवाते।

अधिकारी भी उनकी बेदाग छवि और ईमानदारी से खासा प्रभावित थे।

लेबर आफिसर अमरीक सिंह तो यहाँ तक कह देते 'कामता बाबू, सालाना बोनस पर आपका जोड़ ही अंतिम माना जाएगा..।'

अपने जीवन और काम को उसने रुटीनबद्ध कर रखा था।

ऑफिस से घर और घर से ऑफिस। यही उनकी दुनिया थी। बाकी बचा तो सगे–संबंधियों के यहाँ कभी मान–मेहमानी भी कर लेते थे। लेकिन मेला–सिनेमा या अन्य मनोरंजन के साधन कभी उनको आकर्षित नहीं कर सके। हाँ, वक्त निकाल गाँव समाज की बैठकों में जरूर शामिल होते थे ताकि गाँव का भाईचारा हर किसी के साथ बना रहे।

उनके जीवन के साथ जुड़े कई दिलचस्प प्रसंग आज भी लोगों को याद हैं। वो भादो माह की एक रात थी। अचानक कामता बाबू बिस्तर से उठ बैठे। उन्हें नींद नहीं आ रही थी। रोगों से मुक्त रमा देवी गहरी नींद सो रही थी। कामता बाबू ने धीरे से दरवाजा खोला और बाहर निकल आए। घर से आफिस की दूरी महज तीन किलोमीटर की थी। जब वह ऑफिस गेट के सामने पहुँचे तो रात के दो बज रहे थे और रात्रि सुरक्षागार्ड कुर्सी पर बैठे–बैठे ऊँघ रहा था। उन्होंने धीरे से गेट को धकेला और अंदर आ गए। जेब टटोली। ऑफिस की चाबी उनकी जेब में थी। पहले उन्होंने दरवाजा खोला और अंदर जाकर कुर्सी पर बैठ गए। रात को पहली बार अपने ही ऑफिस में बैठ, अपने ही ऑफिस का मुआयना कर रहे थे। एक अद्भुत अहसास!

जब वापस लौटने लगे तो रात्रि गार्ड लंगन सिंह चौंकता हुआ उठ खड़ा हुआ। पहचानते ही पूछ बैठा– 'कामता बाबू, आप यहाँ इस वक्त..?'

'घर में नींद नहीं आ रही थी। बाहर निकला तो टहलते हुए इधर आ गया। यहाँ पहुँचा तो देखा, आप कुर्सी पर ही सो रहे हो..!'

'आप अंदर भी गए थे..?'

'हाँ, अंदर गया, ऑफिस खोला, लाइट जलाई, थोड़ी देर बैठा, फिर दरवाजा बंद किया और चल दिया..।'

लगन सिंह सोच में पड़ गया। उसे लगा, इन्हें नींद में चलने की बीमारी है। ताज्जुब है! यह अंदर गया और मुझे पता तक नहीं चला। अगले ही पल क्या सोच वह कामता बाबू के चरणों पर झुक गया था 'कामता बाबू, यह बात पीओ साहब से मत कहिएगा, नहीं तो मेरी नौकरी चली जाएगी..।'

'उठो, नहीं कहूँगा। लेकिन इस तरह सोना ठीक नहीं है, लाखों करोड़ों की संपत्ति यहाँ पड़ी है तुम्हारे भरोसे में..चोर लुटेरे हैं..।'

'कसम खाता हूँ, आगे से ऐसा नहीं होगा..!' लगन सिंह ने कहा और कान पकड़ लिया था।

लोगों ने सुना तो खूब हँसे 'कामता बाबू भी हद करते हैं..!'

इधर कामता बाबू को काफी परेशान देखा जा रहा था। पता चला, पत्नी की बीमारी से जूझ रहे है। एक दिन अचानक फुसरो दवा दुकान में मिल गए। बीमार –बीमार से लगे। प्रणाम–पाती हुई। तो पूछा 'कैसे हैं आप, बीमार लग रहे हैं ..?'

लगा हिचककर रो पड़ेंगे, ऐसा भाव उभर आया उनके चेहरे पर।

'पत्नी बीमार है, उसी की दवा लेने आया हूँ..!'

'क्या हुआ भाभी जी को, मनसा पूजा में देखा था, भली चंगी थी..!' मैं हैरान था।

'दो माह पहले सर में दर्द तीव्र दर्द उठा था। डॉक्टर के पास ले गया। एक्स–रे हुआ। देखकर डॉक्टर ने कहा कि इन्हें कैंसर हो गया है !'

'मुझे विश्वास नहीं हो रहा डॉक्टर साहब..।' मैं स्तब्ध था।

'आपके न मानने से इसका कैंसर ठीक नहीं हो जाएगा, जब तक है, दवा चलाते रहिए, रिलीफ मिलेगा..!' डॉक्टर ने जोर देकर कहा था। तब से भाग–दौड़ जारी है.. सुधीर बाबू..।'

वे आगे और भावुक स्वर में कहने लगे 'जानते है सुधीर बाबू, जिस दिन मैं रिटायर हुआ, सबसे ज्यादा रमा ही खुश थी, मुझसे कहने लगी 'अब फुर्सत ही फुर्सत! अब हम जहाँ चाहें, घूम–फिर सकते हैं, रिश्तदारों से मिल सकते हैं, उनसे न मिलने जुलने की शिकायत भी अब हम दूर कर देंगे।' बेचारी को पारसनाथ पहाड़ भी हम एक बार घुमा न सके। हम जैसों का जिंदगी इसी तरह इम्तिहान लेती है, सुधीर बाबू..!'

इसी के साथ वो चले गए थे। उनको जल्दी जाना था। पर उनके अंतिम शब्द ने मुझे झकझोर डाला था। अच्छे के साथ ही यह सब क्यों होता है? बहुत देर तक मैं इसी सोच में डूबा रहा।

तमाम भागदौड़ के बावजूद कामता बाबू पत्नी रमा देवी को नहीं बचा सके। पत्नी की मृत्यु से वो मर्माहत और शोकाकुल तो थे। लेकिन उनके लिए यह कोई अनहोनी न थी। सबका सब कुछ तय रहता है। यह उनका दार्शनिक विचार था जो अक्सर वे लोगों से कहा करते थे।

सुबह रमा देवी ने अंतिम सांस ली थी। अड़ोस– पड़ोस के लोगों का आना जाना शुरू हो गया था।

'कभी जर न बुखार, सीधे कैंसर....!' लोग भी हैरान थे।

रमा देवी की मृत्यु की खबर गाँव में फैल चुकी थी। सगे–संबंधियों का भी आना शुरू हो गया था। घर में मातम छाया हुआ था और सबकी आँखें नम थी। कामता बाबू एक कोने में खड़े शोक में डूबे हुए थे। रोने वालों में सबसे ऊँची आवाज महेश की थी, जो कहीं से पी आकर आँगन के बीचों–बीच खड़ा था। छोटा बेटा नरेश माँ की शवयात्रा की अंतिम तैयारी में लगा हुआ था। रमा देवी के सिरहाने अगरबत्ती जला दी गई थी। अब सबकी निगाहें कामता बाबू पर आ टिकी थीं। नरेश ने बाप के करीब पहुँच कंधे पर हाथ रखा और फफककर रो पड़ा 'बाबू जी, माँ.. अ !' लगा कामता बाबू भी रो पड़ेंगे।

'लोगों से अब भी कहते सुना जा रहा था बेचारी गौ थी..गौ..!'

'कम खर्च से भी कैसे घर चलाया जाता है, यह कोई रमा देवी से सीखे।'

'कम पैसों को लेकर कभी पति को कोसते नहीं सुना..!'

'यह बड़ी बात है..!'

तभी जीप रुकने की आवाज ने सबका ध्यान अपनी ओर खींचा था।

'कामता बाबू के दफ़्तर के साथी होंगे..।' किसी के मुँह से निकला।

परंतु वह धनपत सिंह था। ऑफिस का चपरासी। उसे आया देख कुछ देर के लिए कामता बाबू भी सोच में पड़ गए 'इस तरह धनपत का अचानक से आना? क्या वजह हो सकती है, वो भी कोलियरी जीप से आया है, कामता बाबू को मालूम था धनपत साइकिल से आना जाना करता है। फिर यह जीप ...? 'कामता बाबू के दिमाग में सवाल ही सवाल थे। 'कामता बाबू के मन में यह उमड़–घुमड़ चल ही रहा था कि तभी उसे चेतलाल की कही बात याद आई। परसों ही वह बतला रहा था 'कामता बाबू, लगता है कंपनी को लाखों का एल बी लगेगा..।'

'क्यों, ऐसी क्या बात हो गई है..?'

'दोनों कंप्यूटर खराब हो गया है। पानीपत और रोपड़ का कोल बिल रुका पड़ा है।'

'कहीं यह जीप मेरे लिए तो नहीं भेजी गई है..?'

तभी धनपत सिंह सामने आया था। उसने प्रणाम के साथ ही मैनेजर अग्रवाल साहब का पत्र उन्हें पकड़ा दिया। पत्र खोला। लिखा था 'कामता बाबू, इस वक्त हमारे सामने एक समस्या आ खड़ी हो गई है। पंद्रह तारीख तक पानीपत और रोपड़ का बिल भेजना है औ हमारे दोनों कंप्यूटर खराब हैं, मास्टर बाबू तो हैं, पर उसके जोड़ घटाव पर भरोसा नहीं किया जा सकता है। लाखों का मामला है। हमें आपकी मदद चाहिए। मैं जानता हूँ, आप रिटायर हो चुके हैं। इसके लिए आपको मजबूर नहीं किया जा सकता है। लेकिन कंपनी के लिए आज भी आप बहुत खास है। आज भी हमें आप पर पूरा भरोसा है.. कुछ रकम भेज रहा हूँ, अस्वीकार मत कीजिएगा, आपका ..अग्रवाल साहब मैनेजर..।'

धनपत ने दूसरा लिफाफा कामता बाबू को पकड़ा दिया था।

'भतीजे, अच्छा होगा, दाह–संस्कार के लिए माँ को सीधे काशी ले जा..।' पड़ोसी लटन चाचा नरेश से कह रहा था–'सब काम एक ही साथ निपट जाएगा। काशी में दाह–संस्कार बड़ा पुण्यकर्म है, जलने वाले और जलाने वालों का जीवन भी तर जाता हैं..! बाप से कहो, वो हाँ कह दे..।'

'अरे, मैं तो कहूँगा, बाप से पूछना बेकार है।' सगा जेठा ने कहा– 'जिस आदमी ने आज तक घर में सत्यनारायण कथा तक न होने दी, उनसे काशी ले जाने की बात करोगे तो कहेगा 'सब फिजूलखर्ची है, वहाँ पण्डों का पेट भरना है...।'

बढ़ते शोरगुल से कामता बाबू का ध्यान भंग हुआ। जीवन की पटरी ने उनको आंगन में खड़ा कर दिया। उन्होंने वर्तमान हालात का जायजा लिया। दोनों बेटे उन्हीं की ओर देख रहे थे। कामता बाबू को लगा, उन्हें अपना कर्म नहीं छोड़ना चाहिए। आज तक तो वो कर्म को ही जीते चले आ रहे हैं। जीना–मरना संसार का दस्तूर है। जब वह नहीं बदलता है, फिर हम क्यों बदलें, क्यों पीछे हटे अपने कर्म से। इसी के साथ उलझनों से वो बाहर निकल आए थे। दोनों बेटों को उन्होंने पास बुलाया और कहा– 'मुझे अभी दफ़्तर जाना है। माँ का दाह–संस्कार तुम दोनों को करना है। कहाँ और कैसे करोगे, आपस में तय कर लो..।'

चलने से पूर्व उन्होंने अग्रवाल साहब का भेजा लिफाफा नरेश के हाथ में थमाते हुए कहा 'इसे संभालकर रखो, इसमें जो भी रकम है, माँ के श्राद्धकर्म में काम आएँगे, मैं चलता हूँ.. चलो धनपत..।'

'इस तरह चले जाने से लोग क्या कहेंगे' यकायक मन में आए इस विचार ने कामता बाबू के बढ़ते कदम पर ब्रेक लगा दी। उसने रमा देवी की ओर देखा, दो कदम आगे बढ़ आए। उस पत्नी के खातिर जो आज तक उनके साथ हर सुख–दुख में भागीदार बनी रही। और जो अब इस दुनिया में नहीं रही। उन्होंने मृतशैय्या पर लेटी

पत्नी से कहा 'क्षमा करना रमा, तुमने अपना कर्म पूरा किया, अब मैं अपना कर्म करने जा रहा हूँ..!' डबडबाई आँखों को कामता बाबू ने गमछे से पोंछा और धीरे से धनपत के पीछे हो लिए।

नरेश महेश से कह रहा था 'दादा, ठाकुर (हाजाम) से कह दो, गाँव में खबर कर दें। माँ का दाह–संस्कार दामोदर घाट पर होगा, पुण्य–प्रताप के चक्कर में आदमी सदियों से लुटाते रहे हैं। लेकिन हमें वही गलती नहीं करनी है। मनुष्य का जीवन कर्म के साथ जुड़ा हुआ है, उनके लिए कर्म ही धर्म है! काशी–बनारस में दाह–संस्कार से लोगों का पाप नहीं धुल जाता..!'

नरेश की कही बातें जीप पर सवार हो रहे कामता बाबू के कानों में भी पहुँची थी। उनके अंदर का द्वंद्व छंट चुका था और वो शांतचित्त नजर आने लगे थे।

❑❑❑

जो सभी का मित्र होता
है, वह किसी का
मित्र नहीं होता।

– अरस्तू (महान दार्शनिक)

असमिया कविता

सकलोवेई किबाकिवि हेरुवाय

लुत्फा हानूम सेलिमा बेगम

विख्यात असमिया साहित्यकार। सात कविता–संग्रह प्रकाशित। इनकी कविताओं के भारतीय एवं विदेशी भाषाओं में अनुवाद।

सकलोवेई किबाकिबि हेरुवाय
जेने:
आलिबाटटोवे तार बुकुर प्रथम माटि–बालि–शिल
गसे तार जीवनर प्रथम कूंहिपात
हेरुवाय तार फूल फल
प्रेमे हेरुवाय प्रथम उसाह, स्वप्न आरु हुमुनियाह
निगरि निगरि गानेउ हेरुवाय प्रथम कंठ ऊंठ
कनमानिहंते हेरुवाय प्रथम फूटा मात
पाहरि जाय प्रथमर थुनूक–थानाक खोज
एनेयेउ केतियाबा अनेक कथा हेराय
तलार परा साबिटो सार्टर परा बूतामटो
पकेटर परा चश्माजोर कलमटो
सूतार गुलीटोर परा बेजिटो हातर पराई साति नथि–पत्र
दुख–वेदनार तलाटो सुखर साबिरे मारि थलेउ
हेराय जाय अनेक सपोनर सांसतीया मुद्रा
एनेकैये हेराय
जीवनर प्रथम सिठिखन कविताटो सूमाटो
सकलोवेई हेरुवाय जीवनर प्रथम बंधु सहपाठी
शत्रु प्रेमिक अथवा प्रेमिकार नाम
कितापेउ हेरुवाय तार प्रथम संस्करण बेटुपात
केतियाबा आनकि निजको हेरुवाय कोरबात

हिंदी अनुवाद

सभी कुछ न कुछ गँवाते हैं

दिनकर कुमार

कवि, अनुवादक और पत्रकार। ग्यारह कविता संग्रह, दो उपन्यास और असमिया से हिंदी में अनूदित सत्तर पुस्तकें प्रकाशित।

सभी कुछ न कुछ गँवाते हैं
जैसे
पगडंडी अपने सीने की पहली मिट्टी रेत पत्थर
पेड़ अपने जीवन का पहला कोंपल
गँवाता है अपना फल फूल
प्रेम गँवाता है प्रथम सांस, स्वप्न और आह
टपक–टपक का गीत भी गँवाता है प्रथम कंठ होंठ
छोटे बच्चे गँवाते हैं पहली तोतली बोली
भूल जाते हैं प्रथम लड़खड़ाते कदम
वैसे भी कभी–कभी अनेक बातें गुम हो जाती हैं
ताले से चाबी शर्ट से बटन
जेब से चश्मा, कलम

धागे से सुई, हाथ से छतरी, दस्तावेज
दुख वेदना के ताले की चाबी लगाने पर भी
खो जाती है अनेक सपनों की संजोई हुई मुद्रा
इसी तरह खो जाता है
जीवन का पहला खत, कविता का चुंबन
सभी गँवाते हैं जीवन के पहले बंधु सहपाठी
शत्रु, प्रेमी अथवा प्रेमिका का नाम
किताब भी गँवाती है
अपने पहले संस्करण का आवरण
कभी–कभी तो खुद को भी गँवाती है कहीं

कोने की की हेरुवाय कोनेउ सठीकभावे नाजाने
माहबोर हेरुवाय दिनबोर दिने घंटा आयु मिनिटबोर
बसरे हेरुवाय माह आरु निजर वार्षिक ठिकना

हेरुवाय हेरुवायो सकलो गै थाके
निजक एरि थै बा नथै गैयेई थाके मानुह
जिसकल एतियाउ एईखिनि आहि पोवाहि नाई
आगतियाकै तेऊंलोकक खबरटो दिबलै
हेरुउवार खबर

❑❑❑

"जो तुम आ जाते एक बार
कितनी करुणा कितने संदेश
पथ में बिछ जाते बन पराग
गाता प्राणों का तार–तार
अनुराग भरा उन्माद राग
आँसू लेते वे पथ परवार
जो तुम आ जाते एक बार
हँस उठते पल में आर्द्र नयन
धुल जाता छोटों से विषाद
छा जाता जीवन में बसंत
लुट जाता चिर संचित विराग
आँखें देतीं सर्वस्व बार
जो तुम भा जाते एक बार"

महादेवी वर्मा

कौन क्या–क्या गँवाता है कोई भी ठीक से नहीं जानता
महीने गँवाते हैं दिन को, दिन घंटा और मिनटों को
साल गँवाता है महीने और अपना वार्षिक ठिकाना
गँवा–गँवा कर भी सभी जाते रहते हैं
खुद को छोड़कर या न छोड़कर जाते रहते हैं लोग
जो लोग अभी भी यहाँ तक नहीं आ पाए
पहले से ही उनके खबर देने के लिए
गँवाने की खबर।

❑❑❑

जनता मुझसे पूछ रही है, क्या बतलाऊँ?
जनकवि हूँ मैं, साफ कहूँगा, क्यों हकलाऊँ।

– नागार्जुन

हिंदी कविता

भोर होने से पहले

संदीप भटनागर

कई पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित, सेवानिवृत्त मुख्य प्रबंधक, मध्यप्रदेश ग्रामीण बैंक। संप्रति–स्वतंत्र लेखन।

आओ फिर बैठें छत पर
बिछाएँ जाजम पुरानी
सँवारें सलवटें
धुंधलाई यादों की

सहलाएँ उन पैबंदों को
जो सिल दिए थे
अम्मा ने
धागे बिखरने के पहले

छू लें उन फुंदनों को
जो बाँध दिए थे
बाबूजी ने
रेशे उलझने के पहले

जमा आसन
कुछ कहें सुनें
बातें गलियों–कूचों की
छज्जे–चौबारों की

लंब लेट हो
हथेलियों का तकिया बना
ताकें
सुरमई भूरे आकाश को
समा लें मुट्ठी में

संध्या के झुटपुटे में
धीमे धीमे यहाँ–’वहाँ
रुपहले छिटकते तारों को

भर लें अपनी झोली
उन खुशनुमा पलों सम
चमकते जुगनुओं से
भोर होने से पहले।

❑❑❑

“जो तुम आ जाते एक बार
कितनी करुणा कितने संदेश
पथ में बिछ जाते बन पराग
गाता प्राणों का तार–तार
अनुराग भरा उन्माद राग
आँसू लेते वे पथ पर वार
जो तुम आ जाते एक बार
हँस उठते पल में आर्द्र नयन
धुल जाता होठों से विषाद
छा जाता जीवन में बसंत
लुट जाता चिर संचित विराग
आँखें देतीं सर्वस्व वार
जो तुम आ जाते एक बार”

– महादेवी वर्मा

हिंदी कविता

लौटता है जीवन

देवेंद्रराज सुथार

कवि और लेखक। पत्र–पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित।

जैसे सूखी टहनी पर
एक सुबह फूटता है अंकुर
जैसे बुझी राख में
अचानक सुलग उठती है चिनगारी
वैसे ही लौटता है जीवन
एक पुराने गीत की धुन बनकर।

जैसे समंदर की लहरें
खुद में समेटकर लौटती हैं किनारों पर
जैसे झील का पानी
अचानक हो जाता है नीला और शांत
वैसे ही लौट रही है आस
हर उखड़ी साँस में।

कब तक जिया जा सकता है
अधूरी बातों और खाली राहों में?
कब तक टाला जा सकता है
वसंत के बुलावे को?
हाथों में उगते सपनों की कोमल मिट्‌टी लिए
चल पड़ते हैं हम
एक बार फिर
आकाश को अपने कंधों पर उठाने।

जैसे लौट रही है पहाड़ों पर धुंध
जैसे जंगल में लौटती है हरियाली
जैसे मिट्‌टी में लौटती है नमी
वैसे ही लौट रही है उम्मीद
हथेलियों की गहराइयों में।

लौट आओ,
जैसे दरवाजे पर दस्तक देती है हवा।
लौट आओ,
जैसे तारे ढलती रात में भर देते हैं उजाला।
लौट आओ,
जैसे हर मनुष्य के भीतर
फिर से जागता है मनुष्य।

❑❑❑

मैं भाषा पर इतना जोर इसलिए देता हूँ कि राष्ट्रीय एकता हासिल करने का यह एक बहुत जबरदस्त साधन है। और जितना दृढ़ इसका आधार होगा, उतनी ही प्रशस्त हमारी एकता होगी।

— महात्मा गांधी

हिंदी कविता

पहले देश

देवेंद्र कुमार मिश्रा

35 कथा–संग्रह 40 काव्य–संग्रह प्रकाशित। पत्र–पत्रिकाओं में कथा–कविता प्रकाशित। साहित्यिक संस्थाओं से 5000 सम्मान पत्र।

अभी तुम्हारे बालों में गज़रा लगा नहीं सकता
अभी तुम्हारे सौंदर्य के गीत गा नहीं सकता।
अभी देश मेरा गृह युद्ध जैसी स्थिति में है
अभी भाषा जाति कट्टरपंथियों के निशाने पर है
अभी एक धर्म की दूसरे धर्म से अजीब–सी जंग जारी है
अभी राजनीति के दाँवपेंच में उलझा राष्ट्र है
अभी एक राष्ट्र में कई महाराष्ट्र हैं
अभी घर जलाए जा रहे हैं लोगों के
अपने ही देश में शरणार्थी बने हुए हैं कश्मीरी
अभी जलते घरों में जाति, भाषा, धर्म की रोटियाँ सेंकी जा रही हैं
कुछ तथाकथित गुंडे, जो बन बैठे हैं राजनेता
अभी उनसे दो–दो हाथ करना है
अभी मुझे प्राण देना और प्राण लेने का प्रण करना है।
अभी देश की स्थिति ठीक नहीं
और मेरी मानसिक परिस्थिति।
अभी इन बँटे और सोए हुए लोगों को एका में लाना होगा
इन्हें प्रेम से या लात मारकर जगाना होगा।
खालिस्तानी, पाकिस्तानी, नक्सलवादी, भाषावादी, प्रांतवादी, जातिवादी,
धर्मवादी सब राष्ट्र को खंड–खंड करने के चक्कर में हैं
और इन्हें रोकने की भरकस कोशिश में हम है
गृह–युद्ध की परिस्थिति सत्ता और संपत्ति के लिए है
इन्हें चिता पर लिटाना होगा
इन्हें कफ़न में लपेटना होगा

शांति से या क्रांति से
कायर, कमजोर लोगों को डटकर लड़ना सिखाना होगा
कभी कश्मीर कभी बंगाल कभी श्यामली कभी बुरहानपुर से भगाए जा रहे लोग
इन लोगों को मरने मारने का, अपने सम्मान, अपने हक के लिए जीना
सिखाना होगा।
ये समय प्रेमगीत गाने के लिए उचित नहीं है
भारत के लिए कुछ भारतीयों का रवैया ठीक नहीं है
पहले इसका हल निकालना होगा।
खेतों में चलने वाले ट्रेक्टर चलने लगते हैं हाईवे पर
सड़क घेर ली जाती है प्रदर्शन के नाम पर
शहर जला दिए जा रहे हैं अपनी राजनैतिक दाल गलाने के नाम पर
इनका कुछ तो करना होगा प्रबंध
अन्यथा भारत को भर देंगे ये अपनी लोभ लाभ की कुनीति से
मचा रहे हैं देखो, चारों ओर गंध।
इन्हें ईंट का जवाब पत्थर से देना सिखाना होगा
क्षमा करना देवी, ये पुष्प मारे गए असमय निर्दोषों के लिए हैं
तुम्हारे गजरे में इनका होना अपमान होगा उनकी सामूहिक हत्याओं का
इन्हें ठीक करना होगा
तब तक मैं तुम्हारे सौंदर्य पर कोई गीत नहीं लिख सकता
देश पर आँसू बहाने का समय है
तुम्हारे लिए गीत, प्रीत के गा नहीं सकता।
ठीक भी नहीं होगा।
माँ बीमार हो तो बेटे का दायित्व है देखभाल करना
अभी ठीक समय नहीं है प्रेम के लिए
हृदय की अगन को देह की प्रीत से बुझाने का।
अभी तो शंखनाद का समय है।
अभी प्रेम नहीं, शांति की आवश्यकता है
अभी शृंगार नहीं, क्रांति का समय है।
बाहर से आतंकी, अंदर से गद्दार
अभी भारत के लिए होना होगा वज्र की धार।
अभी जमादार बनकर साफ करना होगा इस बँटे हुए देश को
तब तक के लिए क्षमा सहित विदा चाहता हूँ प्रिये
युद्ध का उन्माद खत्म हो

राष्ट्र के विरुद्ध खतरे से भरा खतरा खत्म हो
थोड़ा और मजबूत हो जाए देश और उसका कानून
और पापी जाने लगे जेल के अंदर
तब तक के लिए प्रिये, क्षमा चाहता हूँ।
अभी नहीं निकल सकेंगे गीत प्रीत के
और जब बात राष्ट्र की हो तो ऐसे समय में प्रेम में खोए रहना भी अपराध है।
और मैं अपराधी नहीं, सेनानी बनना चाहता हूँ।
मिटा देना चाहता हूँ।
समझा देना चाहता हूँ।
अभी क्षमा मेरे प्रेम
मेरे भारत को मेरी जरूरत है
दुश्मन के लिए एक दहाड़ की फाड़ जरूरत है
कुत्तों के लिए शेरों की दहाड़ काफी है
तब तक के लिए तुमसे, प्रेम मेरे, मांगता माफी हूँ
गृहयुद्ध के चहेतों को ठीक करना जरूरी है
अन्यथा बर्बाद कर देंगे देश ये,
इनकी बताना औकात जरूरी है
जब सब ठीक होगा
तब मिलेंगे प्रेम से, बातें होंगी प्रेम की
अभी तो अंदर, बाहर के शत्रुओं के लिए धिक्कार और प्रहार की जरूरत है।
देश के लिए और कई सुभाष, भगत, आजाद की जरूरत है।

❑❑❑

यात्रा संस्मरण की अनूठी कृति

दीपक गिरकर

पाँच पुस्तकें, साझा संग्रहों में व्यंग्य रचनाएँ और लघु कथाएँ प्रकाशित। भारतीय स्टेट बैंक से सहायक महाप्रबंधक पद से सेवानिवृत्त

सुपरिचित साहित्यकार डॉ. जितेंद्र कुमार सोनी की पुस्तक ओकुहेपा (यात्रा–संस्मरण) इन दिनों चर्चा में है। इस पुस्तक को छापने की महती भूमिका राष्ट्रीय पुस्तक न्यास ने निभाई है। डॉ. जितेंद्र कुमार सोनी की प्रमुख कृतियों में 'उम्मीदों के चिराग', 'रेगमाल' (कविता–संग्रह), 'एडियोस' (कहानी–संग्रह), 'यायावरी' (डायरी), 'रणखार' (राजस्थानी कविता–संग्रह), 'भरखमा' (राजस्थानी कहानी–संग्रह) शामिल हैं। लेखक ने अनेक महत्त्वपूर्ण कृतियों का पंजाबी से राजस्थानी, अंग्रेजी से राजस्थानी तथा पंजाबी से हिंदी में अनुवाद किया है। डॉ. जितेंद्र कुमार सोनी साहित्य अकादमी सहित कई पुरस्कारों से सम्मानित हो चुके हैं। डॉ. जितेंद्र कुमार सोनी यायावर प्रकृति के लेखक हैं। वे जहाँ जाते हैं, वहाँ के मौसम, प्राकृतिक दृश्यों, स्थानों, लोगों के जीवन, संस्कृति, शिष्टाचार, धार्मिक रीति–रिवाजों, वहाँ के इतिहास को एक कैमरे की तरह कैद कर लेते हैं। डॉ. जितेंद्र कुमार सोनी जिज्ञासु वृत्ति के रचनाकार हैं। उनकी यात्राएँ केवल तफ़रीह के लिए नहीं होती है। पुस्तक संस्मरण शैली में है। लेखक ने अपनी यात्राओं में अनुभव किए भावों को रचनात्मक रूप दिया है। इन संस्मरणों में कथातत्व भी है। डॉ. जितेंद्र कुमार सोनी इस पुस्तक के संस्मरणों में स्थानीय विशेषताओं तथा वहाँ के लोगों की जीवनशैली से परिचय करवाते हैं। लेखक की जिज्ञासु वृत्ति इस यात्रा संस्मरण की विशेषता है। यात्राएँ जीवन में ज्ञान अर्जित करने का बेहतर साधन है। इस पुस्तक में कुल 16 अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय में लेखक ने अपने संस्मरणों को बड़ी ही सहजता से इस पुस्तक के माध्यम से पाठकों से साझा किया है। वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. राजेश कुमार व्यास ने इस पुस्तक की भूमिका में लिखा है– 'घुमक्कड़ी के लिए प्रेरित करती यह पुस्तक इसलिए भी महती है कि इसमें डॉ. जितेंद्र कुमार सोनी पाठक को दुर्गम द्वीपों, समुद्र, नदियों, पहाड़ के साथ ही ठेठ गाँवों तक ले जाते मिट्टी की सोंधी महक से भी निरंतर साक्षात कराते हैं।'

पुस्तक : ओकुहेपा (यात्रा–वृत्तांत), लेखकः डा. जितेंद्र कुमार सोनी, प्रकाशकः राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत नेहरू भवन, 5 इंडस्ट्रियल एरिया, फेज–2, नई दिल्ली–110070, संस्करण–प्रथम 2024, पृष्ठ–90, मूल्यः 205/–रुपये

डॉ. जितेंद्र कुमार सोनी अपनी यात्रा में केवल दर्शनीय स्थलों को ही नहीं देखते बल्कि उस उस स्थान की सामाजिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और आर्थिक स्थिति की भी चर्चा करते हैं। इस पुस्तक को पढ़कर लगता है कि पाठक यात्रा में शामिल हैं। सभी यात्रा–संस्मरण रोचक और जानकारी से परिपूर्ण हैं।

पुस्तक के पहले अध्याय के अनुसार लेखक ने सेल्यूलर जेल, पोर्ट ब्लेयर शहर, स्नेक आइलैंड, द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान जापानियों द्वारा बनाए गए बंकर देखे। सेल्युलर जेल जिसे 'कालापानी' के नाम से भी जाना जाता है, पोर्ट ब्लेयर, अंडमान और निकोबार द्वीपसमूह में स्थित एक ऐतिहासिक स्थल है। यह जेल ब्रिटिश साम्राज्य द्वारा भारतीय स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों को कैद करने के लिए इस्तेमाल की जाती थी। यह जेल विशेष रूप से भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के शहीदों के लिए प्रसिद्ध है जिन्होंने यहाँ कठोर सजा भोगी और कई स्वतंत्रता सेनानी यहाँ अपने जीवन का अधिकांश समय बिताने के बाद शहीद हो गए। इस जेल का डिज़ाइन एक विशेष प्रकार का था जिसमें प्रत्येक कक्ष को एक एकल सेल के रूप में डिजाइन किया गया था ताकि अन्य कैदियों से संपर्क नहीं हो सके और उनका मानसिक और शारीरिक शोषण किया जा सके। सेल्यूलर जेल में कुछ प्रमुख स्वतंत्रता सेनानियों को कैद किया गया था जिनमें वीर सावरकर, बिपिन चंद्र पाल, लाला हरदयाल और भगत सिंह के साथी शामिल थे। वीर सावरकर ने यहाँ अपनी कैद के दौरान बहुत कठिनाइयों का सामना किया और इसके बाद उन्होंने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। लेखक ने शाम को सेल्यूलर जेल में लाइट एंड साउंड शो देखा। लेखक ने दूसरे अध्याय 'हैवलॉकः स्वर्ग का दूसरा नाम' में अपनी हैवलॉक यात्रा का रोचक वर्णन किया है। डॉ. जितेंद्र कुमार सोनी हैवलॉक में काला पत्थर सागर तट, राधानगर तट पर घूमे। लेखक को राधानगर तट पर सूर्यास्त देखने का अलौकिक अनुभव हुआ। अगले दिन नीमो बीच पर स्कूबा डाइविंग की। स्कूबा डाइविंग करते हुए लेखक ने जलीय जीवों की एक नई रंग–बिरंगी दुनिया देखी। यहाँ पर लेखक की बिटिया को एक नामीबियन लड़की मिली। उस लड़की ने बिटिया को ओकुहेपा कहा। बिटिया ने जब इसका अर्थ पूछा तो उसने बताया कि उसके पिताजी ने हिंबा जनजाति पर शोध कार्य किया है और इस जनजाति में 'धन्यवाद' के लिए 'ओकुहेपा' कहा जाता है। फिर लेखक एलीफैंटा बीच पर घूमे, आनंद लिया और वहाँ के दृश्य और वातावरण को सहज रूप से इस पुस्तक में प्रस्तुत किया। तत्पश्चात् लेखक ने बाराटांग और लाइम केव्स की यात्रा की। लेखक को बाराटांग जाने का मुख्य आकर्षण अंडमान की मूल जनजातियों को जानना–समझना था। अंडमान की मूल जनजातियाँ हैं– ग्रेट अंडमानी, जारवा, ओंगे और सेन्टिनली। जारवा जनजाति पोर्ट ब्लेयर के बाराटांग वाली दिशा में जंगलों में रहती है। सेन्टिनली निकोबार के सेंटिनल द्वीप पर ही पाए

जाते हैं। इसके पश्चात् लेखक रॉस आइलैंड गए। रॉस आइलैंड से सेल्यूलर जेल साफ दिखती है। ब्रिटिश अधिकारी और उनका परिवार रॉस आइलैंड पर रहता था। अब तो इस आइलैंड पर ब्रिटिश काल के भवनों के खंडहर या अवशेष हैं। इस आइलैंड पर भी शाम को लाइट एंड साउंड शो होता है।

मई 2022 के प्रथम सप्ताह में लेखक स्टैच्यू ऑफ यूनिटी देखने गए। 'स्टैच्यू ऑफ यूनिटी' सरदार सरोवर बाँध से 3.2 किमी दूरी पर स्थित नर्मदा नदी के तट पर बना भारत के प्रथम गृहमंत्री सरदार वल्लभ भाई पटेल को समर्पित एक स्मारक है। यहाँ सरदार वल्लभ भाई पटेल की 182 मीटर ऊँची मूर्ति है जो कि दुनिया में अब तक स्थापित सबसे ऊँची मूर्ति है। 'स्टैच्यू ऑफ यूनिटी' स्मारक भारत के पहले उप–प्रधानमंत्री और लौहपुरुष सरदार वल्लभ भाई पटेल की याद में बनाया गया है। यह केवल एक भव्य प्रतिमा नहीं है बल्कि यह राष्ट्रीय एकता, सामाजिक समरसता और भारतीय संस्कृति की ताकत को भी प्रकट करता है। 'स्टैच्यू ऑफ यूनिटी' जो भारतीय राज्य गुजरात में स्थित है, आधुनिक स्थापत्य कला का बेहतरीन उदाहरण है। यह दुनिया की सबसे ऊँची प्रतिमा है और इसका निर्माण पर्यटन विकास को बढ़ावा देने, देशवासियों में राष्ट्रीय एकता की भावना उत्पन्न करने और सरदार पटेल की प्रेरक जीवनगाथा को आने वाली पीढ़ियों तक पहुँचाने के लिए किया गया है। इसका निर्माण प्राकृतिक रूप से हरियाली से आच्छादित एक क्षेत्र में हुआ है जो पर्यटकों को शांति और सुंदरता का अनुभव भी कराता है। यह स्मारक न केवल भारतीयों के लिए बल्कि विदेशी पर्यटकों के लिए भी एक आकर्षण का केंद्र बन गया है।

लेखक डॉ. जितेंद्र कुमार सोनी एक बार अरुणाचल प्रदेश के यिंगकियोंग गए। यिंगकियोंग को बादलों का घर कहते हैं। यिंगकियोंग पहाड़ी क्षेत्र है और यहाँ जनजाति वर्ग के लोग रहते हैं। यहाँ के लोग प्राकृतिक रूप से फिट और तंदुरुस्त हैं क्योंकि उनकी दिनचर्या में शारीरिक श्रम और पोषण की भरपूर व्यवस्था होती है। हरी पत्तेदार सब्जियाँ और प्रोटीनयुक्त मांस उनके आहार का अहम हिस्सा है जिससे उनका शरीर मजबूत और स्वास्थ्यपूर्ण बना रहता है। आधुनिक फैशन का पालन करने वाली युवतियों और अच्छी अंग्रेजी बोलने की क्षमता इस क्षेत्र के विकास और शिक्षा के स्तर को दर्शाती है। पहाड़ी इलाकों में जहाँ एक ओर शारीरिक परिश्रम की आवश्यकता होती है, वहीं दूसरी ओर आधुनिकता और वैश्वीकरण का प्रभाव भी दिखाई देता है। कुल मिलाकर, यह समाज अपनी पारंपरिक जीवनशैली को अपनाए हुए होते हुए भी समकालीन फैशन और शिक्षा से भी अवगत है। लेखक ब्योरुंग ब्रिज देखने गए। यह ब्रिज यिंगकियोंग को टुटिंग से जोड़ता है। यह देश का सिंगल लेन स्टील केबल सस्पेंशन वाला सबसे लंबा ब्रिज है। इसकी लंबाई 300 मीटर है। इस क्षेत्र में बहुत गिलहरियाँ रहती है। यहाँ गिलहरी को ब्योरुंग कहते है, इसलिए इस ब्रिज

का नाम ब्योरुंग ब्रिज रख दिया गया। यिंगकियोंग कस्बे का शांत माहौल और यहाँ के खुशमिजाज लोग निश्चित रूप से किसी भी यात्री को सुकून और ताजगी का अहसास दिलाते हैं। यहाँ बादल; जैसे खेलते हुए भागते हैं, यह दृश्य निश्चित रूप से अद्भुत और चित्रात्मक है। सियाँग के किनारे बसा यह गाँव न केवल अपनी प्राकृतिक सुंदरता से बल्कि यहाँ की सांस्कृतिक और शांतिपूर्ण जीवनशैली से भी एक बेहतरीन अनुभव प्रदान करता है। ऐसे स्थान पर जाना, वास्तव में एक रिजुवेनाइटिंग दवा की तरह है जो आत्मा को ताजगी और शांति का अहसास दिलाती है।

लेखक डॉ. जितेंद्र कुमार सोनी ने भारत–चीन सीमा के अंतिम गाँव टुटिंग की यात्रा की। टुटिंग सियाँग नदी के किनारे बसा है। यह सामरिक दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान है। चीन की पीपुल लिबरेशन आर्मी द्वारा इस क्षेत्र में घुसपैठ के असफल प्रयास किए जाते रहे हैं। लेखक ने यिंगकियोंग से टुटिंग जाते समय रास्ते में कई तरह के पक्षी देखे। प्रकृति का आनंद लेते हुए लेखक टुटिंग पहुँचे। टुटिंग में एक पेमा मनी मोनेस्टरी है। यहाँ बुद्धिज्म की शिक्षा दी जाती है। लेखक को पूरे यिंगकियोंग में एक ख़ास बात लगी, वह थी यहाँ की पूजा पद्धति; जिसका नाम है डोन्यो–पोलो। डोन्यो–पोलो का अर्थ है सूरज और चाँद। लेखक टुटिंग से गेल्लिंग गए। गेल्लिंग जाने के लिए डीसी कार्यालय से अनुमति पत्र लेना पड़ता है। इसकी प्रतिलिपि गेल्लिंग में आईटीबीपी को दी जाती है। गेल्लिंग में ज्यादातर लोग मेंबा जनजाति से हैं। सियाँग नदी के दाहिनी तरफ गेल्लिंग है और बाई तरफ बिशिंग। बिशिंग जलप्रपातों के लिए प्रसिद्ध है। नीली नदी की कलकल ध्वनि और हरियाली से घिरी घाटियाँ जैसे किसी स्वप्निल संसार का हिस्सा प्रतीत होती हैं। बर्फ से ढके पहाड़, जो आकाश से मिलते हुए नजर आते हैं; कुदरत की असीम खूबसूरती और शक्ति का प्रतीक हैं। यह दृश्य किसी कला के परिपूर्ण रूप जैसा लगता है जो प्रकृति के अद्वितीय सौंदर्य को उजागर करता है। पहाड़ी जिंदगी की मुश्किलें, वहाँ के लोगों की ईमानदारी और निश्छल प्रेम, सबके बारे में यह किताब बताती चलती है। यह यात्रा–संस्मरण आपके भीतर एक रोमांच पैदा करते हैं।

लेखक डॉ. जितेंद्र कुमार सोनी राजस्थान के रहने वाले हैं। एक बार लेखक भानगढ़ गए। भानगढ़ अजीब से रहस्यमयी वीरानों एवं खंडहरों के लिए प्रसिद्ध है। कुछ लोग इसे भूत गढ़ या भुतहा महल भी कहते हैं। भानगढ़ देश दुनिया के सबसे हॉन्टेड स्थानों में से एक है। भानगढ़ किला राजस्थान के अलवर जिले में स्थित है जो अपनी रहस्यमय और प्रेतबाधित कथाओं के लिए प्रसिद्ध है। किले के आसपास की हवाओं में रहस्यमय कंपन महसूस होते हैं और रात के समय कुछ अजीब घटनाएँ घटने की अफवाहें फैलती हैं। यही कारण है कि सरकार ने किले के आस–पास सूर्यास्त के बाद और सूर्योदय से पहले प्रवेश पर प्रतिबंध लगा दिया है ताकि किसी

भी अप्रिय घटना से बचा जा सके। आज भी भानगढ़ किला पर्यटकों के लिए आकर्षण का केंद्र है लेकिन इसकी रहस्यमय हवा और भूत–प्रेत की कथाएँ इसे एक डरावना स्थान भी बना देती हैं। इसके खंडहर, जो एक समय भव्य महल हुआ करते थे, अब इतिहास के उन पन्नों को समेटे हुए खड़े हैं जो रहस्य और किंवदंतियों से घिरे हुए हैं। लेकिन यह सत्य है कि यह स्थान दर्शनीय है। किले के बारे में कई किवदंतियाँ प्रचलित हैं जिनमें से सबसे प्रमुख कहानी है– भानगढ़ की राजकुमारी रत्नावती, जो कि अप्रतिम सौंदर्य की स्वामिनी थी। एक दिन वह इसी किले के बाजार में अपनी सहेलियों के साथ इत्र खरीद रही थी। तभी वहाँ से गुजर रहा एक तांत्रिक राजकुमारी की सुंदरता पर मोहित हो गया। उसने अपनी तंत्रशक्ति से उस इत्र को अभिमंत्रित कर दिया ताकि उसका उपयोग करने के बाद राजकुमारी उसकी तरफ आकर्षण की डोर में बँधी खींची चली आए। ऐसा कहते हैं कि राजकुमारी भी तंत्र विद्या की जानकार थी। इसलिए उसने उस इत्र की बोतल को एक पत्थर पर पटककर तोड़ दिया। अभिमंत्रित इत्र के लगते ही वह पत्थर उड़कर तांत्रिक की ओर बढ़ चला। अभिमंत्रित इत्र लगे पत्थर के नीचे दबकर मरने से पहले उस तांत्रिक ने भानगढ़ को उजड़ जाने का श्राप दे दिया। कहते हैं कि तांत्रिक के श्राप के कारण भानगढ़ कुछ ही दिनों में बरबाद हो गया। भानगढ़ के उजड़ जाने की और भी कहानियाँ यहाँ सुनने को मिलती हैं। भानगढ़ के नजदीक ही लेखक ने नीलकंठ मंदिर में दर्शन किए। यहाँ लेखक को स्वर्गिक शांति का अनुभव हुआ।

दसवें अध्याय में 'नागौर किलाः धूल भरे युद्धक इतिहास का एक गवाह' में नागौर के ऐतिहासिक किले का वर्णन करते हुए लेखक लिखते हैं– नागौर का संदर्भ महाभारतकालीन समय से ही विभिन्न ग्रंथों और शास्त्रों में 'अहिच्छत्रपुर' नाम से मिलता है। इसीलिए इस किले को अहिच्छत्रपुर दुर्ग के नाम से भी जाना जाता है। पौराणिक मान्यताओं के मुताबिक़, अहिच्छत्रपुर दुर्ग को अर्जुन द्वारा जीता गया था और फिर अर्जुन ने अपने गुरु द्रोणाचार्य को यह दुर्ग भेंट में दिया था। लेखक ने नागौर का किला देखा। नागौर दुर्ग में अकबरी महल है जो कि काँच और दर्पण से सजा हुआ है। इसी दुर्ग में दीपक महल है जिसमें महत्त्वपूर्ण समारोह आयोजित किए जाते हैं। इस दुर्ग में एक बादल महल भी है। बादल महल में भव्य चित्रकारी की गई है। इस किले में सबसे खास बात है, वह है किले की जटिल जल प्रणाली और वर्षा जल संग्रहण प्रणाली। इस दुर्ग में बारिश की प्रत्येक बूंद का सदुपयोग होता है। लेखक ने कुचामन का किला देखा। कुचामन शहर डिफेंस कोचिंग नगरी के रूप में विख्यात है। कुचामन किले में मंदिरों, स्थापत्य सौंदर्य, भित्ति चित्रकारी, सुरक्षा इंतज़ामात, जल संग्रहण व्यवस्था, रनिवास, हवामहल, शीशमहल को देखकर लेखक गदगद हो गया।

पंचगनी और महाबलेश्वर महाराष्ट्र के खूबसूरत हिल स्टेशनों में से हैं जो अपनी

प्राकृतिक सुंदरता, शांत वातावरण और सुरम्य दृश्यों के लिए प्रसिद्ध हैं। लेखक ने इन दोनों स्थलों की यात्रा की तो यह निश्चित रूप से एक अद्वितीय अनुभव रहा। पंचगनी जिसे 'पाँच गाँवों की घाटी' के नाम से भी जाना जाता है, एक शांतिपूर्ण हिल स्टेशन है जो हरियाली, वादियों और पहाड़ियों के बीच बसा हुआ है। यहाँ की हवा में ठंडक और अद्भुत दृश्य मन को शांति प्रदान करते हैं। पंचगनी की यात्रा में लेखक को यहाँ की प्राकृतिक सुंदरता, प्राचीन देवस्थलों और हरियाली से सजे खेतों का दर्शन हुए। इसके अलावा, लेखक ने यहाँ के प्रसिद्ध पॉइंट्स जैसे कि 'वाटरफॉल पॉइंट', 'राजपूती गार्डन' और 'टेबुल लैंड' का भी अनुभव किया। महाबलेश्वर, जो पंचगनी से कुछ ही दूरी पर स्थित है, एक और प्रसिद्ध हिल स्टेशन है। यह स्थल विशेष रूप से अपने शानदार दृश्य, ठंडे मौसम और स्ट्रॉबेरी के बागानों के लिए जाना जाता है। 'क्वीन्स पॉइंट' और 'विजयदुर्ग किला' जैसे स्थल लेखक के लिए आकर्षण का केंद्र रहे। यहाँ की हवाओं में ताजगी और पर्वतीय जीवन की विशिष्टता हर एक पर्यटक को मंत्रमुग्ध कर देती है।

लेखक डॉ. जितेंद्र कुमार सोनी रोमांच के साथ अध्यात्म भावना से भी जुड़े हुए हैं। लेखक की जालोर में जिला कलेक्टर के पद पर पदस्थापना होने के बाद लेखक ने जालोर के जैन मंदिरों के दर्शन किए। जालोर के जैन मंदिर विश्वप्रसिद्ध हैं। जालोर राजस्थान का एक ऐतिहासिक और सांस्कृतिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है और यहाँ से जैन धर्म से जुड़े कई संतों, विद्वानों और आचार्यों का गहरा संबंध रहा है। इस क्षेत्र का जैन धर्म से विशेष संबंध रहा है और यहाँ के कई संतों ने जैन धर्म को प्रचारित करने, उसे स्थापित करने और उसके सिद्धांतों का विस्तार करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। जालोर के जैन संतों और विद्वानों की सूची बहुत बड़ी है जो न केवल जैन धर्म के प्रसार में योगदान देते रहे बल्कि भारतीय दर्शन और साहित्य में भी महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इस जालोर शहर की एक बड़ी खूबी यह भी है कि इस शहर ने अपने अनमोल अतीत या विरासत को सहेजकर रखा हुआ है।

लेखक ने नागौर से पीपासर और मुकाम धाम तक की धार्मिक यात्रा की जो राजस्थान के प्रमुख धार्मिक स्थलों में शामिल है। यह यात्रा न केवल धार्मिक दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण थी बल्कि इन स्थानों की महत्ता सांस्कृतिक और ऐतिहासिक धरोहरों के संदर्भ में भी उल्लेखनीय है। पीपासर राजस्थान के नागौर जिले का एक छोटा सा गाँव है, जो विशेष रूप से पीपासर धाम के कारण प्रसिद्ध है। यहाँ का प्रमुख धार्मिक स्थल पीपासर का मंदिर है जो भगवान शिव के पूजन के लिए समर्पित है। इस मंदिर में हर वर्ष बड़ी संख्या में श्रद्धालु आते हैं। पीपासर का इतिहास और इसकी धार्मिक महत्ता बहुत गहरी है। यह स्थल क्षेत्रीय लोगों के लिए आस्था का केंद्र है। लेखक ने यहाँ यात्रा के दौरान इस पवित्र स्थल की महिमा का अनुभव किया और इस स्थान की

धार्मिक महत्ता को समझा। मुकाम धाम एक प्रमुख धार्मिक स्थल है। यह स्थान विशेष रूप से संतों और आध्यात्मिक गुरु की उपासना के लिए प्रसिद्ध है। मुकाम धाम में यात्रा करने वाले भक्तों को शांति, ध्यान और आत्मिक संतोष की अनुभूति होती है। इन स्थानों के माध्यम से लेखक ने भारतीय धर्म, संस्कृति और आस्था की विविधताओं का अनुभव किया।

लेखक ने तालछापर की यात्रा की जो राजस्थान के चुरू जिले में स्थित एक प्रसिद्ध वन्यजीव अभ्यारण है, जो अपने अद्भुत प्राकृतिक सौंदर्य और जैव विविधता के लिए प्रसिद्ध है और यहाँ की यात्रा एक अनोखा अनुभव प्रदान करती है। तालछापर एक प्राचीन वन्यजीव अभ्यारण्य है जो विशेष रूप से कृष्ण मृग (ब्लैकबक) के लिए जाना जाता है जो इस अभ्यारण्य का प्रमुख निवास स्थान है। इसके अलावा यहाँ अन्य जानवरों जैसे चीतल, नीलगाय, साही और विभिन्न प्रकार के पक्षी भी पाए जाते हैं। तालछापर के विशाल खुले मैदान, वनों और जलाशयों का संयोजन इसे एक शानदार प्राकृतिक स्थल बनाता है। लेखक ने इस यात्रा के दौरान न केवल कृष्ण–मृगों के आवास का दौरा किया बल्कि यहाँ के अद्भुत वन्य जीवन, प्राकृतिक सौंदर्य और शांति का अनुभव किया। कृष्ण–मृगों का झुंड यहाँ की सबसे बड़ा आकर्षण है। तालछापर का स्थान न केवल प्रकृतिप्रेमियों के लिए बल्कि उनलोगों के लिए भी महत्त्वपूर्ण है जो वन्यजीवों के संरक्षण और उनके जीवनचक्र को समझने के इच्छुक होते हैं। यह यात्रा लेखक को न केवल इस अभ्यारण्य की भव्यता का अनुभव कराने वाली रही बल्कि उनके भीतर पर्यावरण और वन्यजीवों के संरक्षण के प्रति एक नई समझ और जागरूकता भी पैदा करने वाली रही।

लेखक ने राजस्थान के झालावाड़ जिले में स्थित बिनायगा और कोलवी की गुफाएँ देखीं जो ऐतिहासिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण स्थल हैं। इन गुफाओं की वास्तुकला, चित्रकला और ऐतिहासिक महत्त्व दोनों ही अद्वितीय हैं और इन स्थानों की यात्रा लेखक के लिए एक अद्भुत अनुभव रही। इन गुफाओं की वास्तुकला विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यह बौद्ध भिक्षुओं और साधुओं द्वारा ध्यान और साधना के लिए बनाई गई थीं। यहाँ की चित्रकला और शिलालेख प्राचीन भारतीय शिल्पकला का एक अद्वितीय उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। गुफाओं के अंदर बुद्ध की मूर्तियाँ और धार्मिक चित्रकारी देखी जा सकती है जो उस समय के धार्मिक जीवन और कला को दर्शाती है। लेखक ने कोलवी गुफाओं की यात्रा के दौरान एक गहरी मानसिक शांति का अनुभव किया।

यह एक पठनीय यात्रा–संस्मरण है। लेखक इस पुस्तक में सिर्फ सूचनाएँ या जानकारियाँ नहीं देते। पाठक यात्रा के अलग–अलग चरणों में लेखक के साथ यात्रा करते हैं, उसके रोमांच में रोमांचित होते हैं। इस तरह की पुस्तकें न केवल बाहरी

दुनिया से परिचित कराती हैं बल्कि एक आंतरिक यात्रा की ओर भी प्रेरित करती हैं जिससे व्यक्ति अपने आसपास की वास्तविकताओं और साधारण जीवन के महत्त्व को समझ सकता है। हर स्थल पर दर्शनीय स्थलों के विस्तृत विवरण के साथ उन स्थान की प्राकृतिक सुंदरता, भौगोलिक स्थिति, आर्थिक स्थिति, कला–संस्कृति, जीवनशैली, इतिहास, अनुशासन, खान–पान, रहन–सहन, अतिथि सत्कार, मौसम सभी कुछ सरल शब्दावली में इस प्रकार लिखा गया है कि पाठक तन से चाहे कहीं भी हो, पर मन से इन स्थलों की यात्रा कर ही आता है। यही मानसिक यात्रा इस पुस्तक की विशिष्टता है। डॉ. जितेंद्र कुमार सोनी की यह किताब अंडमान द्वीप समूह, गुजरात, अरुणाचल प्रदेश, राजस्थान, महाराष्ट्र का जीवन और वहाँ की संस्कृति को समझने के लिए एक अनूठी कृति है। इन संस्मरणों से गुजरते हुए आप इन स्थानों की प्रकृति और इन इलाकों के सामाजिक–राजनीतिक इतिहास से भी परिचित होते चलते हैं। यात्रा संस्मरण पढ़ने के शौक रखने वालों के लिए एक अच्छी और प्यारी किताब है। कुल मिलाकर डॉ. जितेंद्र कुमार सोनी की यह पुस्तक रोचकता से भरपूर है। विस्तार से हुआ वर्णन आपको ऊबने नहीं देता बल्कि एक सांस में पढ़ते जाने को प्रेरित करता है। 'ओकुहेपा' यात्रा–संस्मरण की अनूठी कृति है।

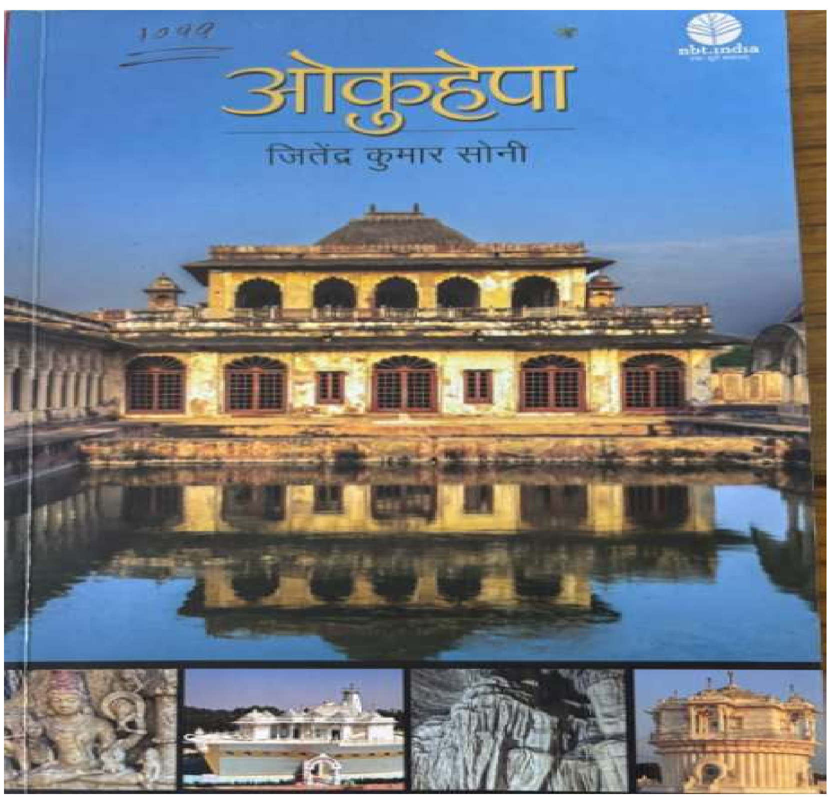

❑❑❑

पश्चिमी आकर्षण का सच और दरकते संबंध

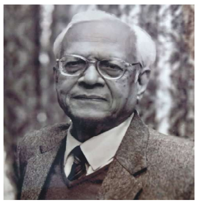

कमल किशोर गोयनका

हिंदी के प्रतिष्ठित शोधकर्मी आलोचक।

डॉ अनुपमा तिवारी

चार मौलिक, चार संपादित पुस्तकें प्रकाशित। संप्रति–सहायक प्रोफेसर, भाषा और साहित्य विभाग, एलायंस विश्वविद्यालय

कमल किशोर गोयनका के संपादन में सद्यःप्रकाशित पुस्तक 'प्रवासी साहित्यमाला–2' में इस बार सुधा ओम ढींगरा की श्रेष्ठ कहानियों को संकलित किया गया है। संग्रह की कुल पंद्रह कहानियाँ विविध विषयों पर लिखी गई हैं। कहानियों के केंद्र में पाश्चात्य देश में भारतीयों की स्थिति, उनके संघर्ष, उनकी परिवर्तित मानसिकता, नौस्टेल्जिया का दर्द और विदेशी सभ्यता के खोखले दंभ का वितान है। मुख्य तौर पर समस्त कहानियों को चार संदर्भों में देखा जा सकता है। विदेश में भारतीय मूल के लोगों का संघर्ष, उनकी स्थिति, लोलुपता के कारण क्षय होते मूल्य और पाश्चात्य देशों के लोगों का संघर्ष। प्रथम कहानी– "क्यों ब्याही परदेस" पत्रात्मक शैली में लिखी भावपूर्ण कहानी है जिसमें एक नवविवाहित युवती का दर्द लक्षित है। इसमें भिन्न परिवेश की तुलना एवं दो देशों के मध्य वैविध्य को दर्शाया गया है। "दो संस्कृतियों के मूल्यों में सामंजस्य का, अजनबी देश और अजनबी लोगों में स्वयं की पहचान और अस्तित्व को बचाए रखने का प्रयत्न है। यहाँ हर मोर्चे पर तैनात नितांत अकेली खड़ी हूँ मैं और वहाँ ससुराल और मायके के परिवार के सदस्य और रिश्तेदार लड़की के साथ पग–पग पर होते हैं। अकेलेपन का भार मुझे यहाँ अकेले ढोना है ताउम्र, जब तक इस देश में हूँ, क्योंकि ब्याह दी गई हूँ परदेश में....." (पृ० 24–25) अपने देश की संस्कृति, संयुक्त परिवार का परिसीमन, आसपड़ोस और परिवेश की आत्मीयता ये सब किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास के सार्थक आयाम हैं। अब संदर्भ लें प्रवासियों का तो यह समझ में आता है कि जिन सम–विषम स्थिति में देश को छोड़कर वे जाते हैं, विदेश में वही कल्पना उनके मानसपटल पर रची–बसी होती है। उन्हीं सुखद स्मृतियों से वे स्वयं को आह्लादित करते रहते हैं। जबकि सत्य यह है कि जिस देश के प्रति उनकी अगाध भावप्रवणता होती है, वहाँ

प्रवासी श्रेष्ठ कहानियाँ, सुधा ओम ढींगरा, संपादक– कमल किशोर गोयनका, प्रकाशक–स्वराज प्रकाशन, 4648/1, 21, अंसारी रोड, दरिया गंज, नई दिल्ली, संस्करण प्रथम, मूल्य –595 रु., पृष्ठ–150

की स्थिति निरंतर परिवर्तित होती रहती है। विदेश में ब्याही गुड़िया को देश की स्मृतियाँ व्यथित करती हैं, उसे पराई जमीं का परिवेश ग्राह्य नहीं लगता, एकाकीपन उसे खलता है। वहीं दूसरी ओर बात करें स्वदेश की तो यहाँ के लोगों की मानसिकता विदेश में कार्यरत संबंधियों से अपेक्षा की अधिक होती है, जबकि प्रवासी भारतीय स्मृतियों में देश को लेकर सुखद गोते लगाते हैं यथा–" "नहीं ओए, स्वर्ग में काले पानी की सजा है। सब कुछ ऊपरी, बनावटी और बेरंगी दुनिया है। भावनाएँ, गहराई, सच्चाई और रस तो अपने देश में है।" (पृ०–41) सुधा ओम ढींगरा की 'कौन सी जमीन अपनी' चर्चित कहानी है जिसमें भारतीय परिवारों की लोलुपता और निकृष्टता को बड़े ही व्यंग्यात्मक ढंग से अभिव्यक्त किया गया है। नॉर्थ कैरोलाइना अमेरिका में अपने परिवार के साथ सुविधासंपन्न जीवन व्यतीत करने के उपरांत भी मनजीत को वहाँ से आत्मीयपूर्ण लगाव न हो सका। उसे तो आज भी पंजाब की मिट्टी की सोंधी खुशबू मानो अपने अंचल में मातृत्वपूर्ण स्थान देने के लिए प्रतिक्षण पुकार रही हो। अपने देश में लौटने के लिए वह हर समय उतावला रहता। कथा कल्पना में आगे बढ़ती है परंतु जब यथार्थ से मनजीत अवगत होता है तो उसके पैरों तले की ज़मीन खिसक जाती है। पंजाब में जमीन खरीदने और समाज में सम्मानित स्थान अर्जित करने के लिए जो मनजीत प्रतिवर्ष लाखों रुपये भारत भेजता था इस उम्मीद से कि जमीन में उसका भी हिस्सा होगा, वही जब अपने परिवार वालों से यह कहता है कि वे अब पंजाब में ही रहेंगे तो गृह के सदस्यों के लिए असह्य होता है यहाँ तक कि उसके भतीजे उसे मरवाने की भी योजना बनाते हैं। यह स्थिति मात्र एक मनजीत की नहीं अपितु अन्य कई लोगों की है जो अपना जन्मभूमि छोड़कर जाते हैं तो उनके पीछे परिवार के लोग यही समझते हैं कि अब वे वापस कभी नही लौटेंगे तथा सारी संपत्ति अब उन्हीं की है। यह शर्मनाक स्थिति है। उदाहरण के तौर पर तो आज भी हम राम और भरत का नाम लेते हैं और परित्याग एवं सहिष्णुता की दुहाई देते हैं परंतु उन सिद्धांतों का अनुपालन करने वाले नाममात्र के बचे हैं।

भारत में विवाह पद्धति के सौष्ठव को सर्वत्र महत्त्व दिया जाता है परंतु पाश्चात्य देश के आकर्षण और धनोपार्जन की आकांक्षा में आज भारतीय मूल के युवक–युवतियाँ अपने अस्तित्व को ही भूलते जा रहे हैं और स्वार्थांधता के कारण अपने मूल्यों से पतित होते जा रहे हैं। इसी का उदाहरण है कहानी "पासवर्ड"। इसमें तन्वी अपने पति साकेत से तलाक लेती है और अंत में अपने ही रचाए कुचक्र में फँस जाती है। साकेत से विवाह करने का उद्देश्य उससे निश्छल प्रेम करना नहीं अपितु किसी भी प्रकार से विदेश में पहुँचना और पति की संपत्ति को अपने नाम करके अपने प्रेमी के साथ भाग जाने की कथा है। यह कहानी कई प्रकार के प्रश्न पाठकों के समक्ष रखती है। भारतीय संस्कृति की पराकाष्ठा का हनन, भारतीय स्त्री की दया–भावना, भारतीय

संस्कृति में वैवाहिक परंपरा और पति–पत्नी का दायित्व, विदेश में भारत और भारतीयता की छवि किस प्रकार की है? भारतीय नारी को त्याग और समर्पण की प्रतिमूर्ति माना जाता है, विदेश की सरजमीं पर इस प्रकार का प्रपंच भारतीय स्त्री के अस्तित्व को खोखला प्रतीत करता है। "विदेश प्रवास ने सोचने और समझने के नजरिए को बहुत व्यापक कर दिया है। स्त्री हो या पुरुष, सबके भीतर एक सी चेतना है और सभी पहले इंसान हैं उसके बाद कुछ और....मानव जीवन की यहाँ बहुत कदर की जाती है। विदेश के परिवेश ने मानवी भावनाओं को समझने और जानने के दृष्टिकोण में ही बहुत परिवर्तन ला दिया है।" (पृ० –112) ध्यातव्य है कि विदेश ने जहाँ मानवता की नयी परिभाषा स्थापित की है वहीं मानवता की ओट में चादर चढ़ाए दानवी मुखौटों का भी पर्दाफाश किया है। सुविधापूर्ण जीवन जीने, अकूत संपत्ति जोड़ने की अभिलाषा आज प्रत्येक वर्ग की है और विदेश की धरती उन्हें वह जादुई स्थान दिखाती है जबकि यह भी पूर्ण सत्य नहीं है। देश चाहे अपना हो या पराया; बिना श्रम, निष्ठा, सकारात्मक भाव और चुनौती के, ये सारी चीजें लब्ध नहीं की जा सकती हैं। इस क्रम में छल–छद्म, धोखा, आरोपण कुछ दिनों की खुशहाली दे सकते हैं, पर स्थिर और शांत जीवन नहीं दे सकते। स्त्री को सहिष्णुता एवं ममत्व का पर्याय माना जाता है परंतु उनकी स्थिति प्रकर्ष तक नहीं पहुँच पाई। आज भी उसे निरीह, बेबस, लाचार या भोग्या ही माना जाता है। उसके अंतर्मन तक पहुँचना पुरुष की समझ से परे है– "तुम क्या जानो सच क्या है? किनारे पर खड़े होकर सच नहीं जाना जाता, गहरे में डुबकी लगानी पड़ती है। तुम देह के भीतर की स्त्री तक पहुँचे ही कब हो, जो सच जान सकते। सदियों से नारी के अंतर्मन में हरित दूर्वा पर बिखरी ओस की बूँदों सा सच, बारिश में भीगती धरा के बदन से उठती सोंधी–सोंधी खुशबू–सा सच, कलियों का चटककर फूल बनने–सा सच पुरुष ने जाना ही कब है? उसका सच तो बस नारी का शरीर है।" (वही, पृ०–119) विवेच्य पंक्तियों में स्त्री की मानसिक ऊहापोह और अंतर्द्वंद्व को कलात्मक ढंग से अभिव्यक्ति मिली है। स्त्री मन की थाह पाना किसी के लिए भी दुर्लभ है क्योंकि पुरुष समाज मात्र बाह्य आवरण और रूप पर ही मुग्ध होता है, उसे मात्र अपनी तृषा की तृप्ति ही सर्वोपरि दिखती है और किसी के मनो–भाव, अभिलाषा की तनिक भी चिंता नहीं रहती। वह तो मात्र अपनी कामुकता को शांत करने के लिए स्त्री की तलाश में रहता है और उसे ही दोयम दर्जे एवं कुलटा की उपाधि देने से भी पीछे नहीं हटता। उसकी पवित्रता एवं शुचिता पर भी प्रश्न उठाता है। मगर– "दुनिया में सबसे पवित्र अगर कोई है तो वह है नारी। पुरुष बीज डालता है तो वह नौ महीने बाद उसे फल देकर साथ की सारी गंदगी बाहर निकाल देती है। हर माह प्रकृति उसका भीतरी आँगन स्वच्छ कर देती है। उसे तो कोई पुरुष मैला कर ही नहीं सकता। प्रकृति ही उसका साथ देती है।" (पृ०–119) बस

आवश्यकता है संकीर्ण मानसिकता से ऊपर उठने की। समाज में जितना आहत स्त्री समुदाय को किया गया है, यदि उनका हिसाब लेने बैठा जाए तो पुरुषसमाज मात्र मूक दर्शक ही बनकर रह जाएगा। प्रश्न यह भी है कि क्या स्त्री के साथ ही यह दुर्व्यवहार हो रहा है ? इसका उदाहरण सुधा ओम ढींगरा जी ने अपनी अन्य कहानियों में ही दिया है। सफल वैवाहिक जीवन के लिए उदाहरणस्वरूप भारत का नाम लिया जाता रहा है परंतु स्थिति अब अत्यधिक परिवर्तित हो चुकी है। स्त्रियों के स्वभाव और व्यवहार में अधिक परिवर्तन आया है और पुरुष हाशिये पर आ चुके हैं। इस संग्रह में ऐसी कई कहानियाँ हैं जो पुरुषों की दुरावस्था को प्रस्तुत करती है। "पासवर्ड", "वह कोई और थी" कहानी इसी संदर्भ में हैं।

"वह नया नया इस देश में आया था। शादी के बाद वर्क परमिट के लिए हर तरह से सपना और उसके परिवार पर निर्भर था। बेकसूर होते हुए भी क्षमा उसे ही माँगनी पड़ती। सपना उसे हारा हुआ महसूस करवाती और उसकी इच्छा के विरुद्ध सहवास करती। पराए देश में वह किससे अपनी पीड़ा साझा करे..।" (पृ०–93) पुरुषों पर शोषण, अत्याचार और पुरुषत्व के वर्चस्व दिखाने का जो आरोप अब तक लगता रहा है, ये पंक्तियाँ पूर्णरूपेण इसे निषिद्ध करती हैं। अभिप्राय यह है कि शोषक की भूमिका में मात्र पुरुषों को दोषी करार देना उचित नहीं, अपितु स्त्री की भी वही भूमिका है। कह सकते हैं कि सत्ता जिसकी होगी, वर्चस्व उसी का रहेगा चाहे स्त्री हो अथवा पुरुष। दूसरी बात जो समझने वाली है, वह यह कि एक पुरुष जब नौकरी करता है तो उसका लक्ष्य पत्नी और बच्चों को प्रसन्नता देना और उनकी इच्छाओं को प्राथमिकता देना होता है। पति के पैसों पर पत्नी धाक जमाती है और रौब भी दिखाती है कि उसके पति इतने काबिल व्यक्ति हैं, अब अगर दूसरे पक्ष को लें जहाँ स्त्री त्याग, समर्पण और दया की प्रतिमूर्ति मानी जाती है तो यह स्पष्ट होगा कि उसी त्याग की देवी का हृदय कितना संकीर्ण हो जाता है जब वह पति से अधिक कमाने लगती हैं। क्यों उनके मन में यह बात घर कर लेती है कि पति निठल्ला और उसके ऊपर पल रहा है? क्यों वह पति को आभास नहीं होने देना चाहती कि वह कम कमा रहा है तो क्या, वह अधिकारसहित पत्नी के कमाई पर रौब जमाए? वे क्यों पति को गैरजरूरी प्राणी समझ उद्दंड व्यवहार करने लगती हैं और उसके साथ मनमानी करती हैं? सपना का व्यवहार उसके पति के प्रति शोषण का है जो विदेश में स्वर्णिम स्वप्न सजाए आता है कि माता और बहनों को विलासितायुक्त जीवन देगा परंतु दुखद कि उसकी अपनी जिंदगी ही यातनामय है। सपना को कमाऊ पति नहीं अपितु घर–गृहस्थी की देखभाल के लिए चाकर की जरूरत है। निम्नलिखित पंक्तियाँ इसी को व्यक्त करती हैं यथा– "सपना ने पैंतरा बदला "नंदू आई एम सॉरी। दो–दो नौकरियाँ मत करो। मम्मी–डैडी का ध्यान भी तुम्हें ही रखना होता है। मेरी जॉब बहुत डिमांडिंग है।

जरूरत थी तो मुझसे क्यों नहीं माँग लिया पैसा। तुमसे पाँच गुना अधिक कमाती हूँ और तुम्हारी माँ बहनों की इच्छाओं को पूरा कर सकती हूँ। हाँ, क्यों माँगोगे...? मर्द हो न, आत्मसम्मान पर चोट लगती है। स्त्री से पैसा लेने में शर्म आती है। स्त्री पुरुष से पैसा माँगे तो जायज, पुरुष माँगे....।" (पृ०—92)

इसमें सपना का अहम बड़ी ही सपाटता से दिखाई पड़ता है जहाँ वह आर्थिक तौर पर सशक्त होने के कारण किसी भी संबंध या आत्मीय भावों का सम्मान करने में अक्षम है। स्पष्ट होता है कि परिवार, समाज या किसी भी समुदाय में मानवता का महत्त्व कम और सत्ता का महत्त्व अधिक है।

इस संग्रह में इसके अतिरिक्त अन्य कई कहानियाँ हैं जो विविध परिवेश पर केंद्रित हैं यथा— दो संस्कृतियों में सामंजस्य का संघर्ष, समलैंगिक संबंध, वृद्ध विमर्श, विदेश में बसने के लिए ग्रीन कार्ड का खेल एवं पाश्चात्य सभ्यता से परिचित होने पर भी अपने मूल से विलग न होने की स्थिति इत्यादि। लेखिका ने अपनी कहानियों में कई ऐसे संदर्भ दिखाए हैं जो पाश्चात्य देशों के बाह्य आकर्षण से पाठकों का परिचय कराते हैं तथा भारत के युवाओं में विदेश जाने, अर्थोपार्जन करने एवं विलासितापूर्ण जीवन जीने का जो खयाली पुलाव है, उसकी सत्यता को स्पष्ट करते हैं। 'सूरज क्यों निकलता है' कहानी में 'पीटर' और 'जेम्ज़' के माध्यम से दो ऐसे युवाओं के बारे में बताया गया है जो अकर्मण्य, आलसी और जुगाड़ से पैसे एकत्रित कर अपना जीवन जैसे—तैसे बिताते हैं। कहानी के कुछ अंश को पढ़कर तो 'कफन' कहानी के माधव और घीसू की भी याद पाठकों को अवश्य आएगी। कहानी 'उसकी खुशबू' में 'जूली' जिस भारतीय लड़के से प्रेम करती थी, उसने उसे धोखा दिया जिसका बदला जूली साँवले, लंबे पुष्ट भारतीय लड़कों से लेती है। रूप की मादकता से प्रभावित भारतीय लड़के सहजता से जूली की नीली आँखों के वश में हो जाते और अंततः जान से हाथ धोना पड़ता। कहानी 'अनुगूँज' में भारतीय मूल के परिवार अमेरिका में कई वर्षों तक रहने के पश्चात् भी उस संस्कृति और भाव के साथ सामंजस्य नहीं बैठा पाते और उस अतिविकसित देश में भी वे संकीर्ण मानसिकता के साथ अपना पुरुषत्व घर की महिलाओं पर दिखाते हैं। वे खुद तो आजाद होकर कई प्रकार से आनंद और लुत्फ उठाते परंतु उनकी पत्नियाँ उनके ऊपर आश्रित होकर बेबसी और यातनापूर्ण जीवन जीने के लिए अभिशप्त थीं। 'सुखबीर' अपनी पत्नी 'गुरमीत' के साथ नौकरानी की तरह व्यवहार करता और 'मार्था' के साथ अठखेलियाँ करता। जब यह गुरमीत के लिए असह्य हो जाता है और वह तलाक की माँग करती है तो उसे आधी रात को छत पर से नीचे फेंक दिया जाता है और वह मर जाती है। इस प्रकार कई ऐसे संदर्भ कहानी में आते हैं जो इस बात को स्पष्ट करते हैं कि समाज, परिवेश कोई भी हो—मनुष्य और उनमें भी स्त्री का दर्द सर्वत्र एक ही है। पाश्चात्य देशों का आकर्षण दूर के सुहावने

ढोल की तरह होता है। जो उस देश के लोग हैं, उनका संघर्ष थोड़ा अलग है परंतु छल और प्रपंच से वे भी अपना कार्य साधते हैं तथा जो भारतीय मूल के लोग हैं, वे भारत से बाहर जाकर भी अपनी संस्कृति और सभ्यता के संरक्षण की दुहाई तो देते रहते हैं परंतु उनकी जो कुत्सित मानसिकता और दानवी प्रवृत्ति है, वह किसी भी परिवेश में समान ही है। वर्तमान समय में वैज्ञानिक उपलब्धियों का परचम चरम पर है परंतु जिसका क्षय हो रहा है, वह है मानवता। विकास की इस यात्रा में मनुष्य को मनुष्य बनाए रखने की चुनौती सबसे अधिक है। लेखिका सुधा ओम ढींगरा की कहानियों की जो विषयवस्तु है, वह निस्संदेह सद्भावनायुक्त है और विसंगतियों का निराकरण करने वाली है। प्रत्येक कहानी के मूल में एक निष्कर्ष ऐसा है जो समाज हित में है। भावपक्ष अद्भुत है। कहानी के शिल्प में थोड़ा–सा कच्चापन कहीं–कहीं दिखता है। किसी–किसी कहानी का प्लॉट अधिक हो गया है, विषयसापेक्ष नहीं है तथा कहीं–कहीं अगर कलात्मक पक्ष को और आकर्षक ढंग से अभिव्यक्त किया जाता तो निश्चित तौर पर ये कहानियाँ श्रेष्ठ नहीं, अति श्रेष्ठ कहानियाँ बन जातीं। बावजूद इसके, संग्रह की प्रत्येक कहानी पठनीय और विचारणीय है।

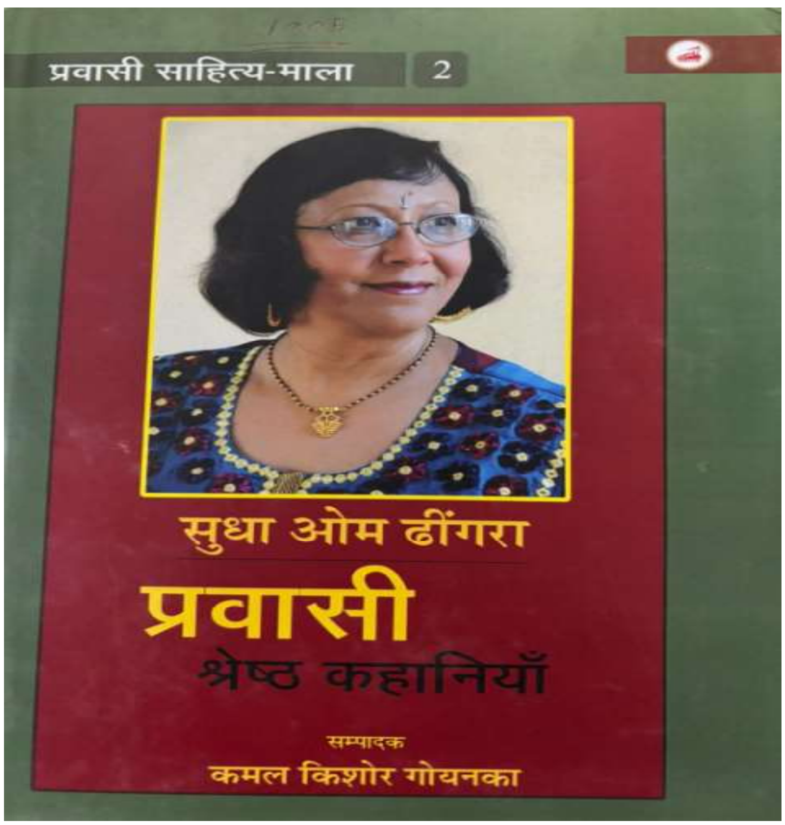

❑❑❑

'मेरे आसान झूठ' में निपजे कविताओं के अक्स

रमेश खत्री

विभिन्न साहित्यिक विधाओं में अनेक पुस्तकें प्रकाशित। विविध पुरस्कारों से सम्मानित। संप्रति– स्वतंत्र लेखन।

"हर व्यक्ति के पास अपने गुप्त दुख होते हैं, जिन्हें दुनिया नहीं जानती और अक्सर हम किसी व्यक्ति को भावनाहीन या ठंडा समझ लेते हैं, जबकि वह कवल उदास होता है।" – **हेनरी वाइसवर्थ लांगफेलो**

एक अजीब तरह की प्रौढ़ भावुकता और इसके साथ वैचारिकता के बीच गजब के संतुलन से भरी द्वारिका उनियाल की कविताओं का संकलन है 'मेरे आसान झूठ' जो प्रभात प्रकाशन से आया है। इसमें उनकी 114 कविताएँ संकलित हैं। इन कविताओं से गुजरते हुए हमें मानव मन की अनेक कसमसाहटों से गुजरना पड़ा, जो अभी तक अनकही ही रही हैं। इससे पहले यदि किसी के द्वारा कही भी गई होंगी तो शिल्प के आवरण में लपेटकर। शिल्प पर ज्यादा सावधानी बरतने वालों से कथ्य को काव्यात्मक समीकरण से युक्त करने की दिशा में जो कठिनाई होती है, उसे अच्छे–अच्छे काव्य–शिल्पियों में देखा जा सकता है।

समकालीन हिंदी कविता में अनगढ़ शिल्प के बावजूद विचार का पक्ष कविता का एक महत्त्वपूर्ण और मूलगामी तत्त्व हो गया है। इसके पूर्व कल्पना और भावतत्त्व केंद्र में रहे हैं। समाज में कई तरह की हलचलों और संक्रमणों के कारण विचारतत्त्व का महत्त्व बढ़ता गया। कविता में भी यह क्रांतिकारी और विकासगामी परिवर्तन भारतीय समाज की विकासगामी मानसिकता के साथ हुआ जिसे हिंदी कविता में शिद्दत से देखा जा सकता है। जब हम द्वारिका उनियाल की कविताओं से रूबरू होते हैं तो पाते हैं कि इनमें सांस लेता जीवन एक तरह से शहरों से दौड़ में पिछड़ चुके गाँवों में बसा है जो अपनी पारंपरिक निजता को खोता जा रहा है और नये को प्राप्त नहीं कर पाया है, ''और फिर उनकी स्मृति में बार–बार, विस्मृति के किसी कोने में, अम्मा का पल्लू छुपा होता है, जिसमें लिपटकर हम रोते थे।' इससे भी आगे कवि कहता है, 'फिर धीरे–धीरे, वक्त के साथ वे साड़ियाँ भी संदूक में कैद हो गईं, अवचेतन में

मेरे आसान झूठ (कविता–संग्रह), लेखक–द्वारिका उनियाल, प्रभात प्रकाशन, 4/19, आसफ अली रोड, नई दिल्ली–110002, संस्करण प्रथम, 2024, मूल्य–300 रु., पृष्ठ–207

विस्मृत अतीत की तरह...तुम्हारे आंचल का साया, दुःख के कातर क्षणों में स्वतः ही स्नेहिल स्पर्श बनकर चारों तरफ छा जाता है।' स्पष्ट है कि कवि की आँखों में जो स्वप्न है, वह विकास की त्रासदी के बरक्स मानव विरोधी दिखाई देने वाली हर एक चीज को उखाड़ फेकने का ही है, 'दुनियादारों को ही दुनिया की हर चीज मुबारक, किसी को किसी की नजर ना लगे।...अचानक किसी दिन एक पुराना गीत बज उठता है तो दशकों पीछे छूटे कुछ चेहरों की मुस्कुराहट याद आती है।' या फिर 'अब भी भूत की कब्र पर खड़ा है वर्तमान।'

स्पष्ट है कि कवि अतीत और वर्तमान के बीच बार–बार आवागमन करता है और उसमें से ही उन मनकों को तलाशता है जो आधुनिकता की अंधी दौड़ में कहीं छूट गए हैं जिससे हमारे समय के प्रमुख विमर्श भटक गए हैं, 'और साइकिल चलाती, गुमसुम सी काम वाली, किसी के घर की सुबह करने जा रही है...हर गली में जाने क्यों हर शख्स बँधा हुआ है, फुटपाथों पे आँखें नम और गला रूंधा हुआ है, पावर हाउस की कालिख लिए दिल्ली के बाशिंदे रोज रात सपनों की राख पीते हैं।' कवि ने एक नागरिक के रूप में अपनी भावनाओं को सतत अभिव्यक्ति देते हुए किसी धुन की जगह नहीं छोड़ी है बल्कि मानव विरोधी कुचक्रों से निरंतर टकराते हुए सामाजिक राजनीतिक विमर्शों को केंद्र में लाने का भरसक प्रयास किया है, 'घर को सबसे ज्यादा खतरा, वक्त की मार से नहीं, किवाड़ पे लगे कमबख्त तालों से है।' या फिर, 'वह कोई तारा नहीं, कि टूटा और तुम्हारी चाहतें पूरी करेगा, ये तो उल्कापिंड है जख्म देगा ज़मीन की देह को।' कवि कहता है, 'पैसे से बहुत कुछ खरीदा जा सकता है, मगर विवेक नहीं, खयालों का सौदा फिर भी हो जाए मगर ख्वाबों का नहीं...हेलिकॉप्टर में उड़ने वालों को ज़मीन कई बार बहुत हरी और हसीन दिखती है, बस लाल गुलमोहर के चटकपन को देख–सुन नहीं पाते।'

समीक्ष्य संकलन की कविताओं से गुजरते हुए बार–बार यह अनुभूत होता है कि इन कविताओं में वर्तमान समय के प्रमुख विमर्शों का ताप तो मिलता ही है, साथ ही ये कविताएँ उन रास्तों पर ले जाती है जहाँ मानव का मानव से संबंध स्थापित हो और दीर्घकाल तक चलता रहे। संग्रह की अधिसंख्य कविताएँ इसी चिंता की खोज करती हैं, 'रिश्तों की अचकचाहट, दीवार के पोरों से रिसती है खामोशी, सन्नाटे की आवाज, बिना कुछ कहे अपनी उपस्थिति दर्ज कर, मानो जीवन की विस्मृतियाँ बयां करती हैं ...फ्रीजर में पड़े–पड़े वादे भी बर्फानी हो चले हैं, तवे की आँच में प्यार पकता नहीं अब, आटा गीला ही गुंथता और परथन ज्यादा माँगता है, धूप में सूखते कपड़ों के रंग चटक नहीं रहे।' या फिर, 'बरगद की जड़ों में कीलें ठोकी थीं जिसने, उससे पूछना जरा, रिसते–रिसते मरने की सजा, सबसे पहले इन पत्तियों को क्यों मिलती है।'

द्वारिका उनियाल की कविताओं में वर्तमान समय के अनेक विमर्शों के काव्यांतरिक

रूपकों की झलक मिलती है। कहने की आवश्यकता नहीं कि इन कविताओं में कवि की अन्तःवेदना साफतौर पर संकेन्द्रित हुई है जिसकी दिशाएँ उपभोक्तावाद, बाजारवाद के साथ पुनरुत्थान जो सांप्रदायिक संघर्षों, अंधविश्वासों के पुर्नजन्म, धर्म में बाजारीकरण और इससे उपजी विद्रूपताओं के बरक्स है, 'वह ढलती शाम के जुगनू, वह गली के गुलमोहर का सूखा फूल, पुराना अधेड़ सा पेन जिसकी स्याही सूख चुकी है, और तुम्हारी टूटी सेंडल से निकली वो कील तक कैद है इस संदूक में। इतना सब कुछ कोई ढोता है भला, वह भी वर्षों से यूँ ही पड़ी बेकाम की चीजें, ना तो अब इनका कोई मोल है न मायने.. इस पीले संदूक में एक लाल डायरी है वही जिसके धागे रेशमी है, जिसपे तुमने लिखा था मेरा नाम, पहली और आखिरी बार और कहा था हमारी दास्तान को याद मत रखना और यह वादा साल दर साल टूटता रहा।' इन कविताओं में अतीत से जुड़े रहने की गुंजाइश तो है ही, साथ ही उससे लगातार बहस का भी एक सिलसिला मिलता है, 'वक्त के जालों तले दबी रहेगी, रिश्तों को सीनेवाली जो सुई थी, जाते–जाते यूँ चुभा गये हो कि खून नहीं निकला तो क्या, चुभन तो बरसों रहेगी।'

कवि की प्रखर प्रतिरोधी चेतना की झलक भी इन कविताओं में दृष्टिगत होती है, 'जब से सरकारी बिजली पानी बंद है, डिस्पेंसरी में अब दवा नहीं मिलती और उबले भात की हांडी कल ही तो छिटकी थी हवाई जहाज की परछाई के पीछे, भौंकते–लोटते आवारा कुत्तों की बगल में, ढाई मुट्ठी अनाज को मुट्ठियों में भींचे दाँतों को पीसता वह फुटपाथ के सीमांत पर, नलके की बूंदों में अब पसीना टपकता है उसका, क्योंकि अपने पैरों की आहट से डर, पूरी रात भागते हुए, उसने सियारों के दबे पांव शहर में आने की खबर सुनी है।'

इस संग्रह की कविताओं में हमें विकास की दौड़ में लगातार दौड़ने के क्रम में हाँफते हुए हलकान लोगों की आहट मिलती है। इस विभाजित दुनिया में जहाँ समृद्ध वर्ग लगातार हावी होता जा रहा है और अपने वर्चस्व को बनाए रखने के लिए निरंतर प्रयासरत है, इसीलिए बहुसंख्यक लोगों की दुनिया के दुःख कोई असर नहीं छोड़ पाते हैं। अमानवीयता की हद तक जाने वाली यह असंपृक्ति अनायास ही नहीं है, 'हर साल आज के दिन नए फूल खरीदता हूँ, तैयार होकर तुम्हारे मकबरे पर आता हूँ, तुमसे बात कर दो आँसू गिरा, तेरे नाम पर गिरी ओस पोंछकर फिर लौट जाता हूँ, जिंदा हूँ तेरे लिए, तेरा वादा अभी जिंदा है।'

मानवीय संवेदनाओं की गहरी टीस संग्रह की 114 कविताओं से लगातार रिसती हुई महसूस होती है, इनसे गुजरते हुए हम इसे शिद्दत से अनुभव करते हैं, 'चेहरे की झुर्रियां बढ़ गई है माँ की और पापा के बालों की सफेदी भी, पर सुबह की चाय में दालचीनी का मसाला वही है...पर मैं नहीं था इन बीस सालों में अब जब लौटा हूँ तो

थोड़ा—थोड़ा चुपके से वक्त की जेब कतर रहा हूँ।' कवि अपनी पैनी नजरों से बदलते हुए दौर में हर पुरानी चीजों को पकड़ने की कोशिश करता हुआ नजर आता है।

द्वारिका उनियाल की इन कविताओं में हमें विकास की राह पर सरपट भागते हुए पीछे छूटे समय के साथ छीजते हुए अतीत और संबंधों के आँसू महसूस होते हैं, दरकते हुए संबंधों की बिवाइयाँ नजर आती हैं और अपनों से अलग होने की पीड़ा अनुभूत होती है जो संग्रह की कई कविताओं में बिखरी हुई है, 'जीवन के पुल को यूँ मिलकर पार करने का वादा था तेरा, पर ये सब अधूरा है।' या फिर 'चले आते हो तुम, शहरों को लाँघते हुए मेरी नज़्मों को अपने सीने से लगाए... कि लगे जैसे मिले हो माशूक को पहली बार...वैसे भी मोहब्बतें सबकी कहाँ मुकम्मल होती है।' इन कविताओं में द्वारिका उनियाल ने संबंधों की महीन गाँठें खोलने का भी काम किया है।

'मेरे आसान झूठ' संग्रह की कविताएँ हमारे दौर की मुकम्मल तस्वीर तो पेश करती है साथ ही हमें अपने अतीत में झाँकने के लिए भी प्रेरित करती है। इन कविताओं में आज के जीवन की प्रमुख चिंताएँ बार—बार एक दूसरे से जुड़कर एक समग्र कोलाज बनाती है। यह टुकड़ों—टुकड़ों में बँटा जीवन के महासमर का वृतांत है। कुछ स्थाई चिंताएँ इन कविताओं में बार—बार उभरती हैं, यह एक चिंतित और विचारवान कवि का संसार है। इसमें कहीं—कहीं पुनरावृत्ति भी है किंतु इससे कवि की चिंताओं और उनसे उसकी गहरी संलग्नता का पता भी लगता है।

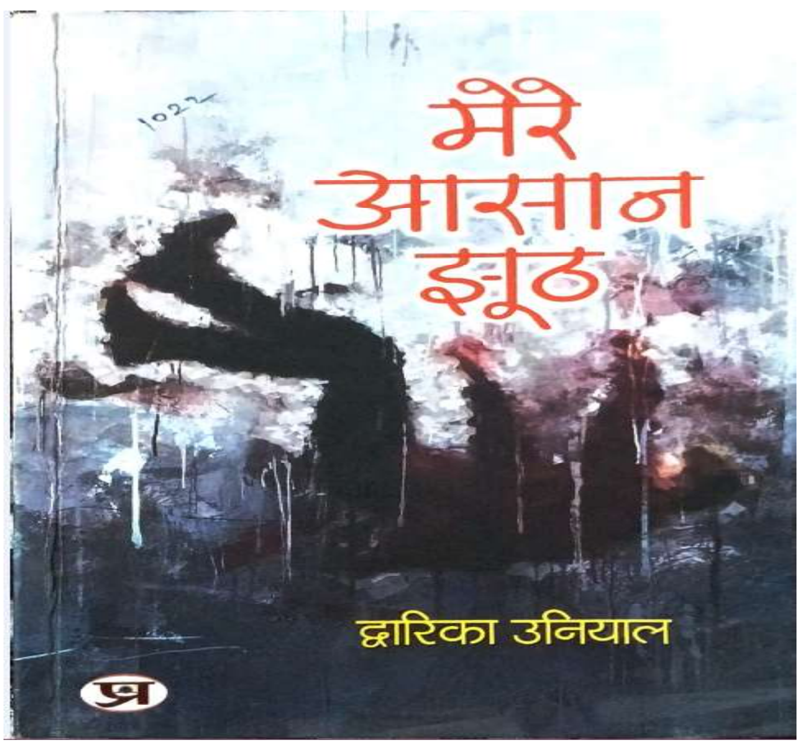

आशिक़ी के नये कारनामे

लालित्य ललित
स्वतंत्र लेखन, 45 व्यंग्य–संकलन, 64 कविता–संग्रह प्रकाशित, विविध भारतीय भाषाओं में अनुवाद कार्य, कई पुरस्कारों से सम्मानित। संप्रति–संपादक, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास।

सूर्यकांत शर्मा
सेवानिवृत्त अधिकारी, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, टीवी रेडियो प्रस्तोता, निर्माता, समीक्षक, स्तंभकार एवं पत्रकार।

वर्ष दर वर्ष आजकल सुप्रसिद्ध व्यंग्यकारों के जन्मशती वर्ष का होना एक सहज और सुखद संयोग है। वर्ष 2024 यदि सुप्रसिद्ध स्वर्गीय हरिशंकर परसाई जी का जन्मशती वर्ष रहा। अब इस बार यह वर्ष 2025 भी दो व्यंग्यकारों यथाप्रतिष्ठित एवं स्वर्गीय श्रीलाल शुक्ल और लब्धप्रतिष्ठित हृदयसम्राट स्वर्गीय श्री अटल बिहारी वाजपेयी जी का जन्मशती वर्ष है और इस की आधिकारिक घोषणा भी हो चुकी है।

हाल ही में इफको ने अपने लखनऊ कार्यालय में स्वर्गीय श्रीलाल शुक्ल पर केंद्रित एक भव्य कार्यक्रम का आयोजन किया। वहीं आदरणीय श्री अटल बिहारी वाजपेयी जी पर भी कार्यक्रमों की शुरुआत होनी है। व्यंग्य विधा कितनी समृद्ध रही है, इसका प्रमाण इस जन्मशती वर्ष के पुरोधाओं को देख कर ही हो जाता है। हमारे देश की राजनीति, संस्कृति और साहित्यिक आयामों में आदरणीय अटल जी सरीखे व्यंग्यकार विरले ही हैं, जिन्होंने अपने वाक्चातुर्य और व्यंग्यबाणों से स्थानीय, प्रादेशिक, देशी और विदेशी परिदृश्य पर एक अनूठी और अविस्मरणीय छाप छोड़ी है। यही स्थिति साहित्यिक संसार में साहित्य चितेरे श्रीलाल शुक्ल जी की रही है।

वर्तमान में व्यंग्य विधा में नूतनता और नवाचार की महती आवश्यकता है। पाठक सोच रहे होंगे कि मुद्दा क्या है? जी हाँ, व्यंग्य और उसकी उपादेयता यही विषय है। आज के किशोर और युवाओं को स्वस्थ मानसिकता प्रदान करने में व्यंग्य एक सारथी की भूमिका निभा सकता है।

'ग्लोकल से ग्लोबल' होते भारत में व्यंग्य उस गणित की मानिंद है जो विसंगतियों को समझने और जूझ कर समाधान निकाल कर प्रगति पथ पर अग्रसर होने का मार्ग प्रशस्त कर सकता है। पढ़ाई, नौकरी, प्रोन्नति, उन्नति और निरंतर

आशिकी के नये कारनामे (व्यंग्य–संग्रह), लालित्य ललित, प्रकाशक–नीरज बुक सेंटर, नई दिल्ली, संस्करण वर्ष–2025, मूल्य–250 रुपये, पृष्ठ–136

मेहनत कर अवसाद और निराशापूर्ण व्यवहार और तद्जनित रोगों से बचाव कर एक स्वस्थ और संतुलित जनमानस का निर्माण कर सकने में अहम भूमिका निभा सकता है। ऐसे में व्यंग्य विधा में बहुत कम ऐसे प्रबुद्धजन हैं जो निरंतर प्रासंगिक हैं और समीचीन व्यंग्य सृजन कर सकने में सक्षम हों। इन चुनिंदा व्यंग्यकारों में, ऐसे ही एक अनुभवी व्यंग्यकार डॉक्टर लालित्य ललित (ललित किशोर मंडोरा) हैं जिनका हाल ही में प्रकाशित व्यंग्य संग्रह जो यहाँ पर समीक्षित भी है, यथा 'आशिक़ी के नये कारनामे' काफी चर्चा में है और सुर्खियाँ बटोर रहा है।

इस व्यंग्यकार की खासियत यह भी है कि इनके सृजित व्यंग्य विभिन्न भारतीय भाषाओं के पाठक वर्गों को स्पंदित और आनंदित कर व्यंग्य के क्षेत्र में पाठकों की संख्या और नैतिक मूल्यवर्धन की प्रक्रिया को निरंतर आगे की ओर ले जा रहे हैं। व्यंग्य में सबसे अहम होती है 'भाषा' जो जितनी मर्यादित सहज सरल तरल होगी और उसमें पारंपरिक मुहावरों, लोकोक्तियों, कहावतों के साथ साथ यदि नए मुहावरे होंगे तो व्यंग्य में उतना ही पैनापन, रोचकता, विनोदप्रियता होगी और वह पाठकों में उतना ही पठनीय होगा। ये सभी खूबियाँ इस रचनाकार की रचनाओं, व्यंग्य–कृतियों या कविताओं में सदैव देखी जा सकती है। इसी व्यंग्य–संग्रह में कुछ नए मुहावरे यथा साहित्य का बैडमिंटन, इग्नोराय नमः और उनका औचित्यपूर्ण प्रयोग पाठकों को न केवल गुदगुदाएगा वरन उन्हें समस्याओं और विसंगतियों का सामना भी करवाएगा। व्यंग्यकारों में एक समय के बाद एक समरसता और बाद में टिपिकल सा स्तर या स्पष्ट शब्दों में नीरसता और कौतूहल का अभाव आ जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि व्यंग्य जैसी सौद्देश्यपूर्ण, मनोरंजक विधा एक बोर–सी भौंडे हास्य का पर्याय मात्र बन कर रह जाती है। यद्यपि लालित्य ललित के व्यंग्य में गद्यात्मक कविता का मिश्रण, पैनापन, चुटिलापन, काव्यात्मक कौशल के समावेश के साथ साथ रोचकता का पुट स्वतः उनके पाठकों को ऊहापोह की स्थिति से निकाल स्वस्थ हास्य और साहित्यिक समरसता से सराबोर कर देता है। इस व्यंग्यकार की सबसे बड़ी खासियत यह भी है कि इनकी गद्यात्मक कविताएँ रोज़ ब रोज़ समाज की घटनाओं और विसंगतिपूर्ण आसपास के परिवेश से जन्मती हैं। सोशल मीडिया पर प्रतिदिन चार कविताएँ पोस्ट होती हैं और बाद में वे नव सृजित व्यंग्य रचनाओं में थ्रिलर की मानिंद समावेशित हो जाती हैं। गोया कि इनका सृजन और वह भी जटिल विधा व्यंग्य चौबीसों घंटे गतिमान रहता है।

समीक्षित व्यंग्य संग्रह 'आशिकी के नये कारनामे' कुल मिलाकर 21 चुनिंदा व्यंग रचनाओं का एक सुंदर सा संग्रह है। यूँ तो सभी के सभी व्यंग एक से एक हैं परंतु कुछ व्यंग्य यथा गेंदामल कलसी की एक्सपायरी डेट, चुप्पी प्रसाद भट्ट के नए कारनामे, चुप्पी प्रसाद भट्ट बनाम गेंदामल कलसी कुछ अनूठी–सी नवीनता लिए है। यह किन्हीं

व्यक्तियों या व्यक्ति विशेष के नाम नहीं हैं वरन आज के समाज और साहित्यिक संसार में प्रचलित प्रवृत्तियों के प्रतिबिंब मात्र है। अब चुप्पी प्रसाद भट्ट के नए कारनामे व्यंग में सृजित एक बानगी पेश है।

'पांडे जी ने बड़े दिन बाद जब फेसबुक खोला तो पता चला कि चुप्पी प्रसाद भट्ट का फिर से अपना गोरख धंधा करता समाचार मिला कि फिर से वंचित लेखकों को सम्मानित किया जाएगा मसलन वहां गैंदा मल कलसी जैसे अनेक चूक चुके लोग जमा थे जो कमेंट देने से बाज नहीं आते'।

अब इसी की बानगी उनकी गद्यात्मक कविता की इस इस पंक्ति में देखिएगा सार यह/जिसे गली में कोई नहीं जानता वह प्रेमचंद बनने चला है।

'आजकल साहित्यिक हलकों में बसने वाला हर व्यक्ति एक और ग्रंथि या प्रवृति से ग्रसित है कि वह लेखक और छप जाने वाला प्राणी बनता जा रहा है।'

'तभी अंतर्मन कुमार ने कहा विलायती जी आप समझे नहीं, यह भट्ट बड़ी ऊँची चीज है समझें, वह लोगों को अपनी मोहब्बत में उतार लेता है और कुछ समय बाद ऐसे बिहेव करता है जैसे वह आपको जानता ही नहीं।' आजकल आत्ममुग्धता, शार्टकट ले कर के जैसे तैसे प्रसिद्धि, पुरस्कार, सम्मानप्राप्त करने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। कुछ ऐसी भी संस्थाएँ या संबद्ध व्यक्ति हैं जो बड़ी ही सफाई से प्रकाशन जगत में जुगत से पुस्तक प्रकाशन या फिर पुरस्कार प्रसाद वितरण एकमुश्त राशि लेकर इस बुराई को प्रचारित–प्रसारित करने में लगे हैं।

इन्हीं कुव्यवस्थाओं, कुप्रवृत्तियों पर खूब व्यंग्य इस लेखक द्वारा लिखे गए हैं और नामित पात्रों के द्वारा बखूबी इसका रंगमंच का सा मज़ा उपर्युक्त व्यंग्यों में दिया गया है। सही मायनों में और स्पष्ट रूप से देखा गया है कि आज के समय के सबसे सर्वाधिक चर्चित और सक्रिय व्यंग्यकार लालित्य ललित ही प्रतीत होते हैं जिन्हें देख कर लगता है कि ये जितने मारक व्यंग्यकार हैं, उतने ही संवेदनशील कवि भी हैं। कोई भी विषय उनसे अछूता नहीं है। यही कारण है कि आज दो दर्जन से ज्यादा पात्रों का परिवार इनके व्यंग्य संसार में गतिमान रहता है। उदाहरण के तौर पर विलायती राम पांडे, गेंदा मल कलसी, चुप्पी प्रसाद, अंतर्मन कुमार, टिप्सी मुटरेजा, चिलमन, टसल सिंह कुकरेजा, भाई दुलुती राम, झंडू माल गुलरिया, कल्लू कालिया।

इस व्यंग्य–संग्रह में जीवन के अनेक रंग से पाठक रूबरू हो सकते हैं। इनमें जीवन–दर्शन, जीवन की अनेक विसंगतियाँ, कशमकश हैं जिन्हें व्यंग्य की बारीकियों से बुना और उकेरा गया है। समयानुकूल–विषयानुकूल भाषा और उपयुक्त शैली को देख जा सकता है।

इसका उदाहरण व्यंग्य–संग्रह के पहले ही व्यंग्य यथा पांडे जी मेट्रो और

उसके भीतर की संवाद अदायगी में युवाओं की अधपकी सोच को बयान किया गया है– 'मेरे पेरेंट्स तो आउटडेटेड हैं, यार। उन्हें कोई परवाह नहीं कि यूनिवर्सिटी में जो फेस्ट होते हैं उनमें जाने का सुख क्या होता है'। सामाजिक सरोकार और आम जन की पीड़ा व्यंग्य– 'पांडे जी सलाहकार बने जमाने की हवा के' में पढ़ी जा सकती है।

'उनकी रीढ़ की हड्डियों ने एक साथ भरतनाट्यम कर लिया जब ई रिक्शा गड्ढे में पर से कई बार उछला।'

एक और व्यंग्य– 'पांडे जी और उनके जीवन का टर्निंग पॉइंट' भी सामान्य नागरिकों की बिगड़ती अर्थव्यवस्था से बेखबर नहीं है और व्यवस्था पर पूरी चोट करते हुए कहता है उधर बैंक का रेट इंटरेस्ट का पतन बहुत तेजी से होता दिख रहा है। उसको गिरते देख लगता नहीं कि कभी ब्याज की दरें उठेंगी भी'।

सरकारी दफ्तरों की कार्यशैली पर भी लेखक ने बहुत सटीक व्यंग बाण चलाए हैं। ऐसा ही एक व्यंग पांडे जी और दिल की दिल्लगी', सरकारी दफ्तर है सही चलेगी तो बात होगी और बात होगी तो चपरासी हरकत में आएगा।

व्यंग्य में यदि भाषा और लालित्य का सम्मिश्रण हो जाए तो फिर क्या होगा इसकी भी एक नज़ीर कुछ यूँ है।

आज तो लोग सठियाने के बाद भी महत्वाकांक्षाओं के कुएं में घिरे रहते हैं कि कुछ मिल जाए, पता नहीं ऐसे लोग किस उपग्रह से आते हैं और आने के बाद जाने का नाम नहीं लेते,, (पांडे जी और सुबह की उलट बासियाँ)। आजकल बाजारवाद काफी समय से अपने चरम पर है और इस व्यंग्य–संग्रह में बाजारवाद की बखिया बड़ी ही संजीदगी और मर्यादित परंतु कटाक्ष से भरे शब्दों में उधेड़ी गई है। उदाहरण के तौर पर–

'आजकल पूँजीपति हर निम्न मध्यमवर्गीय के मन को अच्छे से समझते हैं ताकि खुशी का विस्तार हो और निम्न वर्ग की जेब पर पूँजीपति करीने से डाका मारना जो सीख गए हैं ,'(पांडे जी और नवरात्रे की डांडिया)। 'गैंदामल कलसी का बाजार में शेयर औंधे मुँह गिरा हुआ है, कोई उन्हें पूछ नहीं रहा है, मसलन यह हुआ नवरात्रे में वैसे भी मुर्गों में खुशी का मौसम छाया हुआ है, बार बैठकी सब बंद हैं'। (पांडे जी और विजयदशमी)

इस समीक्षा की भूमिका स्वयं एक जाने माने व्यंग्यकार श्री फारूकी आफरीदी ने बड़ी ही तन्मयता और समग्रता से लिखी है और इस कहावत को भी चरितार्थ किया है यथा 'खग ही जाने खग की भाषा'। इस भूमिका को पढ़ कर पाठक पूरी पुस्तक का ब्लू प्रिंट देख पढ़ सकता है। अतः व्यंग्यकार डॉक्टर लालित्य ललित के साथ साथ आफरीदी जी को भी साधुवाद बनता है।

अस्तु, एक अच्छा सरल सहज सार्थक और स्वस्थ मानसिकता को बढ़ाता व्यंग्य संग्रह जो सभी आयुवर्ग और समाज के सभी लोगों द्वारा पढ़ा और गुना जा सकता है।

❑❑❑

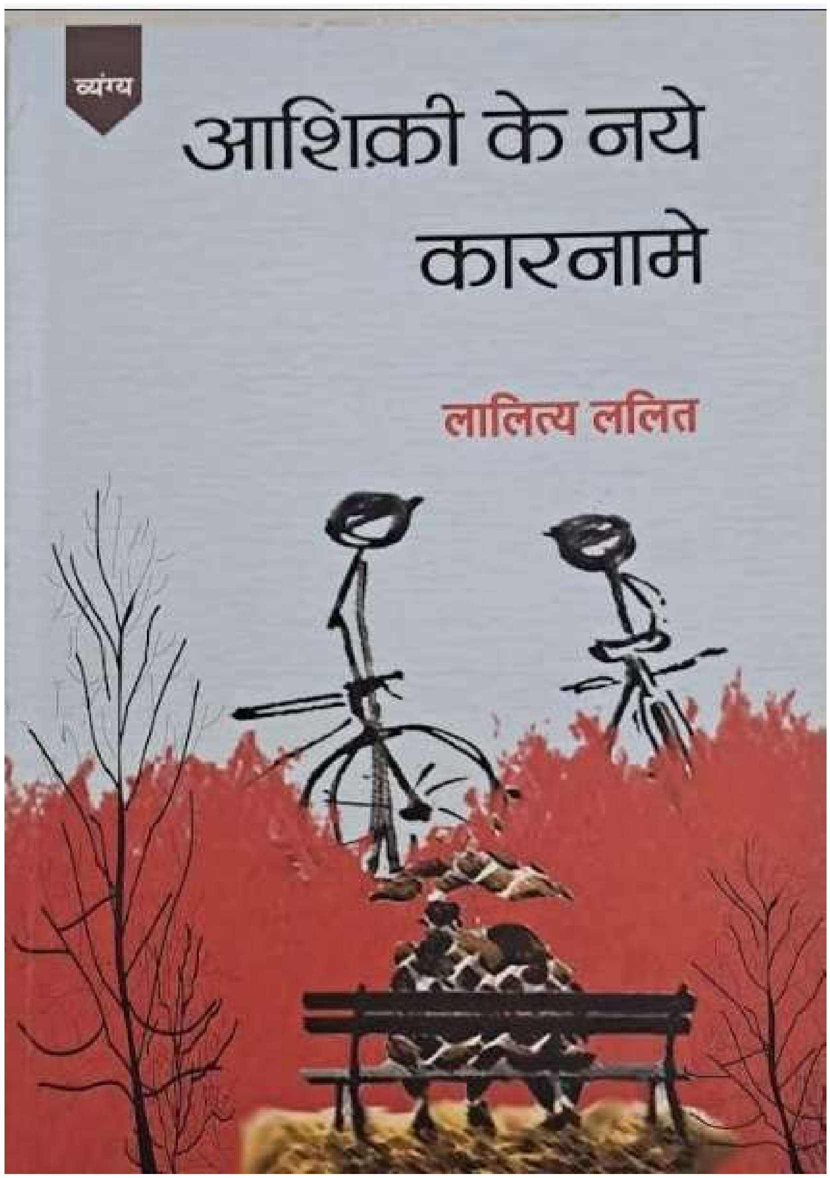

प्राप्ति स्वीकार

1. पिता और पुत्र / सुरिंदर सिंह नरूला, अनुवाद– सुभाष नीरव / राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत / नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज–II, वसंत कुंज, नयी दिल्ली–110070 / प्रकाशन वर्ष 2017 / मूल्य–225 / पृष्ठ–258
2. प्रवासी श्रेष्ठ कहानियाँ / सुधा ओम ढींगरा, संपादक–कमल किशोर गोयनका / स्वराज प्रकाशन / 4648 / 1, 21, अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली–110002 / प्रकाशन वर्ष 2017 / मूल्य–225 / पृष्ठ–258
3. विरले दोस्त कबीर के / कैलाश नारायण तिवारी / राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत / नेहरू भवन, 5 इंस्टीटयूशनल एरिया, फेज–II, वसंत कुंज, नयी दिल्ली–110070 / प्रकाशन वर्ष 2015 / मूल्य–155 / पृष्ठ–160
4. पृथ्वी घूम रही है / उमाकांत खुबालकर / नीरज बुक सेन्टर / सी–32, आर्यनगर सोसायटी, प्लॉट–91, आई.पी. एक्सटेंशन, दिल्ली–110092 / प्रकाशन वर्ष 2024 / मूल्य–250 / पृष्ठ–119
5. किताबों का खजांची / जेरार बेसैत, अनुवाद–आशीष अग्निहोत्री / संहिता प्रकाशन / 51, ऑफिसर्स लेन, पल्लवपुरम कैंटोमेंट, चेन्नई / प्रकाशन वर्ष 2021 / मूल्य–100 / पृष्ठ–96
6. नरेन्द्र मोहन श्रेष्ठ नाटक / नरेन्द्र मोहन / राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत नेहरू भवन, 5 इंस्टीटयूशनल एरिया, फेज–II, वसंत कुंज, नयी दिल्ली–110070 / प्रकाशन वर्ष 2016 / मूल्य–29 / पृष्ठ–303
7. प्रवासी श्रेष्ठ कहानियाँ, प्रवासी साहित्य–माला 3 / सुषम बेदी, संपादक– कमल किशोर गोयनका / स्वराज प्रकाशन / 4648 / 1, 21, अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली –110002 / प्रकाशन वर्ष 2024 / मूल्य–495 / पृष्ठ–104
8. दिल, दोस्ती दुनिया / देवेन्द्र कुमार मिश्र / बोधि प्रकाशन / सी–46, सुदर्शनपुरा इंडस्ट्रियल एरिया एक्सटेंशन, नाला रोड–22 / प्रकाशन वर्ष 2024 / मूल्य–349 / पृष्ठ–260
9. ओकुहेपा / जितेंद्र कुमार सोनी / राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत / नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज–II, वसंत कुंज, नयी दिल्ली–110070 / प्रकाशन वर्ष 2024 / मूल्य–205 / पृष्ठ–90
10. कालजयी भारतीय ज्ञान / भगवती प्रकाश शर्मा / प्रभात प्रकाशन प्रा. लि. / 4 / 19, आसफ अली रोड़, नई दिल्ली–110002 / प्रकाशन वर्ष 2024 / मूल्य–400 / पृष्ठ–247

❑❑❑

संपर्क सूत्र

1. **डॉ. सुनीता**
आई–10, महानदी एक्सटेंशन, इग्नू रेसिडेसिंयल काम्प्लेक्स, मैदानगढ़ी, दिल्ली–110068 मो. 9953535262 ई–मेल– drsunita82@gmail-com
2. **श्री प्रमोद भार्गव**
शब्दार्थ 49, श्रीराम कॉलोनी, शिवपुरी, म.प्र.–473551
मो. 09425488224, 9981061100, ई–मेल– pramod.bhargava15@gmail-com
3. **प्रो. अजय कुमार झा**
संस्कृत विभाग, सत्यवती कॉलेज (दिल्ली विश्वविद्यालय), अशोक विहार, दिल्ली–110052 मो. 9810914458 ई–मेल. dr.ajaydu@gmail-com
4. **डॉ. ज़ियाउर रहमान जाफरी**
ग्राम– पोस्ट, माफ़ी, अस्थावां, नालंदा, बिहार–803107
मो. 9934847941,6205254255, ई–मेल– zeaurrahmanjafri786@gmail-com
5. **सुश्री प्रोमिला**
Associate professor, Dept. of Hindi, The English and Foreign Language University, Tarnaka, Hyderabad, Telangana, 500007
मो– 8977961191, ई–मेल– promila.du@gmail.com
6. **श्री छेवांगलुंग**
Nagaland University, Meriema Kohima Campus, Nagaland, Lumani-797004
मो. 9667378406, ई–मेल– chewanglungchi221@gmail.com
7. **डॉ. मुन्नी चौधरी**
Research unide and Associate Professor Hindi Dept., Nagaland University, Kohima complex, Merima Nagaland-797004
मो. 9871691727, ई-मेल– muchajoy@gmail.com
8. **श्री चांदम इंङो सिंह**
Assistant Professor, Manipur University, Dept. of Hindi, Canchipur, Manipur-795003, फोन–8118926110, ई-मेल– cisingh123@gmail.com
9. **डॉ. गाईगुईमेईलू कामेई**
Hindi Dept., Ebotousana Girls High Secondary School, Uripok, Imphal West, Manipur-795004 फोन–9862154377, ई-मेल– gaiguimeilu.kamei@gmail.com
10. **डॉ. मनोहर गंगाधरराव चपळे**
हिंदी विभाग, महात्मा बसवेश्वर महाविद्यालय, लातूर, महाराष्ट्र–413512
फोन–9404895886, ई-मेल–mbannalikar@gmail.com

11. **प्रो. हितेंद्र कुमार मिश्र**
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष हिंदी विभाग, निदेशकः यूजीसी मालवीय मिशन शिक्षक प्रशिक्षण केंद्र, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग, मेघालय–793022
फोन–9436594338, ई-मेल– hiten.hindi@gmail.com

12. **प्रो. सुनील बाबूराव कुळकर्णी 'देशगव्हाणकर'**
निदेशक, केंद्रीय हिंदी संस्थान, हिंदी संस्थान मार्ग आगरा–282005
फोन–9422217600, ई-मेल– sunilkulkarni38@gmail.com

13. **सुश्री वंगीशा रोहिदास सरोदे**
शोधार्थी, डॉ. बाबासाहब आंबेडकर मराठवाड़ा विश्वविद्यालय, छत्रपति संभाजीनगर, महाराष्ट्र। फोन– 9881314253, ई-मेल–vangishadhamma@gmail.com

14. **डॉ. आलोक रंजन पांडेय**
एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, रामानुजन कॉलेज, कालका जी, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली–110019
फोन–9540572211, ई-मेल– alok.pandey76@yahoo.com

15. **प्रो. संध्या वात्स्यायन**
हिंदी विभाग, अदिति महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय–110039
फोन–9911115352, ई-मेल– dr.sandhyavats@gmail.com

16. **श्री गिरीश पंकज**
सेक्टर–3, एचआईजी– 2/2, दीनदयाल उपाध्याय नगर, रायपुर, छत्तीसगढ़–492010 फोन–9425212720, ई-मेल– girishpankaj1@gmail.com

17. **प्रो. विशाला शर्मा**
प्लाट नं.– 16, संकल्प नगर, मयूर पार्क रोड राधकृष्ण, हर्सुल, औरंगाबाद, महाराष्ट्र–431008 फोन–9422734035, ई-मेल– vishalasharma22@gmail.com

18. **श्री संजय गोस्वामी**
यमुना जी/13, अणुशक्तिनगर, मुंबई–94
फोन–8693863804 , ई-मेल– goswamisanjay80@yahoo.in

19. **श्री संजय पण्डा**
साईं बिहजार हरिडा कुरुड़ा, बालेश्वर ओड़िशा–756001
फोन–9778950092 ई-मेल–sanjayapanda.sph@gmail.com

20. **श्री कृष्ण कुमार अजनबी**
देवभोग गरियाबंद, छत्तीसगढ़–493890
फोन–9691194953, ई-मेल– ajnabikrishna@gmail.com

21. **श्री अजिजेष पच्चाट्ट**
Palikkal Post, Chelempra Marg, Malappuram, Kerala-673634
फोन–9995302940, ई-मेल– ajijeshp@gmail.com

22. **डॉ. सुमित पी.वी.**
Indivaram, Mannur, Porora Post, Mattanur, Kannur Kerala-670702
फोन–9497388529, ई-मेल– sumithpoduval@gmail.com
23. **श्री राजनारायण बोहरे**
89, ओल्ड हाऊसिंग बोर्ड कोलोनी, बस स्टैंड दतिया मध्यप्रदेश, दतिया–475661
फोन–9826689939, ई-मेल– raj.bohare@gmail.com
24. **श्री श्यामल बिहारी महतो**
ग्राम–मुंगो, गुंजरडीह, नावाडीह, बोकारो, झारखंड–829132
फोन–6204131994, ई-मेल– shyamalwriter@gmail.com
25. **सुश्री लुत्फा हानूम सेलिमा बेगम**
हाउस नंबर 13, फर्स्ट फ्लोर बोलोराम बोरा पथ, हैप्पी विला, बारोवाड़ी, गुवाहाटी, असम–781003 | फोन–8876521617, ई-मेल–
26. **श्री दिनकर कुमार**
व्हाइट बिल्डिंग, शांति पथ कलिताकुची, पोस्ट ऑफिस उदयन विहार, गुवाहाटी, असम–781171 फोन–9435103755, ई-मेल– dinkar.mail@gmail.com
27. **श्री संदीप भटनागर**
152, अलकापुरी, देवास, मध्यप्रदेश–455001
फोन–9425306250, ई-मेल– yashu.deep1958@gmail.com
28. **श्री देवेंद्रराज सुथार**
गांधी चौक, आतमणावास, बागरा, जिला–जालोर, राजस्थान–343025
फोन–8107177196, ई-मेल– devendrakavi1@gmail.com
29. **श्री देवेन्द्र कुमार मिश्रा**
ए–29, फर्स्ट फ्लोर राजुल ड्रीम सिटी, अमखेरा रोड, जबलपुर मध्यप्रदेश–482004
फोन–7000693003, ई-मेल– devendra.502mishra@gmail.com
30. **श्री दीपक गिरकर**
28–सी, वैभव नगर, कनाडिया रोड, इंदौर, मध्यप्रदेश–452016
फोन–9425067036, ई-मेल– deepakgirkar2016@gmail.com
31. **डॉ. अनुपमा तिवारी**
असिस्टेंट प्रोफेसर हिंदी, मास्टर ट्रेनर–भारतीय ज्ञान परंपरा अलायंस विश्वविद्यालय, बंगलौर, कर्नाटक–562106
फोन–8886995593 / 8142623426 ई-मेल– anupama.tiwari@alliance.edu.in
32. **श्री रमेश खत्री**
53 / 17, प्रतापनगर, सांगानेर, जयपुर, राजस्थान–302033
फोन–9414373188, 8949861017, ई-मेल– sahityadarshan@gmail.com
33. **श्री सूर्यकांत शर्मा**
मानसरोवर अपार्टमेंट फ्लैट बी–1, प्लॉट नं.–3, सेक्टर–5, द्वारका, नई दिल्ली–110075
फोन–7982620596, 9868319498, ई-मेल– Suryakant.sharma1902@gmail.com

केंद्रीय हिंदी निदेशालय

भाषा पत्रिका की सदस्यता हेतु आवेदन पत्र

सेवा में,

निदेशक
केंद्रीय हिंदी निदेशालय, उच्चतर शिक्षा विभाग,
शिक्षा मंत्रालय, पश्चिमी खंड–7, आर. के. पुरम्, नई दिल्ली – 110066
ई–मेल – chdsalesunit@gmail.com
फोन नं. – 011–26105211 एक्सटेंशन नं. 248, 244

महोदय/महोदया,

कृपया मुझे भाषा (द्वैमासिक पत्रिका) का एक वर्ष के लिए / पाँच वर्ष के लिए/ दस वर्ष के लिए दिनांक .... से सदस्य बनाने की कृपा करें। मैं पत्रिका का वार्षिक/ पंचवर्षीय/ दसवर्षीय सदस्यता शुल्क .... रुपये, निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नयी दिल्ली के पक्ष में नयी दिल्ली स्थित अनुसूचित बैंक में देय डिमांड ड्राफ्ट सं. .... दिनांक .... भेज रहा/रही हूँ। कृपया पावती भिजवाएँ।

नाम : ....

पूरा पता : ....
....
....

मोबाइल/दूरभाष : ....

ई–मेल : ....

संबद्धता/व्यवसाय : ....

आयु : ....

पूरा पता जिस पर : ....
पत्रिका प्रेषित की जाए ....

सदस्यता	शुल्क डाक खर्च सहित
वार्षिक सदस्यता	रु. 250.00
पंचवर्षीय सदस्यता	रु. 1250.00
दसवर्षीय सदस्यता	रु. 2500.00

सदस्यता शुल्क सीधे www.bharatkosh.gov.in – Quick Payment – Ministry (007 Higher Education)- Purpose (Education receipt)--- 211766 JR. ADMN. OFFICER, CENTRAL HINDI DIRECTORATE में digital mode से जमा करवाई जा सकती है।

डिमांड ड्राफ्ट निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय के पक्ष में नयी दिल्ली स्थित अनुसूचित बैंक में देय होना चाहिए। कृपया ड्राफ्ट के पीछे अपना नाम, पूरा पता और दूरभाष भी लिखें।

नाम एवं हस्ताक्षर

नोट : कृपया पते में परिवर्तन होने की दशा में कम से कम दो माह पूर्व सूचित करने का कष्ट करें।

दिनांक 21–22 अप्रैल 2025 को गुरु नानक देव विश्वविद्यालय अमृतसर में आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी के उद्घाटन सत्र में भाषा पत्रिका के मार्च–अप्रैल 2025 अंक तथा 'देवनागरी लिपि एवं हिंदी वर्तनी का मानकीकरण' पुस्तक का लोकार्पण किया गया। मंच पर उपस्थित रहे गुरुनानक देव विश्वविद्यालय के उपकुलपति प्रो. करम जीत सिंह, पद्मश्री प्रो. हरमहेंद्र सिंह बेदी, प्रो. कुलदीप अग्निहोत्री, प्रो. सुनील बाबूराव कुळकर्णी, निदेशक, केंद्रीय हिन्दी निदेशालय, प्रो. सुनील कुमार, अध्यक्ष हिंदी विभाग, गुरु नानक देव विश्वविद्यालय तथा डॉ. अनुपम माथुर, संपादक–भाषा

हिंदी प्रचार सभा, हैदराबाद के 90 वें वार्षिक उत्सव में सम्मानित होते निदेशक प्रो. सुनील बाबूराव कुळकर्णी

पंजी संख्या. 10646/61
ISSN 0523-1418

भाषा (द्वैमासिक)
BHASHA-BIMONTHLY
पी. ई. डी. 305–4–2025
700

भाषा जुलाई–अगस्त 2025

प्रधान संपादक की कलम से ....

भारत जैसे आत्मनिर्भर तथा स्वाभिमानी देश ने अपनी इसी संप्रभु शक्ति और क्षमता का इस्तेमाल करते हुए 22 अप्रैल, 2025 को कश्मीर के पहलगाम में हुए आतंकी हमले का पुरजोर जवाब दिया तथा भारतवासियों के 'मन की बात' का आदर करते हुए 'ऑपरेशन सिंदूर' को अंजाम देकर कुछ दिनों बाद ही जवाबी कार्रवाई में आतंक के अड्डों को नेस्तनाबूद कर दिया। सत्तापक्ष, विपक्ष तथा भारत के हर देशभक्त नागरिक ने एक स्वर में भारतीय सेना के इस शौर्य और पराक्रम की भूरि–भूरि प्रशंसा की। साहित्य जिस तरह से एक साथ सभी सहृदय लोगों में श्रेष्ठ मानवीय मूल्यों का संचार करता है, उसी तरह भारतीय कुशल नेतृत्व ने सभी को साथ लेकर आम जनता के अंतर्मन में उठ रही उद्दीप्त भावनाओं का संज्ञान लेते हुए जवाबी कार्रवाई की। देश ने यह जता दिया कि सुहागिनों के सुहाग को उजाड़ने वाले तत्वों को किसी भी शर्त पर बर्दाश्त नहीं किया जाएगा।

प्रो. सुनील बाबुराव कुलकर्णी 'देशगव्हाणकर'
निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नयी दिल्ली

पत्राचार पाठ्यक्रम विभाग द्वारा आयोजित परीक्षा की कुछ झलकियाँ

केंद्रीय हिंदी निदेशालय
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार
पश्चिमी खंड–7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110066
दूरभाषः–011–20862356/26105211
एक्सटेंशन– 248/234/231

Central Hindi Directorate
(Ministry of Education, Govt. of India)
West Block-7, Ramakrishnapuram,
New Delhi-110066
www.chd.education.gov.in